हिन्दी गीतिनाट्य परम्परा के परिप्रेक्ष्य में समकालीन हिन्दी गीतिनाट्यों का मूल्यांकन

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी (उ0 प्र0) में

हिन्दी विषयान्तर्गत पी–एच डी0 उपाधि के लिए प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

2005

शोध निदेशक

डॉ0 एन0 डी0 समाधिया

प्राचार्य

दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय उरई

शोधार्थी

अबेका निरंजन

श्रीमती अबेका निरंजन
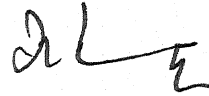
शोध केन्द्र–दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय उरई

अनुक्रमणिका

शोध निदेशक का प्रमाण पत्र

मैं प्रमाणित करता हूँ कि श्रीमती अबेका सिंह ने निरन्तर मेरे सम्पर्क में रहकर मेरे निर्देशों का पालन करते हुए शोधकार्य सम्पन्न कर लिया है। इस उपक्रम में इन्होंने बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी शोध परिनियमावली के समस्त उपबन्धों का पालन किया है। मैं इस शोध प्रबन्ध को विषय विशेषज्ञों के समक्ष प्रस्तुत करने की अनुशंसा करता हूँ। मैं श्रीमती अबेका सिंह के उज्ज्वल भविष्य की कामना करते हुए सारस्वत शुभाशीष प्रदान करता हूँ।

डॉ० एन० डी० समाधिया

प्राचार्य डी० वी० सी० उरई

प्राक्कथन

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी द्वारा अनुमोदित शोध विषय "हिन्दी गीतिनाट्य परम्परा के परिप्रेक्ष्य में समकालीन हिन्दी गीतिनाट्य का मूल्यांकन" के प्रथम अध्याय में हिन्दी गीतिनाट्य का परिचयात्मक अवबोध प्रस्तुत करते समय गीतिनाट्य की अभिधान–विश्लेषण, वस्तु तथा शैलीगत गवेषणात्मक विश्लेषण, तत्वविक परिशीलन तथा गीतिनाट्य परम्परा के आलोक में निष्कर्ष परक परिचय प्रस्तुत किया गया है। द्वितीय अध्याय प्राचीन महाकाव्यों तथा लोकनाट्य परम्परा के गीतिनाट्य में प्रवाहित अन्तर्धारा जो प्राचीन महाकाव्यीय तथा लोकनाट्रीय गीतिनाट्यता की सम्बद्धता को प्रतिपादित करती है, को विश्लेषित किया गया है। तृतीय अध्याय द्विवेदी युगीन तथा छायावाद युगीन गीतिनाट्य की गवेषणापरक पड़ताल करता है। चतुर्थ अध्याय समकालीन हिन्दी गीतिनाट्य पर आलोक डालता हुआ उसका अनुसंधानात्मक परिशीलन करता है। पंचम अध्याय के अन्तर्गत इस शोध कार्य का उपसंहार एवं उपलब्धि का तत्वपरक प्रस्तुतीकरण किया गया है और अन्त में परिशिष्ट में उपजीव्य ग्रन्थों, उपस्कारक ग्रन्थों पत्र पत्रिकाओं तथा शोध पत्र आदि का जिनका उपयोग इस शोध प्रबन्ध में किया गया है कि सूची प्रस्तुत की गई है।

इस अनुसंधान को पूर्णता तक पहुँचाने के जटिल उपक्रम में सफलता पाने का श्रेय मैं परमब्रह्म परमात्मा को श्रद्धा पूर्वक निवेदित करना चाहती हूँ। मैं अपने शोध निर्देशक डॉ0 एन0 डी0 समाधिया के प्रति आभारी हूँ जिन्होंने उचित दिशा निर्देश देते हुए मुझे लक्ष्य सिद्ध के उच्चतम बिन्दु तक पहुँचाया। मैं अनुसंधान कार्य में विशेष सहयोग के लिये ऋषिकल्प गुरुदेव डॉ0 दिनेश चन्द्र द्विवेदी के प्रति

श्रद्धावनत हूँ, जिन्होंने समय–समय पर सत परामर्श के द्वारा शोधकार्य के दौरान आयी हुई थकान तथा हताशा को दूर किया। मैं अपने श्वसुर पूज्यनीय श्रीरामकृष्ण निरंजन के प्रति विशेष आभारी हूँ कि इन्होंने इस शोध कार्य की प्रेरणा तथा कार्य के सुसम्पादन के लिए शोध सामग्री का अपने अथक प्रयास द्वारा संकलन किया और मैं उसका उपयोग करके कृतिकार्य हुई। अन्त में मैं उन साहित्यकारों के प्रति श्रद्धानिवेदित करती हूँ जिनके उपजीव्य तथा उपस्कारक ग्रन्थों का उपयोग करके मैं इस शोधकार्य को सम्पन्न कर सकी। मैं अपने पतिदेव श्रीगिरिजाशंकर निरंजन के प्रति भी आभारी हूँ जो अभियंता जैसे दायित्व का निर्वहन करते हुए भी मेरे इस शोध–कार्य के संबन्ध में सदैव सहयोग के लिए प्रतिबद्ध रहे। अंत में मैं अपनी वन्दनीय मातुश्री श्रीमती पुष्पा देवी–जो मेरी सास होते हुए भी सदैव मेरी माँ की वात्सल्यमयी भूमिका निभाती हैं–के चरणों में इस कृति को समर्पित करती हूँ।

अबेका निरंजन
श्रीमती अबेका निरंजन

प्रथम अध्याय

प्रथम अध्याय

(अ) अभिधान–विश्लेषण– सामान्यतः उन रचनाओं को जिनका माध्यम पद्य और विधि नाटकीय है, किस नाम से पुकारा जाय इस बारे में साहित्य–मनीषी अभी तक एक मत नहीं हो पाये हैं। हिन्दी में ऐसी रचनाओं के लिये गीतिनाट्य, भावनाट्य, काव्य नाटक, नाट्य कविता आदि विविध नाम प्रचलित हैं। जिसके कारण अनेक भ्रान्तियां उत्पन्न हो गई हैं। नामकरण सम्बन्धी यह भिन्नता मात्र आलोचकों तक ही सीमित नही अपितु स्वयं लेखकों और कवियों में भी पायी जाती है। उदाहरणके धर्मवीर भारती ने 'अंधा युग' को द्रश्य काव्य गीति नाट्य और लम्बा नाटक कहा है,[1] तो आलोचक उसे काव्य–रूपक,[2] गीतिनाट्य[3] और काव्य नाटक[4] कहते हैं। जानकी वल्लभ शास्त्री ने भी 'पाषाणी' गीति नाट्य काव्य–नाटक एवं सगीतिका अभिधान का प्रयोग किया है इसी प्रकार उदय शंकर भट्ट ने 'अशोक वन–बन्दिनी तथा अन्य गीति नाट्य' में सग्रहीत अपनी रचनाओं के लिये विविध नाम दिये हैं वे सन्त तुलसी दास को पद्य रूपक कहते हैं तो 'अशोक वन बन्दिनी' को पद्य नाटक[5]। उसी प्रकार वे 'राधा' 'विश्वामित्र और 'मतस्यगंधा' को भाावनाट्य कहते हैं वहीं वे यह भी लिखते हैं, कविताबद्ध नाटकों को इतिहास में गीतिनाट्य की संज्ञा दी गई है।[6] इससे स्पष्ट है कि अपनी रचनाओं के नाम के बारे में स्वयं लेखक भी आश्वस्त नहीं है। यह भ्रान्ति मात्र हिन्दी में ही नहीं, अंग्रेजी में भी है। वहां इस प्रकार की रचनाओं के लिये वर्सड्रामा', लिरीकल ड्रामा तथा पोइटिक ड्रामा आदि नामों का प्रयोग किया जाता है। अतः हिन्दी में प्रयुक्त उक्त अभिधानों पर विस्तार से विचार करना आवश्यक है तककि उचित नाम का निर्णय किया जा सके।

भावनाट्य– भावनाट्य के बारे में तीन विचार धाराएं है– एक तो उन विद्वानों की है जो भावनाट्य और गीतिनाट्य में कोई भेद नही मानते दूसरे लोक

भावनाट्य और गीतिनाट्य को अलग मानते हैं और तीसरे वर्ग के लोग 'भावनाट्य नाम ही स्वीकार नहीं करते।

अनेक विद्वानों ने भावनाट्य और गीतिनाट्य कोइ व्यावर्तन नहीं किया। वे गीतिनाट्य को ही भाव नाट्य मानते हैं उनका तर्क है कि गीत नाट्य में बाह्य क्रियाकलापों में उतना वर्णन नहीं होता, जितना कि भावों का। इसकी शैली नाटकों की अपेक्षा अधिक भावात्मकता लिए हुए होती है।[7]

इसकी शैली नाटकों की अपेक्षा अधिक भावात्मकता लिये हुए होती है इसी भावशवलता के कारण इन्हें भावनाट्य की संज्ञा दी गई है।[8] दूसरा वर्ग ऐसे मनीषियों का है जो गीति नाट्य और भाव नाट्य को अलग–अलग विद्या मानते है। इनका कहना है कि इन दोनों का माध्यम भिन्न होता है। नागेन्द्र के अनुसार 'गीतिनाट्य सर्वथा कविताबद्ध होता है और भावनाट्य का माध्यम गद्य होता है। आपकी दृष्टि में मुख्य रस श्रंगार है और प्रधान पात्र नारी होती है। इसी व्यावर्तन के आधार पर वे भारतेन्दु की 'रत्नावली', गोविन्द बल्लभ पंत की 'वर माला' और 'अन्तपुर का छिद्र' को भावनाट्य मानते है। और 'राधा' , 'विश्वामित्र' और 'मतस्यगधां' को गीतिनाट्य कहते है।[9]

किन्तु नगेन्द्र जी का यह विश्लेषण स्वीकार करने योग्य नहीं है। किसी भी अन्य आलोचक ने उक्त गिनाये हुए भावनाट्यों को भावनाट्य नहीं माना यह बात भी स्वीकार करने योग्य नहीं कि भावनाट्य का मध्यम गद्य होता है भावनाट्यों का प्रणयन पद्य में ही होता, क्योंकि भावों का प्रस्तुतीकरण जितने सुन्दर ढ़ग से पद्य में हो सकता है उतने सुन्दर ढ़ग से गद्य में नहीं। इसलिए भावनाट्य सर्वथा पद्य बद्ध होता है आलोचकों का कहना है कि गीतिनाट्य में स्वर एवं गेय–तत्वो की प्रधानता होने के कारण आन्तरिक भावों एवं द्वन्द्व की अभिव्यजंना इतने सुन्दर ढंग से नही हो पाती जितने सुन्दर ढंग से भावनाट्य में होती है।[10] निर्मला जैन

'भावनाट्य' नाम को ही स्वीकार नहीं करती। उनका मत है कि 'भवमयता' का भाव 'गीति' शब्द में और भावान्विति एवं द्रश्यात्मकता का भाव 'नाट्य शब्द अन्तर्भूत है।[11]

अतः वे गतिनाट्य शब्द को ही उचित मानती है उनका यह भी तर्क है कि भावों की अभिव्यंजना गद्य और पद्य दोनों में हो सकती है, इसलिए मात्र 'गीति में लिखे गये नाटकों को ही भावनाट्य की सांज्ञ दी जाय, उचित नही। हां गीतिकाव्य के लिए भाव–प्रवणता अनिवार्य है । इसलिए भावनाट्य अभिधान स्वीकार नहीं करना चाहिए।

वास्तव में 'भावनाट्य' अभिधान नाटक में अतिसच भावुकता को देखकर दिया गया है जो उचित नहीं। भावसयता कविताबद्ध नाटकों का अनिवार्य अंग है। हां यह हो सकता है किसी में भाव–प्रवणता कम हो, किसी में ज्यादा, न्यूनाधिक के आधार पर एक को गीतिनाट्य और दूसरे को भावनाट्य कहना, समीचीन नहीं भाव तो गीतिनाट्य का अंग है, अंगी नहीं। अतः भावनाट्य को गीतिनाट्य का एक उपभेद मात्र माना जा सकता है सम्पूर्णतः तथा कथित पद्यबाद्ध नाटकों के लिए भावनाट्य नाम उचित नहीं प्रतीत होता।

पद्यनाटक एंव पद्य रूपकः– कविता बद्ध नाटकों के लिए 'पद्यनाटक' और पद्य रूपक' और अभिधानों का प्रयोग होता है।[12] इन दोनों में मात्र रूपक और नाटक शब्द का भेद है आज कल ये एक दूसरे के पूरक माने जाते है। यद्यपि पूर्व में नाटक रूपक का एक ही एक भेद था, परन्तु कालान्तर में नाटक शब्द का प्रयोग रूपक के पर्याय के रूपक के पर्याय के रूप में होने लगा। अभिवन गुप्त के अनुसार नाट्य शब्द नम नार्थक 'नट शब्द' से व्युत्पन्न होता है, जिसमें पात्र आपने 'स्व का' परित्याग कर 'पर' का प्रभाव ग्रहण करता है, दूसरे शब्दों में रूप धारण करता है। अतः वह नाटक का रूपक होता है। आज वसतुतः रूपक और नाट्य का प्रयोग

समानार्थी के रूप में किया जाता है।[13]

अब प्रश्न यह कि क्या पद्य रूपक या पद्य नाटक विवेचना विद्या के लिये स्वीकार किया जा सकता है?

मेरा उत्तर नकारात्मक हैं, क्योंकि पद्य आज एक तो काव्य या गीतिकाव्य का पर्यायवाची नहीं रह गया और दूसरे उसमें बहिरंग की प्रधानता होती है "व्युत्पति की प्रष्टि से पद–युक्त अर्थात गण मात्रा–युक्त रचना को 'पद' कहते है इसका सम्बन्ध रचना के बहिरंग तत्व से होता है उसके अतरंग की ओर इसमें कोई सकेंत नहीं।[14]

इसके विपरीत विवेच्य नाटकों में अतरंग की प्रधानता होती है अथवा यह कहिये कि मानसिक द्वन्द्व ही इन नाटकों का प्राण है। इनमें गण मात्रा–युक्त पद्य का भी प्रयोग नही होता इनके लिये मुक्त छन्द ही अधिक उपयोगी माना गया है, क्योंकि इसके माध्यम से विचारों का प्रस्तुतीकरण सुन्दर ढंग से होता है। अतः पद्य नाटक और पद्य रूपक नाम उपयुक्त नहीं माने जा सकते।

काव्य नाटक या काव्य– रूपक– आलोचकों और लेखकों का एक बहुत बड़ा वर्ग कविताबद्ध नाटकों के लिये 'काव्य नाटक'[15] एवं काव्य रूपक[16] अभिधानों का प्रयोग करते हैं इनमें सिद्धनाथ कुमार का नाम विशेष उल्लेखनीय है। वे निरन्तर लिखते रहे है और अपने विविध निबधों, कृतियों और समीक्षाओं में काव्य–नाटक शब्द का प्रयोग करते रहे हैं, जिसकेकारण इस शब्द का पर्याप्त प्रचार हुआ है। रूपक और नाटक शब्द पर विचार हो चुका है उसे छोड़कर काव्य शब्द पर विचार करना है।

भारतीय वाड् में 'काव्य शब्द का प्रयोग बहुत व्यापक अर्थ में होता है। भारतीय आचार्यों की पुष्टि में काव्य शब्द के अन्तर्गत दृष्य और श्रव्य अथवा गद्य एवं पद्य की भाव व्यंजन सभी रचनाएं आ जाती हैं। इससे काव्य शब्द में

अतिव्याप्ति दोष आ गया है कवि की अति व्यापकता को लक्ष्य करते हुए हेजलिट ने बड़े ही आवेग लिखा है कि "काव्य भय, घृणा सन्तोष ईर्ष्या, पछतावा प्रशंसा आश्चर्य, दया, निराशा तथा पागलपन—सब कुछ है।"[17]

इस अति व्यापकता को देखते हुए इस विद्या के लिये काव्यनाटक अभिधान ठीक नहीं। दूसरे, काव्य उपरूपकों के अठारह भेदों में से एक है। यहां काव्य उपरूपक पर विचार किया जाय।

अभिनव गुप्त के अनुसार, काव्य गीति नृत्य प्रधान उपरूपक होता है। इसमें आदि से अंत तक एक पाना द्वारा एक कथा का श्रृंखलाबद्ध ग्रन्थन होता है। काव्य का गायन एक ही राग में होता है और लय और ताल भी अपरिवर्तित रहते है।[18] फलतः रस भी प्रायः एक ही रहता है यह राग काव्य कहलता है। कोहल और भोण के अनुसार जिसमें 'राग और काव्य' परिवर्तित होते रहते हैं, वह चित्र काव्य कहलता है।——गीत गोविन्द इसी प्रकार का चित्र काव्य है जिसे जयदेव की पत्नी ने स्वयं अभिनय के माध्यम से प्रस्तुत किया था।[19] काव्य में मुख प्रतिमुख और निर्वहण संधिया होती हैं तथा व्यापक रूप से हास्य रस होता है। यदि कविताबद्ध काटकों के लिये इसकी काव्य रूपक नाम दिया गया है तो भ्रामक हैं, क्योंकि आधुनिक गीति नाट्य इस काव्य उपरूपक से भिन्न है इनमें न तो एक ही लय एवं ताल होती है न एक रस होता है इसका मुख्य रस हास्य भी नहीं होता अतः प्राचीन शास्त्रीय अर्थ में काव्य का प्रयोग उचित नहीं यदि 'काव्य का प्रयोग' अधुनातन अर्थ में किया जाय तो भी भ्रामक है, क्योंकि फिर प्राचीन काव्य उप—रूपक और काव्य रूपक में नाम की समानता हो जयेगी और दूसरे, इनमें व्यावतन में कठिनाई होगी।

इस दृष्टि से काव्य रूपक और काव्य नाटक नाम उचित नहीं। तीसरे, काव्य नाटक शब्द से ऐसा प्रतीत होता है। एक आलोचक को इस नाम से ऐसा

प्रतीत होता है, जैसे काव्य और नाटक की सन्धि करके यह नाम दिया गया है। एक आलोचक को इस नाम से काव्य की स्थापना न होकर, नाटक हो जाती है।[20]

शायद उनको यह भ्रम काव्य और नाटक को अलग–अलग करके देखने के कारण हुआ है अतः काव्य–नाटक और काव्य रूपक अभिमान और शास्त्रीय परम्परा की दृष्टि से भ्रम उत्पादक एवं वर्तमान दृष्टिकोंण अति व्याप्ति दोष से युक्त है अतः ये नाम स्वीकार योग्य नहीं।

काव्य–एकाकी– आलोचको और लेख्कों का एक समुदाय इस विद्या को 'काव्य एकांकी नाम से सम्बोधित करता है।[21] किन्तु यह नाम अनुचित हैं। काव्य के सम्बन्ध में ऊपर प्रकाश डाला गया है। यहां एकांकी शब्द से मेरा विरोध है। आज के गीतिनाट्य एकांकी ही नहीं अनेकांकी भी है 'अंधायुग' 'एक कंठ विषपायी', पर्तिवरा आदि अनेकांकी ही है।

काव्य–एंकांकी और काव्य नाटक से ऐसा भाष होता है, जैसे काव्य शब्द एकांकी और नाटक में जोड़ दिया गया हो। इसके लिये गीतिनाट्य शब्द ही उपयुक्त है यदि अंको के आधार पर उनका विभाजन करना हो तो उन्हें एकांकी गीतिनाट्य और गीतिनाट्य कहा जा सकता है।

नाटक काव्य– कुछ आलोचक इस विधा के लिए 'नाटक काव्य' अभिधान का प्रयोग करते हैं।[22] इसका अर्थ तो यह होता है कि "जो काव्य नाटकीय पद्धति से लिखा गया हो वह नाटक काव्य है। इस नाम से कोई औचित्य नहीं विवेच्य विधा नाटक और काव्य की सन्धि का परिणाम नहीं है। यहतो ऐसा नाटक है, जिसका माध्य कविता होती है और न ऐसी काव्य–कृति है, जिसकी शिल्प विधा नाटकीय होती है। वह तो एक ऐसा रूप है, जिसमें गीति तत्त्व, नाट्य–तत्त्व और संगीत तत्व एकाकार हो जाते है, अतः इन्हे अलग करके नहीं देखा जा सकता। जानकी वल्लभ शास्त्री ने संगीत की प्रधानता के कारण अपने गीति–नाट्यों की

'संगीतिका' नाम दे डाल है। आज कल संगीतिका 'आपेरा' के लिए रूढ़ हो अतः इसे गीतिनाट्य के लिये स्वीकार नहीं किया जा सकता। यद्यपि शास्त्री जी ने संगीतिकाओं को गीतिनाट्य कला के लिए उपहार स्वरूप भेंट कर दिया है।

गीतिनाट्य— मैं कविताबद्ध नाटकों के लिए सर्वाधिक उपयुक्त नाम 'गीतिनाट्य' मानता हूँ प्रायः समस्त आलोचकों, लेखकों और गीति—नाट्कारों ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यरूक्ष रूप से इस अभिधान का प्रयोग किया है। जो 'गीतिनाट्य' अभिधान के विरोधी है, उन्हें मूल आपत्ति 'गीति' शब्द को लेकर है, क्योंकि नाट्य और नाटक में मात्र प्रयत्न की भिन्नता है।

गीति क्या है— सामान्यतः गीति और गीत शब्द को लेकर बड़ा भ्रम हो गया है। गीति और गीत को एक ही अर्थ का द्योतक मान लिया जाता है, लेकिन गीति अंगी है गीत उसका अंग गीति काव्य के अनेक भेद हैं और गीत उनमें से एक जो अंग्रेजी के सोंग (Song) शब्द का अर्थ देता है जबकि गीतिका अर्थ लिरिक(Lyrik) के अर्थ में होता है अधिकांश लोकगीत शब्द का प्रयोग वर्णनात्मक, गीतात्मक, विचारात्मक,, भावनात्मक आदि श्सभी प्रकार की शीर्षकहीन, रचनाओं के लिए करते है, यद्यपि उनमें गीति तत्व न के बरावर होता है। गीति में वैयेक्तिक और आनन्दकारी भावों का समावेश होता है जिसमके कारण उसमें प्राणों का स्पंदन होता है।[24] गीतिकाव्य का प्रधान उद्देश्य अन्तरंग जीवन के रहस्यों आकंक्षाओं, उमगों, वेदनाओं और प्रलाप को उद्घाटित करना होता है।[25]

गीतकाव्य में जीवन के उत्तेजनापूर्ण मनोविकारों की गीतात्मक अभिव्यक्ति होती है। इन्हें संगीत और गीति के माध्यम से वाणी दी जाती है। गीति में आन्तरिक चेतना और और हादिर्क अनुभूति का प्रयोग रहता है। स्पष्ट है कि गीतिकाव्य में आज्ञत्माभिव्यजंना, संगीतात्मकता अनुभूति की पूर्णतः और भावों का योग एक साथ परिलक्षित होता है इन्हीं विशेषताओं और अनुभूत के तीव्र क्षणों का

प्रस्तुतीकरण गीतिनाट्य का विषय है। गीतिनाट्य पढकर या देखकर ऐसा प्रतीत होता है, जैसे पाठक तृष्णा के धरातल से तृप्ति के स्वर्ग की ओर उठा जा रहा है। संवेदना सौन्दर्य और मधुरता एकाकार होकर गीतिनाट्य को अर्पूव रूप दे देती है। अतः गीतिनाट्य अभिधान इस विधा के लिए सवश्रेष्ठ अभिधान है। इससे गीतिनाट्य की समग्रता का बोध होता है इसमेंकाव्य की अति–व्यापकता है और न भाव नाट्य जैसी किसी एक विशेषता का प्रतीक है। उसमें पद्य के समान गुण मात्रा आदि का बन्धन भी नहीं है। हां गीति नाट्यों को उनकी विशेषताओं के आधार पर विभिन्न भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है। जैसे–भावना प्रधान गीतिनाट्यों को भाव–गीतिनाट्य काव्य तत्व से बोझिल किन्त नाटकीय तत्वों से न्यून को पाट्य गीतिनाट्य और डियो शिल्प से प्रभावित गीतिनाट्य काव्य तत्व से बोाझिल किन्तु नााटकीय तत्वों से न्यून को पाठ्य गीतिनाट्य और रेडियो शिल्प से प्रभावित गीतिनाट्य को ध्वनि गीतिनाट्य आदि।

सिद्धनाथ कुमार की गीतिनाट्य अभिधान में सबसे बड़ी कमी यह दृष्टिगोचर होती है कि कुछ गीति नाट्यों मे गीति तत्व नहीं पाया जाता। उनके अनुसार हमारे साहित्य के तथा कथित गीति–नाट्यों में गीति–तत्व की प्रधानता नहीं है। हां उनमें काव्य तत्व अधिक है काव्य तत्व ऐसे नाटकों के लिए अनिर्वाय माना गया है।

काव्य तत्व से उसका तात्पर्य भावमयता और रसात्मकता से है। इसका अर्थ यह हुआ हक वे गीतितत्व को स्वीकार करते है। गीतिकाव्य में भी भावात्मक्ता और रसात्मकता होती है, किन्तु काव्य शब्द से अन्तर्वृत निरुपणी वैयक्तिक्त अनुभूति आल्हाप और अन्तर्द्वन्द की विशेषताएं प्रकट नहीं होती जो गीति काव्य में होती हैं और जिनमें प्राणों का स्पदन होता है। दूसरे पहले ही बता चुके है कि काव्य शब्द से 'काव्य उप रुपक का भ्रम पैदा होता है। यह कहना कि कुछ

गीतिनाट्यों में गीति तत्व की प्रधानता नहीं है ठीक हो सकता है, किन्तु कम और अधिक के नाम पर किसी विद्या का नाम ही बदल दिया जाय, ठीक नहीं। गीतिनाट्य विधा का वास्तविक प्रतिनिधित्व तो वही करते है जिनमें गीतिकाव्य की समस्त विशेषताओं के साथ नाटक शिल्प की समस्त विशेषताओं और संगीत का समान योग होता है। यदि किसी गीतिनाट्य में गीत तत्व ही नहीं है तो यह गीतनाट्य की कमजोरी है गीतनाट्य की नहीं। शायद ही कोई गीति–नाट्य ऐसा होगा जिसमें गीति–तत्व बिलकुल न हो हाँ यह हो सकता है कि वह अति सूक्ष्म हो, जिनमें गीति तत्व नहीं होगा, वे गीति नाट्य ही नही होंगे अतः गीति नाट्य अभिधान ही इस विद्या के लिए उपयुक्त है।

(ब) वस्तु तथा शैलीगत गवेषणात्मक विश्लेषणः– वे विशेषताएं जिनका सम्बन्ध विधा के अन्तःपक्ष से है और जिनसे कथानक के भाव पक्ष पर प्रकाश पड़ता है वस्तुगत विशेषताएं कहलाती है। वस्तुगत विशेषताएं निम्नांकित है

1– भावात्मक कथा वस्तु–नीतिनाट्य का कथानक ऐतिहासिक काल्पनिक या किस प्रकार का हो सकात है किन्तु उसका भाव सबल होना अनिवार्य है। गीति काव्य अत्याधिक भावात्मक होता है क्योंकि वह पात्रों को हृदय की स्वतः प्रवृत्र बाह्य अभिव्य अभिव्यजंना है। गीतिनाट्य भी एक प्रकार की मानसिक उथल पुथल मचाने वाली भाव धारा को लेकर चलता है।

प्रकृति एवं गीति का आवलम्बन लेकर मानसिक चिंतन को प्रस्तुत करना ही गीतिनाट्य कर प्रधान कार्य होता है इसलिए उसमें भावों के आवेग को जितना अधि ाक महत्व दिया जाता है, उतना कथा को नहीं कथा तो मात्र भावों को प्रदर्शित करने का साधन होती है, जिसका सम्बल लेकर हृदय के मथंन का प्रासाद निर्मित होता है बिना उत्कृष्ट भावाभिव्यंजना के गीतिनाट्य मात्र तुकबन्दी ही होगी और उसका प्रक्षेप पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। गीतिनाट्य कार्य हृदय के उद्धेलित भावों

को इस नाटकीयता के साथ प्रस्तुत करता है कि दर्शक मुग्ध हो जाता है। इसी भावाभिव्यंजना की प्रधानता को देखकर आलोचकों ने उसे –भावनाट्य' की संज्ञा दी है। उदयशंकर भट्ट के अनुसार–"गीतिनाट्य में कथिक व्यापार नहीं होते केवल मानसिक चिंतन का सतत प्रदर्शन होता है।

2– भावों की कोमलता–भावान्विति के साथ–साथ भावों की कोमलता गीतिनाट्य की दूसरी विशेषता हृदय के कोमल भावों को व्यक्त करने के लिए ही लेखक पद्य का सहारा लेता है, क्योंकि गद्य में अन्तर्यगत के सूक्ष्म भावों को व्यक्त करने की वह क्षमता नहीं है जितनी पद्य मे होती हैं, तथी तो टी. एस. ईलिपट ने कहा कि "यदि संसार पर अपने विचारों का स्थायी प्रभाव डालना है, तो हमेअपनी बात कविता में ही कहनी चाहिए।"[26]

भावों को मर्मस्पर्शी और कोमल होना रसमयता और प्रभावोत्पादकता के लिए अनिवार्य है। संगीत की स्वरलहरी और माधुर्य के बीच गीति–नाट्य का कथानक पाठक को रस मग्न कर देता है। मूर्छना–भरे मादक भावों से प्रभावित प्रेक्षक अपूर्व सुख का अनुभव करता है।

3–सर्घष की प्रधानता–आधुनिक गीतिनाट्यों का प्रधान व्यकछेदक तत्व अंत संर्घष हैं। भावों की प्रधानता के कारण 'संर्घष' स्वभवता बाह्य न होकर आन्तरिक होता है अर्थात मन की एक भावना का दूसरी भावना के विरुद्ध संर्घष ही यहां मिलेगा।

यही आन्तरिक संर्घष गीति नाट्य का प्राण तत्व है गीतिनाट्य कार आन्तरिक संर्घष द्वारा भावात्मक सत्यों को प्रति भाषित करता है। फलस्वरूप गीति नाट्य सीधे मानव जीवन की गहराइयों तक पहुंचने का प्रयत्न कराता है।[27]

4– सुन्दर प्रकृति विधान–प्रकृति का मानवीय भाव रागो और मनः स्थितियो से घनिष्ट सम्बन्ध हैं। प्रकृति के माध्यम से हृदय के भावों को प्रतीक रूप

में प्रस्तुत कर दिया जाता है। गीतिनाट्यों में प्रकृति के रम्य दृश्यों का अधिक विध ान किया जाता है उसकी के सहारे पात्रों की भावमग्नता और अधिक तीव्र हो उठती है।

पाठक चिन्तन में मग्न हो जाता है उदय शंकर भट्ट ने 'राधा' और 'विश्वामित्र' गीतिनाट्यों में सुन्दर द्रश्य प्रस्तुत किये है भारती जी ने 'अन्धा युग में युद्ध की भीषणता को प्रस्तुत करने के लिए प्रकृति के भयंकर रूप को प्रस्तुत किया है। जिससें उसमें तीव्रता आ गई है मानसिक भावों को चित्रित करने में प्रकृति सहायक सिद्ध हुई है।

शैलीगत विशेषताएं–

शैली और शिल्प से सम्बन्धित विशेषताएं निम्नलिखित है।

1–पद्यात्मक शैली– गीतिनाट्य की सबसे बड़ी विशेषता उसका आद्योपांत पद्यात्मक होना है इसका अभिप्राय यह नहीं कि केवल पद्य–मयता ही गीतिनाट्य का स्वरूप धारण करती है पद्य का अभिप्राय केवल पद्यबद्धता से नहीं बल्कि भावावेग कल्पना और झकांर के वातावरण से है।

नाटकों की गद्यात्मक क्रिया का इसमें प्रधान्य नहीं होता यद्यपि नाटकीय गुण आवाश्यक है।[28] इसका अभिप्राय यह भी नहीं कि गद्य नाटकों को पद्य में बदल देने से ही वे गीतिनाट्य हो जायेंगे, क्योंकि गीतिनाट्य और गद्य नाट्य में केवल इतना ही भेद नहीं है कि एक के पात्र द्वन्दोबद्ध भाषा में कार्य करते हैं और दूसरे के गद्य में गीतिनाट्य में तो उसकी आत्मा उसकी वस्तु उसके पात्र सब के सब काव्यमय होते हैं। 'गीतिनाट्य' सामान्य नाटक और काव्य की तुलना में अधिक गरिमा या 'एंपिक ग्रेजरं' हैं।[29]

अतः गद्य को पद्य को पद्यमय बनाना ही पर्याप्त नहीं, उसके प्राण डालना आवश्यक है स्वभावतः यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि पद्य में ऐसी क्या

विशेषता है जो गद्य में नहीं होती यदि केवल काव्य का ही आनन्द उठाना है तो रंगशाला में जाने की क्या आवश्यकता है? वह तो घर बैठे हुए ही सरलता से प्राप्त किया जात सकता है। वास्तव में गद्य और पद्य साधन मात्र है साध्य तो कुछ और ही होता है वह है—प्रेक्षकों, दर्शकों और.पाठकों पर विशेष प्रभाव डालना। यह तभी सम्भव है जब दैनिक व्यव्हृत भाषा से अलग हटकर बोला जाय।

नित्य प्रयोग की भाषा सुनने में वह आनन्द नहीं आता जो विशिष्ट भाषा सुनने में इसके लिए पद्य से अधिक सुन्दर और कौन सी भाषा हो सकती है, लेकिन यह पद्य बोलचाल की भाषा से बहुत दूर नहीं होनी चाहिए। उसमें स्वाभाविकता बनी रहनी चाहिए दर्शक यह अनुभव न करे कि वह प्रकृतिक भाषा सुन रहा है।[30]

यह कहा जा सकता है कि गद्य—महामय भाषा से जो आनन्द मिलता है वह केवल गद्यमय या पद्यमय भाषा से नहीं लेकिन यह अनुमान मात्र है। गद्य बोलते बोलते सहसा पद्य बोलना अस्वाभाविकता पैदा कर देता है।

ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार अंग्रेजी में बोलते—बोलते सहसा हिन्दी में बोल उठने से वास्तव में काव्य में एक मात्र इतनी शक्ति है कि वह मानव के ह्रदय को झंकृत कर देती है। नाटकों में काव्य प्रयेग का दूसरा कारण भी है कुछ ऐसे व्यक्ति होते है जो काव्य को पढ़ने में कठिनाई महसूस करते हैं किन्तु ये व्यक्ति अभिनय देखने में रुचि रखते हैं ऐसे लोगों के लिए गीतिनाट्य प्रेरणा का स्त्रोत बन सकते है यद्यपि ऐसे व्यक्ति समाज में बहुत कम हैं।

2—दृश्यात्मकता एवं नाटकीयता—गीतिनाट्य मिश्र विधा होने के कारण जहां उसमें गीतिकाव्य के तत्व विद्यमान है, वहा उसमें नाटकीय कथोपकथन भी होते है प्रचुर भावमयता के साथ—साथ द्रश्यात्मकता का होना भी गीतिनाट्य के अपेक्षित हैं इसमें कवि अपनी अनुभूति को पात्रों के माध्यम से दर्शकों के माध्यम से दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत करता है यह अनुभूति पात्रों के कथेपकथनों द्वारा व्यक्त होकर

दर्शकों तक पहुचती है। गीतिनाट्यों में पात्र काथिक व्यापार के स्थान पर मानसिक व्यापार का अधिक ध्यान रखता है।

गीतिनाट्य दृश्य होते हुए भी गद्य नाटकों की भांति विस्तृत रंग–सकेतों से युक्त नहीं होते इनमें नाटकीय संकेत वही दिए जाते है जहां यह अनुभव हो कि भावों को प्रकट करने में सहायक होगे। इसलिए रंग–संकेत अल्प मात्रा में होते है।

3–द्विविध व्यक्तित्व–गीतिनाट्य का ब्यक्तित्व द्विविध होता है इसमें एक ओर गीति तत्व और दूसरी ओर नाट्य तत्व मिलकर एक हो जाते हैं यद्यपि दोनों तत्व विरोधी पृष्ठभूमि पर आघृत हैं गीतिकार की अनुभूति अन्तर्मुखी, आत्मक्रेन्द्रित, वैयक्तित्व तथा भावात्मक होती है, जबकि नाटककार की बहिर्मुखी, वस्तुनिष्ठ और सामाजिक होती है। गीतिनाट्य में उक्त दोनों विरोधी बातों का सम्मिश्रण होता है फलस्वरूप गीतिनाट्य में विरोध जन्य चमत्कार उत्पन्न हो जाता है। इसमें काव्य और नाटक एक दूसरे से स्पर्धा करते हैं।कविता में नाटकीयता होती है और नाटक में काव्यमयता होती है। उस स्थिति में यह कहना सम्भव नहीं होता है कि वह पहले काव्य हैया पहले नाटक है दोनों एकाकार हो जाते हैं–अद्वैत।

4– गेयत्व और अभिनेयत्व–गीतिनाट्यों की सफलता का मूल तत्व उसका प्रगीत तत्व होता है जो गीतिनाट्य जिने अधिक संगीतात्मक होंगे, वे उतने ही अधिक संप्रेषणीय होंगे आधुनिक युग के गीतिनाट्य साहित्य के महत्व और स्थायित्व का कारण उसकी प्रगीगात्मक ही है नाट्य गुण नहीं किन्तु इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि गीतिनाट्य अभिनेज्ञ हो जो गीतिनाट्य जितना अधि ाक अभिनेय होगा वह उतना ही अधिक सफल माना जायेगा। हिन्दी के अधिकांश गीतिनाट्य ऐसे हैं, जो अभिनेय वही हैं जैसे उर्वशी आदि। किन्तु 'अंधायुग' उत्तर प्रियदर्शी और एक कंठ विषययी जैसे सफल गीतिनाट्य है जैसे उर्वशी आदि किन्तु अधायुग उत्तर प्रियदर्शी और क कंठ विषयायी जैसे सफल गीतिनाट्य है जिनका

मंच पर अभिनय हो चुका है।

गीतिनाट्यों का वर्गीकरण—गीतिनाट्यों का वर्गीकरण विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से किया है कुछ आलोचकों ने सामान्य विभाजन मात्र कर दिया है जैसे गिरीश रस्तोगी ने इन्हें चार वर्गों में बाँटा है। 1—पाठ्य, 2—गीतितत्व प्रधान, 3—श्रव्य और 4—द्रश्य।[31] निर्मला जैने ने काव्य रूपक के अन्तर्गत गीतिनाट्य को उसका एक रंग माना जाता है।[32] लेकिन ये वर्गीकरण न तो ठीक हैं न पूर्ण। गीति नाट्यों के वर्गीकरण के कई आधार हो सकते है।

(स) तात्विक परिशीलन—यद्यपि गीतिनाट्य का तात्विक परिशीलन उद्देश्य एवं शिल्प पूर्ण रूपेण सा प्रतिक है, किन्तु वह एक दम नई विद्या नहीं है। यह इतिहास के दीर्घकालीन विकास का प्रतिफल है। एक ओर जहां इसकी जड़ें वैदिक युग से रस प्राप्त करती है वहीं दूसरी ओर पाश्चात्य साहित्य से प्रेरणा लेकर प्राणवान होती है।

प्राचीन तात्विक परिशीलन—आचार्यों ने तात्विक साहित्य में से पद्यात्मक संवादों को खोज निकाला है। ऋग्वेद में ऐसे अनेक पद्यात्मक संवादों का उल्लेख मिलता है जिनमें गीतिनाट्य के तत्व विद्यमान हैं।[33] जय शंकर प्रसाद ने सोमपान के अवसर पर एक अभिनय का प्रसंग स्रोत सूना से उद्धृत किया है, जिसमें सीप विक्रेता और ऊध्वर्य का संवाद आता है।[34]पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि वैदिक संवाद गद्य—पद्यात्मक थे।[35]

अभिनव गुप्त ने अभिनव भारतीय में 'राग काव्य' का उल्लेख कियाहै उसने 'राघव विजय' और 'मारीच वध' को राग काव्य बताया है। जिनमें नृत्य अभिनय मिश्रित गीतात्मक अभिव्यक्ति की प्रधानता थी।[36]

वैदिक काल में संगीत कला पूर्ण रूपेण उन्नति कर चुकी थी। साम गायक उद्माताक्रात्विक यज्ञ के समय साम सूत्रों का महिमामय संगीत गूंजा करता था।

यद्यपि इस काल में न तो नाटक का ही पूर्ण विकास हुआ था और न गीतात्मक अभिनय का फिर भी परवर्ती संस्कृत साहित्य ने इनसे प्रेरणा अलग ली होगी। संस्कृत साहित्य—संस्कृत काल तक आते—आते नाट्य साहित्य का पर्याप्त विकास हुआ। संस्कृत के अधिकांश नाटक पद्य पद्यात्मक हैं। भाष के नाटकों में इसी शैली को अपनाया गया है।

'स्वप्न वासवदत्ता' 'चारूपत्त और प्रतिभा' नाटकों में गीतिमय संवादों का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है संस्कृत साहित्य में गीति—अभिनय की कोइ चर्चा नहीं है कालिदास के विक्रमोवैशीय के चतुर्थ अंक में चंर्चीरका छन्द में कुछ प्रकट मान मिलते है।[37] कालिदास के परवर्ती नाटकों में भी काव्यात्मक संवादों का प्रयोग होता रहा। भवभूति के 'उत्तर रामचरित' में गद्य पद्य का सुन्दर समन्वय हुआ है संस्कृत नाटककारों ने भावात्मक स्थलों पर प्रायः पद्य का ही प्रयोग किया है संस्कृत साहित्य में रूप के अनेक भेद हैं। लेकिन गीति उनमें से एक भी नहीं है। जयेदेव ने गीतिगोविन्द में सुन्दर गीतात्मक सम्वादों का प्रयोग किया है और इसमें गीति के हर सिरे पर राग, ताल का प्रयोग किया है।

गीति गोविन्द को खण्ड गीतिनाट्य कहा जा सकता है वास्तव में गीत गोविन्द में गीति नाट्य का प्रारम्भिक स्वरूप देखा जा सकता है। दशरथ ओझा का विचार है कि गीतिनाट्य की परम्परा 13वीं शताब्दी में ही प्रारम्भ हो गई थी। इनकी भाषा अपभ्रंस तथा गुर्जर या राजस्थानी मिश्रित थी और तभी से हिन्दी नाटकों की परम्परा अक्षुण्य रूप से चली आ रही है।[38]

हर्ष के समय में गीतात्मक नाट्य बड़े लोक प्रिय हो गये थे। जैन आचार्यों ने इस क्षेत्र में विशेष प्रयत्न क़िए। 15वीं शताब्दी तक आते—आते गीतिनाट्य के स्वरूप का और अधिक विकास हुआ इस काल में नाट्यकारों का एक वर्ग ऐसा था जो लोक प्रचलित नाट्य पद्धतियों के मिश्रण से अभिनव नाटक शैली का प्रयोग

कर रहे थे। इनका प्रधान केन्द्र देवालय थे। जो गीति शैली को अपनाकर वैर्ष्णव धर्म का प्रचार कर रहे थे। इन्होंने काव्य के हृदय ग्राही माध्यम से जन साधारण को अपनी ओर आक्रर्षित करने में अपार सफलता प्राप्त की। असम के श्री मन्त शंकर देव (1569 ई.) तक ने संस्कृत नाट्य शैली का अनुसरण न कर स्थानीय गीतिनाट्य शैली (ओझा पाली) में नाटकों की रचना की।[39] इन गीति नाट्यों को रंगशाला में प्रदर्शित कर ये नाटककार वैर्ष्णव धर्म का प्रचार तथा प्रसार कर रहे थे। असमीया साहित्य में संस्कृत्तोतर काल का प्राचीनतम गीत नाट्य के रूप में देखने को मिलता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1–धर्मवीर भारती 'अंधा युग':– किताब महल इलाहाबाद प्र. स. 1955 निर्देश पृ. 4–51

2–निर्मला जैनः आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप विधाऐं नेशलन पब्लिशिंग हाअस दिल्ली प्र. स. 1962 पृ. 360–61

3–देखिए अ– कृष्ण सिंहल हिन्दी :गीतिनाट्य' भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन कलकत्ता प्र. स. पृ. 115

ब–श्री पति मिश्र हिन्दी नाटकों पर पाश्त्रात्य प्रभाव– विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा पृ0 स. 343

4–सुरेश गुप्तः 'हिन्दी के श्रेष्ठ काव्यों का मूल्याकन सं. यशगुलाटी– सूर्य प्रकाशन नई दिल्ली प्र.स. 996 पृ. 654

5–देखिए उदय शकर भट्ट अशोक वन बन्दिनी तथा अन्य गीतिनाट्य एस. याद एण्ड का. दिल्ली, प्र. स. किचित वक्तव्यम् ख।

6–धर्मवीर भारती 'अंधा युग' किताब महल इलाहाबाद प्र0 सं0 1955 निर्देश पृ0 4–51

7–अदय शंकर भट्ट विश्वामित्र और दो भाव नाट्य आत्माराम स्व सन्स दिल्ली प्र. स. 1960 स्पष्टीकरण

8–शकुन्तला दुबे काब्य रूपों का मूल स्रोत और उनका विकास हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वारणसी प्र.स. 1964 प्र. 535।

9–नगेन्द्रः 'आधुनिक हिन्दी नाटक' साहित्य रत्न भण्डार आगरा प्र. स. 1964 पृ. 117

10–रामचरण महेन्द्रः– 'हिन्दी एकांकी उद्भव और विकास' साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, प्र. स. 1958 पृ. 364

11–निर्मला जैनः– आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप विधाएं पृ. 360–61

12–दृष्टव्य– 1 'सूरदास' वीरेन्द्र नारायण कल्पना नवम्बर 61

2. यमुनां गंगा की लहरें रमेश कुन्तल मेघ, कल्पना अगस्त 61

3. 'नाटक साहित्य का अध्ययन' ब्रेडर मैथ्यूज अनु. इन्दुणा अवस्थी, आत्माराम एड सन्स प्र. स. 1964 पृ. 139

13–'भरत और भारतीय नाट्य कला' सुरेन्द्र नाथ दीक्षित राजकमल प्रकाशन प्र. स. 1970 प्र. 124

14—देखिये हिन्दी साहित्य कोश

15—1—सृष्टि की सांझ और अन्य काव्य

रूपकः— सिद्ध नाथ कुमार पुस्तक मन्दिर बक्सर प्र. स. 1959

2. हिन्दी नाटक सिद्धान्त और विवेचनः— गिरीश रस्तोगी ग्रन्थ मन्दिर कानपुर प्र. स. 1967

3. माध्यम जून 1964

16—1—देखिये रजत शिखर—शिल्पी और सौवर्ष (सभी काव्य रूपक संग्रह) सुमित्रा नन्दन पंत क्रमशः भारती भण्डार इलाहाबाद प्र. स. राज कमल प्रकाशन दिल्ली प्र. स. 1940 और भारतीय ज्ञानपीठ काशी प्र. स. 1957

2. ओसपूत भारती बीरेन्द्र कुमार अधीर आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली प्र. स. 1970

3. हिन्दी काव्य की रूपविधाएंः— निर्मला जैन

17—हेणलिट एकयुअली आइडेण्टीफाइड पोयट्री विथ जेसन फिथर इज पोयट्री हेटर्ड इज पोंयट्री कन्टैक्ट जैलसी रिर्मास एडमिरेशन वण्डर पिटी, डिस पेपर और मैडनेस आरल आर पोयट्री लिटरेरी एस मल्लिक बी आर एस थाक एण्ड कम्पनी दिले सं. 1960 पृ. 67

18—स्युस्त हिन्द काव्य मित नाट्य दपर्ण स. नगेन्द्र पृ. 408

19—भरत और भारतीय नाट्य काल सुरेन्द्र नाथ दीक्षित पृ. 151—52

20—देखिये माध्यम माध्यम जनवरी 1969 पृ. 82—83

21—द्रष्टव्य 1. सिद्धनाथ कुमार 'हिन्दी एकांकी शिल्प विकास' ग्रन्थम कानपुर प्र. स. 1966 पृ. 352

2. रामचरण महेन्द्रः— हिन्दी एकांकी उद्भव और विकास पृ. 363

22—माध्यम जनवरी 1966 पृ. 82

23—देखिये पाषाणी जानकी बल्लभ शास्त्री लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद द्वि. स. 1967 पृ. 7

24—इट (लिरकल पोयट्री) इन्क्लूडस आर परसलन एण्ड एनथुआस्टिक र्टि आफ व्हाट लिब्स एण्ड ब्रीद्स इन दी वर्स सो देट दी डिवीजन्स पीडेण्टिक क्रिटीसिज्म आर आफ नोरियल अवेल टू अस इन इटस कन्सीडरेसन।

25—दि लिरिक हैज फक्शन आफ रिवीलिंग इन टर्मस आफ प्योर आर्ट्स दी सेकेट आफ इनर लाइफ इटस फेन्टास्टिक जोयस इट्स सोरोज इट्स डिलेरियम वही।

26—इफ वी वाण्ट टू गेट दी परमानेन्ट एण्ड यूनीवर्सल, वी टैण्ड टू एक्सप्रेस अवर सेल्वस इन वर्स टी. एस. ईलियट सिलेक्टिड एसेज पी. हरकोर्ट ब्रास एण्ड कम्पनी न्यूयाक 1936 पृ. 46

27—इट निगिलेक्ट्स दी आउट शेल्स आफ रियलिटी एण्ड डायरैक्टली सीवस टू इमीटेट दी फोर ओर राइटर इट सीवस टू इमीटेट इन यू दी इफेक्ट व्हिच वुड वी प्रोडयूस्ड इफ यू परसीटड विथ सरटेन्ली एण्ड क्लेरिटी दी ग्राण्ड इमोशनल इम्पल्स ड्राइविंग आल एग्जिस्टेस। चतुवेर्दी वी. एन. दी पोयटिक ड्रामा आफ ट्वन्टभ्यथ सैन्युरी पृ. 28

28—हजारी प्रसाद द्विवेदी साहित्य, सहलर नैवेय निकेतन वाराणसी 1965 पृ. 193

29—माध्यम फरवरी 1965

30— इन ए परफेक्टली सक्यैजफुज पोयटिक प्ले, दी व्होल आफ दी टाकिंग केन बी इन नेचुरली इन पोयट्री एण्ड वी मस्ट आल्वेज फील इट टू बी नेयुरल, —लिटरेरी एसे—मल्लिक वी आर0 पृ0 75

31—देखिए—हिन्दी नाटक, सिद्धान्त और विवेचन पृ0 154

32—देखिए—हिन्दी काव्य की रूप विधाएं पृ0 361—64

33—सावित्री स्वरूपः— नव्य हिन्दी नाटक प्रथम रामबाग कानपुर पृ0 स0 1967 प्र0 1968

34—जय शंकर प्रसाद, काव्य कला तथा अन्य निबन्ध भारती भण्डार लीडर रोड प्रेस इलाहाबाद प्र0 सं0 2005 पृ0 28

35—देवर्षि सनाढ्य हिन्दी पौराणिक नाटक, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, प्र0 स0 1965, पृ0 326

36—शंकर देव अवतरे, हिन्दी साहित्य में काव्य रूपों का प्रयोग राजपाल एण्ड संस दिल्ली प्र0 स0 1962 पृ0 91

37—परिजात, 3 मई, 1948 पृ0 23

38—दशरथ ओझा, हिन्दी नाटक उद्भव और विकास, पृ0 70 तथा 287

39—चिन्त महन्त असमीया साहित्य और साहित्यकार, विनोद पुस्तक मन्दिर, प्र0 सं0 पृ0 43

द्वितीय अध्याय

द्वितीय अध्याय

परारम्परिक अन्तर्धारा और हिन्दी गीति–नाट्य

गीति–नाट्यों का उद्भव और विकास–गीति–नाट्यों का आधुनिक रुप उद्देश्य एंव शिल्प पूर्ण रुपेण सांप्रतिक है, किन्तु यह एक दम नई विधा नहीं है। यह इतिहास के दीर्घ कालीन विकास का प्रतिफल है। एक ओर जहां इसकी जड़ें वैदिक युग से रस प्राप्त करती है, वहीं दूसरी ओर पाश्चात्य साहित्य से प्रेरणा लेकर प्राणवान होती हैं।

आचार्यों ने वैदक साहित्य में से पद्यात्मक संवादों को खोज निकाला है। "ऋग्वेद में ऐसे अनेक पद्यात्मक संवादों का उल्लेख मिलता है" ।[1] जयशंकर प्रसाद ने सोमपान के अवसर पर एक अभिनय का प्रसंग स्रोत सूत्र से उद्धृत किया है, जिसमें सोम विक्रेता और ऊध्वर्य का संवाद आता है।[2] पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि वैदिक संवाद गद्य–पद्यात्मक थे।[3]

अभिनव गुप्त ने अभिनव भारती में 'रागकाव्य' का उल्लेख किया है। उसने 'राघव विजय' और 'मारीच वध' को राग काव्य बताया है जिनमें नृत्य अभिनय मिश्रित गीतात्मक अभिव्ययक्ति की प्रधानता थी।[4]

वैदिक काल में संगीत कला पूर्ण रूपेण उन्नति कर चुकी थी। साम–गायक उद्गाताक्रत्विक यज्ञ के समय साम सूत्रों का महिमामय संगीत गूंजा करता था। यद्यपि इस काल में न तो नाटक का ही पूर्ण विकास हुआ था और न गीतात्मक अभिनय का। फिर भी परवर्ती संस्कृत साहित्य ने इनसे प्रेरणा अवश्य ली होगी।

संस्कृत साहित्य– संस्कृत काल तक आते–आते नाट्य साहित्य का पर्याप्त विकास हुआ संस्कृत के अधिकांश गद्य पद्ययात्मक हैं भाष के नाट्कों में इसी शैली को अपनाया गया है। "सवप्न वासवदत्ता", "चारु दत्त" और "प्रतिमा" नाटकों में गीति मैं संवादो का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है। संस्कृत साहित्य में गीति

अभिनय की कोई चर्चा नहीं है। कालिदास के विक्रमों वंशीय के चर्तुथ अंक में चंचीरक छन्द में कुछ प्राक्रतगान मिलते है।[5] कालिदास के परवर्ती नाटकों में भी काव्यात्मक संवादो का प्रयोग होता रहा भवभूति के ''उत्तर रामचरित'' में गद्य पद्य का सुन्दर सवन्वय हुआ है। संस्कृत नाटककारों ने भावात्मक स्थलों पर प्रायः पद्य का ही प्रयोग किया है। संस्कृत सहित्य में रूपक के अनेक भेद हैं। लेकिन 'गीति' उनमें से एक भी नही है। जयदेव ने गीति गोविन्द में सुन्दर गीतात्मक संवादों का प्रयोग किया है और इसमें गीत के हर सिरे पर राग–ताल का प्रयोग किया गया है। गीत गोविन्द को खण्ड गीत नाट्य कहा जा सकता है वास्तवमें गीत–गोविन्द गीतिनाट्य का प्रारम्भिक स्वरूप देखा जा सकता है।

दशरथ ओझा का विचार है कि गीतिनाट्य की परम्परा 13वीं शता ब्दी में ही प्रारम्भ हो गई थी। इनकी भाषा अपभ्रंश तथा गुर्जर या राजस्थानी मिश्रित थी और तभी से हिन्दी नाटकों की परम्परा अक्षुण्ण रूप से चली आ रही है।[6] हर्ष के समय मे गीतात्मक नाट्य बड़े लाकप्रिय हो गये थे। जैन आचार्यों ने इस क्षेत्र में विशेष प्रत्यन किये। 15वी शताब्दी तक आते–आते गीतिनाट्य के स्वरूप का और अधिक विकास हुआ।

इस काल में नाटककारों का एक वर्ग ऐसा जो लोक प्रचलित नाट्य पद्धतियों के मिश्रण से अभिनव नाट्य शैली का प्रयोग कर रहे थे। इनका प्रधान केन्द्र देवालय थे जो गीत शैली को अपनाकर वैष्णव धर्म का प्रचार कर रहे थे।

इन्होंने काव्य के हृदयग्राही माध्यम से जन साधारण को अपनी ओर आकर्षित करने में पर्याप्त सफलता प्राप्त की। असम के श्री मन्त शंकर देव(1969ई. तक) ने संस्कृत नाट्य शैली का । अनुसरण न कर स्थानीय गीतिनाट्य शैली (ओझा पाली) में नाटकों की रचना की।[7]

इन गीतनाट्यों का रंग शाला में प्रदर्शित कर ये नाटककार वैष्णव धर्म का

प्रचार तथा प्रसार कर रहे थे। असमीया साहित्य में संस्कृत्तोतर काल का प्राचीनतम गीतिनाट्य देखने को मिलता है।

(अ) प्राचीन महाकाव्यों में गीतिनाट्यीन सन्दर्भ–

अब तक ऐसे नाटकों का विवरण दिया गया है जिनमें काव्य तत्व प्रर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। अब ऐसे महाकाव्यों पर प्रकाश डालेंगे जिनमें नाट्य तत्व पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं।

प्रबन्ध काव्य मे जीवन का सम्पूर्ण एवं ब्रह्द चित्र प्रस्तुत किया जाता है उसमें जीवन गाथा का संयोजन इस प्रकार होता है कि समक्ष पद्य प्रतिभाषित हो उठते हैं घटनाओं और पात्रों के संघात से कथा विकसित होती हुई फल प्राप्ति की ओर अग्रसर होती है। इनमें संलाप द्वारा भी कथानक को गति प्राप्ति होती है। प्राचीन कवियों को नाटक के प्रभाव का ज्ञान था यही कारण है कि पुरातन काव्य ग्रन्थों में नाटकीय ज्ञान था, यही कारण है कि पुरातन काव्य ग्रन्थों में नाटकी कथोपकथनों के माध्यम कथा को विकसित किया गया।

उनमें पर्याप्त नाट्य तत्व है। यहां नाट्य–तत्व से तात्पर्य उन महाकाव्यों मे आए कथोपकथनों से है, जिन्हें यदि थोड़ा परिवर्तित कर दिया जाय तो उनका अभिनय किया जाता है वैसे तो अनेक महाकाव्यों में नाटकीयता हे लेकिन यहां केवल प्राचीन महाकाव्यो मे से केवल रामचरित मानस रामचन्द्रिका, विज्ञान गीता, जहागीर जस चन्द्रिका, का ही वर्णन किया जायेगा। आधुनिक महाकाव्यों से 'कामायनी' और 'साकेत' को भी इस विवेचन में सम्मिलित किया गया है।

1– रामचरित मानस– तुलसीकृत 'रामचरित मानस' में नाटकीय संवाद भरे पड़े है इन सम्वादों के माध्यम से 'रामचरित मानस' को अभिनीत करने के पयत्न भी हुए हैं। दिल्ली की एक रामलीला बैले प्रस्तुत किए हैं।

इसमें पार्श्व में बैठे गायक चौपाइयों को नाटकीय ढंग से पढ़ते जातें है और

पात्र तदनुकूल अभिनय करते जाते हैं रामचरित मानस में वैसे तो अनेक संवाद है लेकिन इनमें से मुख्य है–राम–परशुराम संवाद कैकयी–मंथरा संवाद, कैकयी–दशरथ संवाद, केवट–राम संवाद, राम–भरत संवाद, सुपर्णखा–लक्ष्मण–राम संवाद, रावण–हनुमान संवाद, रावण–अंगद सवाद, हनुमान–सीता संवाद, आदि इन संवादों में ईसत कर देने मात्र से नाटकीयता आ जाती है। कुछ तो केवल नाम लिख देने मात्र से ही नाटक बन जाते हैं। एक उदाहरण परशुराम–लक्ष्मण संवाद का दृष्टव्य है।

राम–"**नाथ संभुधन भंजनिहारा। होइहि केउ एक दास तुम्हारा।।**"

परशुराम–

"**सेवकु सो जो करै सेवकाई। अरि करनी करि करिअ लराई।**

"**सुनहु राम जेहिं सिवधनु तोरा। सहसबाहु सम सो रिपु मोरा।।**"

लक्ष्मण–"**बहु धनुहीं तोरीं लरिकाईं। न असरिस कीन्ह गोसाई।**

परशुराम रे न्रप बालक काल बस बसेलत तोहि संभारधनु ही सन त्रिपुरारि धनु न विदित सकल संसार। लक्ष्मण का छविलाभ जीन्ह धनु तोरे देखा राम नयन के भेरे हुअत टूट रघुपतहि ने दासू–

मुनि बिन काज करत कर रोसू

परशुराम बालक बोलि बधहु नहि तोही केवल मुनि जड़ जानत मोही।

इसी प्रकार परस्पर संवाद और कथा चलती रहती है, स्पष्ट है कि रामचरित मानस में पर्याप्त नाट्कीयता है और निश्चय ही आगे के लेखको, गीति–नाट्यकारों को इनसे प्रेरणा मिली होगी।

केशव के काव्य ग्रन्थ– हिन्दी महाकाव्यों में केशव की संवाद शैली पूर्ववती और परर्वती में महाकाव्यकारों में सर्वश्रेष्ठ है। उनके पूरवर्ती कवि जायसी, तुलसी आदि ने जो संवाद लिखे हे वे केशव की समता नहीं कर सकते। आधुनिक

काल में 'कामायनी' और 'साकेत' में सुन्दर संवाद योजना है लेकिन प्रसाद और गुप्त जी, केशव से पिछड़ गये हैं। जायसी और तुलसी के संवादो में गीत प्रेरकता नहीं है। वे पात्रों के वार्तालाप मात्र बनकर रह गये हैं। किन्तु केशव ने नामों का निर्देश करते हुए नाटक की तरह संवाद लिखे हैं। फलस्वरूप उनमें अभिनेत्व के गुण भी आ गये हैं। इन संवादों में साहित्यिक क्षमता के साथ–साथ अभिनेयत्व एकाकार हो गये हैं।

लाला भगवान दीन के अनुसार केसव के एकाकार हो गये हैं। लाला भगवानदीन के अनुसार 'केसव' के संवादों में नाटककार भास के नाटकों का आन्न्द आता है। यही कारण है कि 'रामचन्द्रिका' को 'नाटकीय प्रबन्ध काव्य की संज्ञा' दी जाती है आचार्य राम चन्द्र शुक्ल लिखते हैं कि इन संवादों में पात्रों के अनुकूल क्रोध, उत्साह आदि की व्यंजना बहुत सुन्दर है। जैसे राम लक्ष्मण परशुराम संवाद में वाक पटुता और राजनीति के दांव पेच का आभास भी भावपूर्ण है।

1–राम चन्द्रिका– केशव कृत रामचन्द्रिका में वैसे तो सवादों की भर मार है किन्तु निम्न सत्रह प्रसंगों का विशेष आकर्षण है–

दशरथ–विस्वामित्र, सुमति–विमति संवाद, रावण वाणासुर संवाद, जनक विश्वामित्र और राम संवाद, कौशिल्या–भरत संवाद, कैकेयी–भारत संवाद, सुपर्णखा–राम–लक्ष्मण संवाद, राम–जानकी संवाद, रावण–अंगद संवाद, सीता–हुनमान संवाद, रावण–हनुमान संवाद, लव–कुश संवाद और लव–कुश–विभीषण संवाद, केसव–संवाद श्राव्य अश्राव्य दोनों तरह के अश्राव्य का एक वर्णन देखिये–राम–भरत का हाथ पकड़े, जमदग्नि के पास जाते हैं तो उन्हें देखकर परशुराम मंत्र मग्ध हो जाते हैं। और अपने इन शब्दों में भगवान राम के लावण्य की सराहना करने लगते हैं।

अमल गजल धन श्यामु तपु के शोदास

चन्द्र हू तो चारु मुख, सुखमा के ग्राम है।

2—विज्ञान गीता— केशव की विज्ञान गीता के सवादों को देखकर तो कइ आचार्यों ने इसे नाटक की संज्ञा दे डाली है। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र[8], एस के लाल[9], लक्ष्मीसागर वाएणेय[10] आदि इसे नाटक ही मानते हैं।

इस पर प्रबोध चन्द्र दोदय की छाप है इसमें इक्कीस प्रभाव है। यह एक रूपक कार्य है। महामोह और विवेक दो राजा हैं। मिथ्या प्रष्टि महामोह की रानी है। दुराशा, तृष्णा, चिन्ता;, निन्दा उसकी दासिया हैं, काव्य, क्रोधादि उसके दलिपत, आलस्य उसके रोग, उसके योद्धा छल—कपट आदि उसके दूत हैं। विवेक की रानी उसकी बुद्धि है। दान, अनुराग, शील, सन्तोष आदि उसक कुटुम्बी हैं। विजय सत्संग, राज धर्म उसके मन्त्रीं है। धैर्य उनका दूत है। दोंनों योद्धाओं में युद्ध छिड़ता है, जिसमें अन्ततः महामोह की पराजय हो जाती है। पूरा ग्रन्थ संवादो से भरा है लेकिन इसके नाटक नहीं माना जा सकता है क्यों कि इसमें कवि के स्वंयं के कथन बहुत अधिक है। कवि स्वयं मगलाचरण, कवि वंश वर्णन, राजवांश वरण आदि का काव्यात्मक उल्लेख करता है। कई—कई प्रष्ठ तक कोई संवाद नहीं है नाट्योचित कथोपकथन सर्वथा एक से नहीं । इसे नाट्य काव्य मानना उचित होगा।

3—जहांगीर जस चन्द्रिका— यह रचना उद्यम और भाग्य के कथोपकथन के रूप में लिखी गई है। उद्यम और भाग्य में श्रेष्ठता के लिए विवाद छिड़ता है और निर्णय के लिए दोंनों शिवजी के पास जाते हैं। शिवजी उन्हें जहांगीर के पास भेज देते है जहांगीर निर्णय देता है कि दोनों बराबर हैं, छोटा बड़ा कोई नहीं।

साधारण कोटि की रचना होते हुए गीतिनाट्य के रूप में इसका विशेष महत्व है।[11] केशव के संवादो की विशेषताओं पर यहा विसतार से प्रकाश डालना सम्भव नहीं किन्तु इतना कह देना पर्याप्त है कि केशव के संवाद महाकाव्य के दृष्टि से मौलिक और सफल प्रयोग हैं। उनमें कथानुकूलता, भावानुकूलता, नाट्योचित

क्षिप्रता, सूक्ष्मता और प्रभावोत्पादकता है।

4—कामायनी—आधुनिक महाकाव्यों में कामायनी और साकेत ऐसे हैं जिनमें पर्याप्त नाटकीयता है, प्रसाद ने कामायनी में यत्र—तत्र संवादों का प्रयोग किया है। कामायिनी भी रूपकात्मक काव्य है और उसमें रूपक तत्व आदि से अन्त तक बना रहता है।

कामायनी में आए संवादात्मक प्रसंग निम्नलिखित हैं।—

1— श्रद्धा सर्ग में—श्रद्धा मनु संवाद,

2— कर्म सर्ग मे—आकुलि—किरात संवाद,

3— इूडा सर्ग में—इूडा मन संवाद

4— स्वप्न सर्ग में—श्रद्धा बच्चा संवाद

5— दर्शन सर्ग में—श्रद्धा, इूडा, बालक संवाद

6— रहस्य सर्ग में—श्रद्धा—मनु संवाद

किन्तु इन संवादो में पर्याप्त नाटकीयता नहीं आने पाई। वे केवल वार्तालाप मात्र प्रतीत होते है अभिनव के तत्व उनमें नहीं हैं। मंत्र पर उनका अभिनव संभव भी नहीं अतः उन्हें केवल पाठ्य संवाद ही कह सकते हैं।

5—साकेत— केशव के बाद नाटकीय संवादों की दृष्टि से यदि किसी कृति का नाम लिया जा सकता है तो वह गुप्त का साकेत है। पन्द्रह फरवरी 1956 को हिन्द टाकीज बरेली में साकेत के नाट्य तत्वों को साकेत की भाषा में बिना कोई परिवर्तन किये प्रदर्शित किया गया।[12]

जो इस बात का परिचायक है कि 'साकेत' के संवाद अभिनेय है साकेत में निम्न ऐसे प्रसंग जिनमें उच्चकोटि के नाटकीय संवाद देखने को मिले है—

1— उर्मिला—लक्ष्मण संवाद

2— कैकेयी—मंथरा संवाद

3— दशरथ—कैकेयी संवाद

4— चित्रकूट में सभा संवाद

5— माण्डवी—भरत संवाद

6— हनुमान—भरत संवाद

गुप्त जी के संवाद जहाँ कथा को गति प्रदान करते हैं, वहीं वे अन्तः वृत्तियों को प्रकाशित करने में भी सक्षम है। उनमें सरसता, मधुरता और सजीवता है। कैकेयी—मंथरा संवाद में जहां गूढ़ता है वही सीता राम के प्रणय परिहास अथवा सीता लक्ष्मण के विनोद कथनों में हास्य व्यंग्य विनोद के दर्शन हाते हैं। साकेत के संवादो में उतार चढ़ाव है, भावानुकूल तीव्रता है, उग्र संवादो में मनोवैज्ञानिकता भी दृष्टिगोचर होती है कहीं कहीं कल्पना और स्लेप का सहारा लिया जाता है। जिसके कारण उनमें मार्मिकता भी आ गई है।

उक्त विवेचना से स्पष्ट है कि जहां एक ओर नाटको में पद्य का बहुलता से प्रयोग होता रहा है। गीतिनाट्यों की प्रष्टिभूमि में लिखे गये ये ग्रन्थ इस बात की पुष्टि करते है कि गीतिनााटय का प्रादुर्भाव सहसा ही नही हो गया। वह एक लम्बी परम्परा का परिणाम है।

(ब) लोकनाट्य—परम्परा मे गीतिनाट्यता—

(अ) रास नाटक— असम के समान उत्तर भारत में कुछ ऐसे लोकनाट्य भी प्रचलित थे जिनका माध्यम पद्य इन्हें रासक स्वांग नौटंकी आदि कहा जाता था।

ये नाटक गीतिनाट्य के अत्यन्त निकट थे प्रारम्भ में 'रास' नृत्य प्रधान थे बाद में आख्यात्मक नृत्य गीतों का प्रारम्भ हुआ धीरे—धीरे इनमें गीतां की प्रधानता बढ़ने लगी और कालान्तर में इन नृत्य गीतों की स्थिति केवल गेह रह गयी।[13] आगे चलकर इस रास परम्परा की दो धाराएं हो गयी। एक में विविध छन्दो की

प्रधानता थी और दूसरे में प्रचलित राग गीतों की धुनों पर मार्मिक रचनाएं होने लगी नृत्य गीतों पर आगे राजस्थाान में रासड़ो नृत्य का विकास हुआ वास्तव में इस प्रकार से लोक नाट्य के भारत में हर क्षेत्रों में विविध रूपों में देखने को मिलते हैं। अवधी, ब्रज, पूर्वी हिन्दी के क्षेत्रों में रास, झूमर, ढोला, भारू, आदि गुजराती में भवाई, मराठी में लड़िते और तमाशा, तेलुगु में 'भगवत मेल' बुर किया हरिकथा, विधि नााटकम आदि में काव्य और संगीत को प्रधानता थी।[14] इसी प्रकार बंगला के जागा नाटक असम के ओझापालि, आदि भी गीत प्रधान थे। हजारी प्रसाद द्विवेदी रास नाटकों के बारे में लिखते हैं कि ''इन ग्रन्थों (रास ग्रन्थ) में जो पद्धति सर्वत्र रूप में पाई जाती हैं वह है संगीत की।

सभी रास विविध छन्दों में राग–रागनियों के साथ मंगलाचरण और प्रशस्ति समन्वित है आश्चर्य तो यह है कि ये पद्धति बंगाल में प्रचलित जागा नाटकों में, महाराष्ट्र में अभनीत दशावतारी नाटकों तथा गुजरात में प्राप्त थी। ऐसा प्रतीत होता है कि देश का जनमत उस काल में गद्य की अपेक्षा संगीत मय काव्य के पक्ष में अधिक था।[15]

रास ग्रन्थ की अधिकान्त विशेषताएं गीतिनाट्य जैसी हैं। रास नाटक की सबसे बड़ी और प्रधान विशेषता यह है कि ये अद्यांत छन्दोवद्ध और गेय होते है।

गीतिनाट्य की पहली शर्त यही है कि वह पूर्णत' गेय और छन्दोवद्ध हो रास और गीतिनाट्य दोनों में गद्य का भाग सवर्तः उपेक्षित रहता है दोनों गद्य और संगीत पर आधारित होते हैं दोनों में नाटकीयता और गेयत्व गीतनाट्य या नाटकीयता की दृष्टि से अगर कुछ त्रुटियाँ इनमें है तो एक तो यह है कि कवि मौजूद है। कविता कहकर कवि स्वयं नाटकीय घटनाओं का वर्णन करने लगता है दूसरे काव्यात्मक का अभाव रहता है घटना कौतूहल को विशेष रूप से चित्रित किया जाता है रंग संकेत प्रवेश और निष्क्रमण का कोई उल्लेख इनमें नहीं होता

है। लेकिन ये कोई ऐसी बड़ी कमियां नही हैं। कवि वही कार्य करता है, जो उदघोषक या नरैटर करता है। प्रवेश, निष्कृमण आदि की सूचना भी यंत्र–तंत्र मिल जाती है। शिष्ट नाटकों की तरह इन लोक नाट्यों में विशिष्ट रंग मंच आकर्षण और खर्चीली वेषभूषा आदि पर ध्यान देना सम्भव नहीं था। अतः रंग निर्देशन देकर निर्देशक और नटों पर छोड़ दिया जाता है कि वे जैसी चाहें वैसी व्यवस्था करें। इन रास ग्रन्थों को हम लोक नीति की संज्ञा दे सकते हैं।
आचार्य नन्द दुलारे बाजपेई[16] और डा. सोम नाथ गुप्त[17] तथा कृष्ण दास[18]। इन रसलीलाओं की गीतिनाट परम्परा का आदि रूप मानते हैं।

(ब) स्वांग– स्वाँग भी गीतिनाट्य जैसे भी है। 'स्वाग' 'भराई' हमारी बोल चाल की भाषा है। इसमें किसी व्यक्ति विशेष की नकल उतारी जाती है। जैसे इन्दर सभा में इन्द्र के दरबार का स्वांग है। आरम्भ में स्वांग पद्य में लिखे जाते थे, परन्तु कालान्तर में इनमें पद्य के स्थान पर गद्य का प्रयोग बढ़ने लगा। स्वांग बहुत कुछ अंग्रेजी "आपेरा" से मिलते जुलते हैं।

(स) नौटकी– उत्तर भारत में विशेषकर बृज क्षेत्र रास नाटकों का एक अपन रूप नौटकी के नाम से जाना जाता है। इनमें भी पूर्ण रूपेण पद्य का ही प्रयोग होता है। पात्र नगाड़े तथा अन्य वाद्य यन्त्रों की संगति में गाकर सम्वाद बोलता है। ये सम्वाद इतने प्रभावोत्पादक होते हैं कि दर्शक रात–रात भर इन्हें सुन–सुनकर झूमते रहते हैं।

मैं तो यहां तक कहूंगा कि सामान्य जनता को जितना ये लोकनाट्य प्रभावित करते हैं उतने न तो सुसंस्कृत कहे जाने वाले साहित्यिक नाटक ही कर सकते हैं और न गीत नाट्य यहीं आकर साधारणीकरण का सच्चा स्वरूप देखने को मिलता है। दर्शकों का मूल पात्रों की भावना के साथ तादात्म्य हो जाता है और लेखक की अनुभूति के साथ–साथ प्रेक्षक, पात्र एकाकार हो जाते हैं इस

निष्पत्ति का ऐसा सुन्दर उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ होता है।

(द) रामलीला– राम कथा उत्तर भारत के लोगों का आदर्श और प्राण है आदि कवि वाल्मीक और महाकवि तुलसीदास की राम कथाके आधार पर अनेक राम लीलाएँ लिखी गई कहा जाता है कि स्वयं तुलसी दास ने ही राम लीला का अभिनय करवाया था। विजय दशमी के आस पास आज भी राम लीला होती है इसमें गेयत्व और अभिनेयत्व का अद्‌भुत समिश्रण देखने को मिलेगा। राम लीला का रूप भी लोक नीति नाट्‌य जैसा है।

ब्रज भाषा नाटक (1610–1867ई.)– बृजभाषा नाटकों की शैली और शिल्पगीत नाट्‌यों के अत्यधिक निकट है।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र से पूर्व ब्रज भाषा में अनेक नाटक रचे गये, जिनकी संख्या चालीस से ऊपर है।[19] इनमें कुछ मौलिक ग्रन्थ हैं और कुछ अनूदित है। बृज भाषा के नाटको को कुछ आलोचक काव्य मानते हैं तो कुछ नाट्‌य काव्य कुछ समीक्षकों ने इन्हें गीति नाट्‌य की संज्ञा दी है कुछ समीक्षक इन्हें हिन्दी की ही रचना नहीं मानते। शिवदान सिंह चौहान का कहना है कि ये नाटक बृजभाषा के नाटक है हिन्दी के के नही।[20] इसका अभिप्राय यह हुआ कि बृजभाषा हिन्दी की भाषा नहीं है और बृजभाषा में रचित काव्य और नाटक को हिन्दी की सम्पत्ति नहीं माना जा सकता।

यदि इस तर्क को स्वीकार कर लिया जाय तो सूर आदि बृजभाषा के किवियों को हिन्दी से वंचित होना पड़ेगा। अष्ट छाप के कवि हमारे गौरव हैं। रीतिकाल के अनेक कवियों की भाषा बृज है। हिन्दी के लल्लू लाल जैसे प्रारम्भिक गद्य निर्माताओं ने बृज भाषा गद्य में ही लिखा है। वास्तव में बृज भाषा ग्रन्थों को हिन्दी से व्यावर्तन करके नहीं देखा जा सकता वे हिन्दी की ही निधि हैं।

ब्रज भाषा नाटकों में पद्य की प्रधानता है और इसी कारण गोपीनाथ तिवारी

जैसे आलोचकों ने इन्हें गीति नाट्य की संज्ञा दे डाली है।[21] अतिसच काव्यात्मकता के कारण ही इन्हे काव्य ग्रन्थ भी कह दिया गया है।[22] ये किस प्रकार के ग्रन्थ हैं यह विस्तृत अध्ययन का विषय है फिर भी यह कहा जा सकता है कि इस काल की समस्त कृतियों को एक ही श्रेणी में नहीं रखा जा सकता न तो वे सब के सब काव्य हैं और न सबके सब नाटक।

इसी प्रकार सभी ग्रन्थ गीतिनाट्य भी नहीं हैं इनमें कुछ काव्य है जैसे 'सभासार' और 'समयसार नाटक' कुछ गद्य–पद्य मय पूर्ण नाटक है– 'आनन्द रघुनन्दन' और 'नहुष'। कुछ कृतियां नाट्य काव्य हैं जैसे राम करूणा भरण आदि। इसी प्रकार इन पर सभा संगीत रुपक है।

गीत नाट्य की दृष्टि से इसकाल के नाटकों में एक ही कृति का नाम लिया जा सकता हे वह है–गोविन्द हुलास नाटक इस गीतिनाट्य की समस्त विशेषताओं को पूरा करता है इसमें नाटकीयता भी है और काव्यात्व भी भावाभिव्यंजना भी है और अन्तः संर्घष भी यह अभिनेय है और त्रुटियों के दर्शन भी नही होते जो बृजभाषा नाटकों को काव्यवालों ने गिनाई है कुछ आलोचक इसकी मौलिकता में शंका कर सकते हैं लेकिन जिस रूप में आज यह उपलब्ध है हमें इसे गीति–नाट्य ही स्वीकार करना होगा यहीं से गीतिनाट्य की परम्परा प्रारम्भ हो जाती है।

भारतेन्दु युग– भारतेन्दु बाबू हरिशचन्द्र के आगमन के साथ नाटक के क्षेत्र में क्रान्तकारी परिवर्तन हुए। इस काल में गीत नाट्यों की रचना हुई। सामान्यतः इस काल में लेखकों का ध्यान गद्य से पद्य की ओर जाने लगा था। फलस्वरूप धीर–धीरे पद्य का स्वरूप घट रहा था। आगे चलकर समस्या प्रधान नाटकों ने तो नाटकों में से पद्य का पूर्ण बहिष्कार कर दिया फिर भी भारतेन्दु युग में पद्यात्मक नाटकों का पूर्ण अभाव नहीं रहा, स्वयं भारतेन्दु जी ने 'नील देवी' और 'भारत जननी' में प्रयाप्त पद्य का प्रयोग किया है।

भारत जननी को भारतेन्दु जी ने 'आपेरा' कहा है।

यह नाटक बहुत कुछ गीतिनाट्य के निकट है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1—सावित्री स्वरूप— नत्य हिन्दी नाटक ग्रन्थम—राम बाग कानपुर पृ. 1967—1968

2—जयशंकर प्रसाद काव्यकला तथा अन्य निबन्ध, भारती भण्डार, लीडर प्रेस इलाहाबाद सं. सं. 2005, पृष्ठ 28

3—देवर्षि सनाढय हिन्दी के पौराणिक नाटक, चौखम्भं प्रकाशन, वाराणीस, प्र. सं. 1965, पृ. 326

4—शंकर देव अवतरेः हिन्दी साहित्य में काव्य रूपों का प्रयोग, राजपाल एण्ड दिल्ली प्र. सं. 1962, पृ. 91

5—पारिजाति 3 मई 1948 पृ. 23

6—दशरथ ओझाः हिन्दी नाटक उद्‌भव और विकास पृ. 70 तथा 287

7—चित्र महंत असमीया साहित्य और साहित्यकार, विनोद पुस्तक मन्दिर प्र . स. 1970, पृ. 43

8—विश्वनाथ प्रसाद मिश्रः नया पथ मई 1956 पृ. 413

9—एस के लाल आधुनिक हिन्दी साहित्य या विकास पृ 269

10—ल. स. वास्णेयः आधुनिक हिन्दी साहित्य प्र, 225

11—हीरालाल दीक्षितः आचार्य केशव पृ. 96

12—अप्रकाशित शोध ग्रन्थ हिन्दी गीति काव्यों में नाट्य तत्व शंकरलाल मेहरोत्रा का विवरण।

13—सुमन राणे हिन्दी रासों काव्य की परम्परा ग्रन्थम रामबाग कानपुर, पृष्ठ 29—33 व 42

14—श्री कृष्ण दास हमारी नाट्य परम्परा पृ. 194

15—हजारी प्रसाद द्विवेदी प्राक्कथन हिन्दी नाटक अद्‌भव और विकास पृ0 ग—1

16—नन्द दुलारे वाजपेयी आधुनिक साहित्य पृ. 260

17—सोमनाथ गुप्त हिन्दी नाटक साहित्य का अध्ययन पृ0. 13

18—श्री कृष्ण दास हमारी नाट परम्परा पृ. 179

19—देखिए बृजभाषा साहित्य का अध्ययन सत्येन्द्र प्र. स. 2024 वि. पृ. 556—57

20—शिवदान सिंह चौहान हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष रणजीत पब्लिशर्स, यादनी चौक दिल्ली प्र. स. 1954, पृ. 116

21—हिन्दी अनुशीलन, जनवरीं— मार्च 1956 प्र. 33

22—द्रष्टव्य—अ—भारतेन्दु ग्रन्थावली भा 1 प्र. 752 ब—आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय प्र. 225

तृतीय अध्याय

तृतीय अध्याय

आधुनिक काल हिन्दी गीति नाट्य के परिप्रेक्ष्य में

(अ) द्विवेदी युगीन गीति काव्य– नीति नाट्यों का क्रमबद्ध प्रकाशन प्रसाद के करुणलय में आरम्भ होता है। लेकिन इसके पश्चात द्विवेदी युग के कई लेखकों ने सुन्दर गीतिनाट्यों का सृजन किया है इनमें मैथलीशरण गुप्त उनके अनुज सियाराम शरण गुप्त, हरिकृष्ण प्रेमी के नाम अल्लेखनीय है मैथलीशरण गुप्त के गीतिनाट्य दिवोदास दिवोदास (1947 ई.) लीला (1010ई.) अनघ (1925ई) है। सियाराम शरण गुप्त के कृष्णा (1921 ई.) और उन्युक्त है। हरिकृष्ण प्रेमी का एक मात्र गीतिनाट्य 'स्वर्ण विद्यन' है इसके अतिरिक्त आपने अनेक गीति नाट्य पर कविताएं भी लिखी है। जिनमें हीर रांझा, सस्सी पुन्नू आदि के नाम लिए जा सकते है।

इस काल में गीति नाट्य अभिनेय न होकर पाठ्य है वे किसी न किसी सिद्धान्त और विचारधारा को लेकर लिखे गये है। शायद इसका ध्यान मंचीय अभिनय की ओर नहीं था। दूसरे इस काल की रचनाओं में रेडियो शिल्प का भी कोई प्रभाव परिलक्षित नहीं होता क्यों कि इस काल में रेछियों का प्रचार नहीं हुआ था। इस काल की तीसरी विशेषता इन गीतिनाट्यों का आदर्शवादी होना है। चूंकि द्विवेदी युग आदर्शवादी युग था अतः युद्ध की कुत्सा कुण्ठा और वीभत्सता का चित्रण इस काल के गीतिनाट्यो में नहीं मिलता है द्विवेदी कालीन इति वृत्तात्मकता का प्रभाव इन पर भी पड़ा है मुक्त छन्द जो आगे चलकर गीतिनाट्य के सृजन का मूल आधार बना, इस काल में पूर्ण उपेक्षित था। सामान्य रूप से आतुकान्त छन्दों का प्रयोग आरम्भ हो गया था फिर भी विकास की दृष्टि से इस काल के गीतिनाट्य का अपना महत्व है। प्रारम्भिक रचनाएं कभी पूर्णता प्राप्त

नही करती धीर–धीरे प्रगति करती हुई काव्य विद्या अपने चरम लक्ष्य पर पहुचती है यही बात यही बात गीत नाट्यों पर भी लागू होती है। 'अन्धायुग' तक पहुचते–पहुचते गीतिनाट्यों को भी लागू होती है। 'अन्धा युग' तक पहुचते पहुचते गीतिनाट्यो को एक लम्बी मंजिल तय करनी पड़ी है। द्विवेदी कालीन गीतिनाट्य उसी प्रगति की प्रथम कड़ी है।

वरुणालय (1912)–जय शकर प्रसाद कृत करुणालय हिन्दी का बहुचर्चित गीतिनाट्य है इसका महत्व गुणात्मक दृष्टि से से नहीं अपितु ऐतिहासिक दृष्टि से है।

कई समीक्षकों ने इसे हिन्दी का प्रथम गीतिनाट्य माना है किन्तु 'करुणालय' हिन्दी का प्रथम गीतिनाट्य नहीं खड़ी बोली का प्रथम गीतिनाट्य आवश्यक है इससे आधुनिक हिन्दी का प्रथम गीतिनाअ्य नहीं खड़ी बोलीा का प्रथम गीतिनाट्य अवश्य है इससे आधुनिक हिन्दी गीतिनाट्यों को नई दिशा दी है प्रेरणा दी है इसे हिन्दी का प्रथम एकांकी गीतिनाट्य होने का भी गौरव प्राप्त है। प्रसाद जी को 'करूणालय' लिखने की प्रेरण कहां से मिली हैंयह तो निश्चित पता नहीं चलता, लेकिन यह निश्चित है कि प्रसाद के पूर्व और समकाल में अनेक गीतिनाट्य लिखे गय थे और लिखे जा रहे थे। एक ओर हमारे देश की प्राचीन परम्परा थी।[1] और दूसरी ओर रास, नौटंकी कीर्तनियां, नाटक तथा जागा नाटकों और ओझापलि नाटकों की लोक परम्परा थी जिन्होंने भारत जनता की महत्वर्पूण स्थान बना लिया था। गिरीश बाबू और विश्वकवि रवीन्द्र इनसे प्रभावित होकर अनेक गीतिनाट्यों की रचना कर चुके थे। प्रसाद जी ने गिरीश बाबू से गीतिनाट्यों के शिल्प के सम्बन्ध में स्वयं बातचीत की थी।

प्रसद जी ने 'करुणालय' इक्कीस मात्रा के अडिल्ल छन्द का प्रयोग किया जाता है। तुकांत विहीन मात्रिक छन्द में व्याख्यानुसार विराम चिन्ह दिया गया है।

अन्य भाषाओं जैसै संस्कृत कुलक और बंगला में अभिन्नाक्षर का उपयुक्त प्रचार था।[2]

असमिया लेखक रमाकान्त चौधरी (1846–89) में ही अभिन्नाक्षर छन्द में सीता हरण रावण वध गीतिनाट्यों रचनाकर चुके थे। हिन्दी में गुणवृत्तों की रचनाकर चके थे। हिन्दी में गणवृत्तों में प्रसाद से पूर्व अभिन्नाक्षर कविता तो लिखी गई थी, लेकिन मात्रिक वृत्तों में उनका प्रयोग तथा भावों और वाक्यों की चरणों के बन्धन में न पड़कर स्वतत्र गति, आरम्भ और अवसान–प्रसाद की ही अपनी सृष्टि है। इस दृष्टि से भी करुणालय का अपना महत्व है। समस्त गीतिनाट्य की कथा वस्तु पांच दृश्यों में विभक्त है। कथानक का सम्बन्ध राजा हरिश्चद्र से है।

अयोध्या नरेश राजा हरिरश्चन्द्र, ज्योतिषी तथा सहचर गणों के साथ नौका विहार कर हैं कुछ दूर चलकर उनकी नौका रूक जाती है राजा घबड़ा जाता हैं उसी समय देव वाणी सुनाई देती है–

मिथ्यावादी यह राजा पाखण्ड है

इसने सुतबलि देना निश्चित था किया

जब वह पहनेगा हिरव्थमय वर्मको

राजकुमार हुआ है अब बलि योग्य जब

तो फिर क्यों उसकी यह बलि करता नहीं।[3]

राजा देवता को प्रतिज्ञा पूर्ण करने का बचन देते हैं। द्वितीय दृष्य का प्रारम्भ रोहित के आन्तरिक द्वन्द्व के साथ होता है। वह सोचता है कि देवता को हमारे प्राण लेने का अधिकार है मेरा शरीर अपना स्वंय का है सार्वजनिक सम्पति नहीं है। उसी समय इन्द्र की प्रतिछाया उसे भाग जाने को उकसाती है।जिससे प्रेरित होकर रोहित भाग जाता है।

तृतीय दृष्य में रोहित निर्धन और क्षुधा पीड़ित कृषि अजीकृत जो सौ गायों के बदले अपने मध्यम पुत्र शुनः सेफ की बलि देने को राजी हो जाता है। रोहित शुनः सेफ को लेकर पिता के दरबार में पहुचता है।

हरिश्चन्द्र रोहित को भाग जाने के कारण फटकारते है रोहित कहता है कि यदि पुत्र न होता तो फिर तिलोपक पिण्ड कौन देता। वशिष्ठ के कहने पर हरिशचन्द्र शुनः सेफ को बलि देने को तैयार हो जाते हैं। अगले दृश्य में बलि की तैयारी होता है। अजीतर्गत अतिरिक्त सौ गायों के मुकाबले स्वयं के पुत्र वध को तैयार हो जाता है। यहां आकर कथानक नया मोड़ लेता है। विश्वामित्र आकर नर–बलि में विधन पैदा कर देते हैं। वे इसके लिए वशिष्ठ को फटकारते है।

इसी समय सुव्रता आकर यह रहस्योद्घाटन करती है कि शुनः सेफ अजीतर्गत का पुत्र नहीं अपितु विश्वामित्र सुव्रता का पुत्र है विश्वामित्र बताते हैं कि यदि राजा रोहित की भी बलि देते तो भी देवता मनाकर देते क्योंकि यह क्रिया अध म और आसुरी है। नर बलि का प्रश्न समाप्त हो जाता है। सुब्रता पति और पुत्र दोनों को प्राप्त कर लेती है और दासीपन से मुक्त हो जाती है।

'करुणालय' में नर–बलि की समस्या को उठाया गया है। कवि विश्वामित्र के शब्दों में बोलता है–

क्योंकि अधम है क्रूर असुरी यह क्रिया
यह न आर्य पथ है दुस्तर अपराध है।

'करुणालय' के कथानक में सघनता और नाटकीयता का अभाव है। कथानक मन्थर गति से बहता है हाँ पचंम गति में अवश्य तीव्रता आ गई है।

अतः संर्घष को भी नहीं पूर्णता उभारा गया है। कवि को आन्तरिक संर्घष दिखाने के कई अवसर थे। हरिश्चन्द्र के मन में कर्त्तव्य और पुत्र प्रेम के मध्य तीव्र आन्तरिक संर्घष की योजना सम्भव थी। लेकिन इसका अभिप्राय यह नहीं कि

करुणालय में सर्घष है ही नहीं। रोहित के मन में उठने वाले सर्घष को कवि ने वाणी दी है। एक ओर पिता है, तो दूसरी ओर उसका अपना अस्तित्व है, शरीर है उसके मन में दुविधा उत्पन्न हो जाती है। वह किस की रक्षा करे– पिताके आज्ञा की या अपने शरीर की इस द्वन्द की सूक्ष्म झाँकी द्वितीय दृश्य में देखने को मिलती है इसी प्रकार शनुःसेफ के मन में भी क्षणिक द्वन्द्व दृष्णिगोचर होता है। वह सोचता है कि वह कौन सा कारण है कि जिसके कारण उसका पिता ही उसे वधिक की तरह बलि देने को प्रेरित हो रहा है। लेकिन यह सर्घष अल्प है हरिश्चन्द्र केवल यह कहकर कितनी ममता होती है सन्तान की, चुप हो जाते है।

भावाभिव्यंजना की दृष्टि से भी 'करुणालय' उत्तम नहीं कहा जा सकता इसे पढ़कर ऐसा नहीं लगता की प्रसाद जैसे भाविक कवि की रचना है प्रारम्भ में अवश्य प्रकृति का भावुक चित्रण है। यथा–

अहा! खिल रही विमल चाँदनी भली

तारागण भी उस मस्तानी चाल को

देख रहे हैं चलती जिसकी नाव है

प्रकृति चित पट सा दिखलाती है अहा

कल–कल शब्द नदी से मिलन और का

शन्ति प्रेम मय शान्ति भरी है विश्व में।[4]

रोहित विविध भावास्थितियों में होकर गुजरता हैं जहां कर्तव्य और शरीर रक्षा में वह संर्घसरत है। वहीं प्रकृति को देखकर वह कह उठता है–

आहा स्वच्छ नभ नील अरुण रवि रश्मि की

सुन्दर माला पहन मनोहर रूप में

नव प्रभात का दृष्य सुखत है सामने[5]

नाटकीयता और दृश्य से भी करुणालय में भी अनेक कमियां है। कथोपकथनों

में तीव्रता और सजींवता का अभाव है। लेकिन कुछ स्थलों पर सुन्दर संवाद योजना है। रोहित अजीतर्गत संवाद और पंचम अंक के संवादों में तीव्रता और नाटकीयता है।

रंग सकेत प्रसाद ने बहुत संक्षिप्त दिये है और रंगमंचीय अभिनय में व्यावहारिक दृष्टि से कोई किठिनाई उत्पन्न नहीं हो सकती। घटना स्थल, दृश्य परिवर्तन (दृश्य योजना) पात्र योजना सभी दृटिष्यों से करुणालय अभिनेज्ञ है नौका विहार और आकाश का दृश्याकंन कठिन अवश्य है लेकिन आज के युग में असम्भव नहीं। जहां तक नाटक की वैयवित्तकता का प्रश्न है इसमें 'स्व' की प्रधानता है। हरिश्चन्द्र और रोहित दोनों ही स्वं से प्रभावित है। रोहित कहता है–

"वरुण देव हो या कि दैत्य वह कौन है?

क्या उसको अधिकार हमारे प्राणों पर

क्या वह उसकी सार्वाजनिक सम्पति है ?

नहीं–नहीं वह मेरा है, यह स्वत्व है।[6]

यहां सार्वजनिक स्थान पर वैयक्तिकता की झलक स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। हरिश्चन्द्र भी स्व से प्रभावित होकर ही पुत्र वध का तत्पर होता हैं। लय और टीन की कसौटी पर भी 'करुणालय' सुन्दर है। समय और परिस्थितियों के अनुसार टीन परिवर्तन होती रहती है। प्रकृति दर्शन और प्रफुल्लित होते हश्चिन्द्र देव वाणी सुनकर तत्क्षण गिड़गिड़ाने लगते हैं:– हे समुद्र के देव, देव आकाश के। शान्त हूजिए क्षमा कीजिए दीन करो।[7]

मैथलीशरण गुप्त–मैथलीशरण गुप्त ने साहित्य में बहुविधि प्रयोग किए है महाकाव्य, खण्ड काव्य, चम्पू काव्य, मुक्तक काव्य, गीतिनाट्य, नाट्य कविता आदि साहित्य के विविध रूपो पर लेखनी चलाई है। गुप्त जी में नाटकीय संवाद लिख ने की अद्भुत क्षमता थी अपने महाकाव्य 'साकेत' में अपने नाटकीय संवादों

का अति सुन्दर प्रयोग किया है आपने तीन गीतिनाट्य लिखे हैं– लीला, अनध और दिवोदास'।

लीला–"लीला की रचना सम्भवतः 1910 में हुई थी। 1920 में इसके मुद्रण के लिए तैयार किया था किन्तु छप नहीं सकी इससे पूर्व 1919 में इसके कुछ अंश सरस्वती में छपे थे।[8] इसका पूर्ण प्रकाशन स. 2018 (सन 1961) में हुआ।

लीला की रचना सम्भवतः साकेत के पूरक के रूप में हुई है। साकेत में अधो अयोध्या काण्ड के बाद की कथा अंकित है। बाल काण्ड का चित्रण उसमें नहीं 'लीला' भगवान राम की बाल लीलाओं का प्रयोग किया गया है। कथानक में किसी की प्रकार की नवीनता नहीं है।

सखियों और सखाओं के नाम अवश्य कल्पित है इसके अतिरिक्त पुष्प वाटिका में सीता के साथ–साथ उर्मिला के मन में भी पूर्व राग का उदय परशुराम द्वारा स्वर्ग योग की अपेक्षा जीवन की गति को श्रेष्ठ समझना नरत्व की स्थापना और नारी का उत्कर्ष कवि की अपनी मौलिक उद्भावनाएं है कथानक का प्रारम्भ राम के किशोर होने के बाद से होता है। चारों भाई बाल क्रीड़ा करते धूम रहे हैं। इसी बीच महर्षि विश्वामित्र राम को लेने आते है। राम उनके साथ जाकर राक्षसों से आश्रम की रक्षा करते है और ताड़का का वध करते है।

वही से राम लक्ष्मण को लेकर महर्षि जनकपुरी पहुंचते है पुष्प वाटिका में राम सीता मिलन, धनुष भंग, परसुराम संवाद, राम विवाह आदि की घटनाएं एक के बाद एक वर्णित है। राम चरित मानस के बालकाण्ड का ही नाट्कीय प्रस्तुतीकरणहै। कथानक सहज भाव से आगे बढ़ा हैं और लेखक को जहां भी अवसर मिला है नीतियों और सूक्तियों के माध्यम से उपदेश दिया है। गीतिनाट्य में नौ दृश्य है प्रारम्भ में पृथ्वी की अधिष्ठात्री देवी पृथ्वी देवी का एक गीत है। कुछ घटनाओं का मात्र सकेत है। यथा मारीच सुबहु वध, अहिल्योद्धार आदि।

गीतिनाट्य में कुल मिलाकर पच्चीस पात्र हैं– दस स्त्रियां और पन्द्रह पुरुष। इनमें से सभी प्रमुख पात्र प्राख्यात और पौराणिक है। सभी पात्रों के परम्परागत चरित्रों की रक्षा की गई है भरत को जहां शान्ति प्रिय दिखाया गया है वहीं लक्ष्मण को क्षत्रिय धर्म से पूरित वीर पुरुष के रूप में चित्रित किया है। माता कौशिल्या में जहां माँ की ममता है, वही सुमित्रा में त्याग और बलिदान की भावना है भावना है। कैकेयी को इसमें सम्मिलित नहीं किया गया। दुष्ट प्रेम से नही। सम्हलता, यह बात गुप्त जी ने इस प्रकार की कही है–

"सुउपदेह से दुष्ट शिष्ट होते नहीं

गुड़ से सींचे निम्न मिष्ट होते नहीं।[9]

X X X

"नारी का संसार गेह–परिवार है

पर का कर्म–क्षेत्र विश्व संसार है

माना नारी जन्म सहन के अर्थ है

सौ सौ चिन्ता भार वहन के अर्थ है।[10]

गुप्त जी ने नर को देवताओं से श्रेष्ठ बताकर नरत्व की स्थापना की है–

अमर जो न कर सके, उसे नर कर सकते हैं

वृत्त साधना पर अमर भला कब मर सकते है।।[11]

गीता के उपदेश 'यथो धर्म स्ततो जयः' की प्राण प्रतिष्ठा गुप्त जी ने जहां धर्म है, जय निश्चय है, कह कर की है। लीला के कथोपकथन सुन्दर एवं अभिनेय है। कहीं भी लम्बे–लम्बे और उबा देने वाले सम्वाद इसमें नहीं है। यत्र तत्र सवगत कथनों का प्रयोग किया गया है। दो एक स्थान पर प्रथम कथनों का भी प्रयोग किया गया है। जैसे तड़का प्रसंग में। लीला में उच्च कोटि के अन्तः संर्घष का अभाव है। कहीं–मानसिक द्वन्द्व का चित्रण हुआ है। यथा–

"कौशिल्या का अराल तथा कराल के सम्वादों में।"

भारत भूमि की महत्ता से प्रभावित होकर अराल के मन में जो अर्न्तद्वन्द उपस्थित होता है। एक ओर लंका देश प्रेम, दूसरी ओर भारत की लुभावनी धरती के प्रति अनुराग अराल को व्याकुल कर देता है और दोनों के ऊहाफोह को अपने में बेचैन बना डालता है। लीला की भाषा गुप्त जी की अन्य कृतियों के भाँति की सरल एवं एवं प्रसाद गुण से पूर्ण है। कहीं भी भाषा का आडम्बर नहीं है। यत्र–तत्र मुहावरों का प्रयोग हुआ है। यथा अच्छा हुआ चलें तो हम भी नौ दो ग्यारह हो ले, कहो रहो तर्क का नाम नहीं है, 'छोड़ो दन्त घिसासित को छाती दूनी हुई हर्ष से सुनकर मेरी।

मैथलीशरण गुप्त के नाटक अभिनेय हैं। वे अभिनेय के लिए ही लिखे गए है, केवल, केवल पढ़ने के लिए नहीं अभिनय के लिए दृश्यों का नवीनता वैविध्य और अद्भुत्य की अपेक्षा होती है।[12] गुप्त जी ने इन सबका सन्निवेश करते हुए भी बाहुल्य से बचे हैं।[13]

यदि उचित व्यवस्था की जाय तो लीला का अभिनय मंच पर किया जा सकता है। नाटकीयता तो है, गति भी है, किन्तु तुकान्त छन्दों ने वह रमणीयता नहीं आने दी, जो गीतिनाट्य में हाती है। जहां तक काव्य तत्व का प्रश्न है इसमें उच्च्य कोटि की काव्यकल्पना के दर्शन नहीं होते। सीधे सादे शब्दों में कथानक विकसित हुआ है न तो उसमें विचारों की बोझिलता है और न कल्पना की उड़ाने, न भावुकता, का बोलबाला है, न संगीत की अधिकता समभाव से। समभाव से गीतिनाट्य पूर्ण हुआ है। आरम्भिक रचनाओं के महत्व को ध्यान में रखते हुए गीतिनाट्य लीला सुन्दर है।

अनघ (1925)–'अनघ' गुप्ता जी का सर्वश्रेष्ठ गीतिनाट्य माना जाता है। 'अनघ' रचना की प्रेरणा लेखन 'मधजातक' और 'बौद्धकथा' से मिली है। कवि के

इसकी कथा वस्तु आर्य सूरिकृत चौतीस प्रमुख जातकों के संस्कृत रूपान्तर से ग्रहीत की है। इसमें शान्ति जातक का यह नीति वाक्य उद्‌भुत हुआ है– द्विषतामदि मनास्था वर्जयन्ति सुद्ध वृतानुवर्तित[14] दशरथ ओझा का विचार है कि इसकी रचना गुरुदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर के 'अचलायतन' की शैली पर की गयी है।[15] 'अनघ' की कथा वस्तु सत्रह खण्डों में विभक्त है। जिनका नामकरण घटननाओं के आधार पर किया गया है। इन्हें दृश्य माना जाना चाहिए, यद्यपि लेखक ने स्वयं दृश्य का विधान नहीं किया। यह दृश्य परिवर्तन जल्दी–जल्दी हुआ है और घटना स्थल भी जल्दी–जल्दी बदलता रहा है। 'अनघ' का कथानक उत्पाघ है बुद्ध और गाँधी के प्रतीक के रूप में लेखक ने एक ऐसे व्यक्ति की कल्पना की है जो मानव धर्म का प्रतिरूप बन गया है। वह पराए सुख में हर्ष का अनुभव करता है। मानवता की सेवा की उसका वृत है। उसका कार्य है कुँओं घाटों की मरम्मत करना बाजारों की सफाई करना आदि उसका विचार था–

पापों से घृणा करो, प्रयत्न करो पापी का।

व्यंग्य छोड़ संग दो सदैव अनुतायीका।[16]

और पापी का उपकार करो हां

पापों का प्रतिकार करो

उठो उठाओं बढ़ो बढ़ाओ

तरो पार कर पार करो............

मध के आचार–विचार और कार्यों के कारण उसकी लोकप्रियता बढ़ती जाती है। जिसके कारण मचल ग्राम का शासक ग्राम भोजक उससे ईष्या करने लगता है। उसे अपनी स्थिति संकटापन्न दृष्टिगोचर होती है। अतः वह मघ की हत्या का उपाय सोचने लगता है। सर्वप्रथम सूर को इसके लिए राजी करता है। किन्तु वह अपने प्रयास में असफल को जाता है। मध सुर को अपनी सेवा वृत्ति के

कारण प्रसन्न कर लेता है। धीर–धीरे मध के अनुयायी हो जाता है। अतः भोजक मध को नष्ट करने की नई योजना बनाता है। वह मध राजद्रोही घोषित करना चाहता है। इसके लिए वह मध के एक अनुयायी सुमुख को गवाह बनाता है। राजा (मगध का शासन) मध पर राजद्रोह का अपराध लगाकर पकड़वा मांगता है। अपराध है आतताइयों को शरण देना, कर वसूली में रोड़ा अटकाना और चोर, डाकुओं को स्वछन्द विचरणे देना।

समय के बन्दी बनाते ही घटना चक्र मगध के आस पास घूमने लगता है। मध की प्रेमिका सुरभि, उसके साथी और मां बाप सभी मगध आ जाते है। राजा मध को हाथियों से कुचलने का हुक्म देता है, किन्तु हाथी मध को नहीं मारते। पुनः न्याय का प्रश्न उठता है। मध के आरोप को निराधार करने के लिए उसके द्वारा उपकृत मनुष्य उसका समर्थन करते हैं। सुमुख अपने आरोप से मुकर जाता है। राजा के अंगरक्षक जो पहले चोर थे, और मध के सद्व्यवहार से भले आदमी बने थे को निरपराध बताते है। चोरों द्वारा तापित साधक, भोजन का पुत्र शोभन, भोजक द्वारा सताया रानी का अनुचर सूत्रक आदि मध का समर्थन करते है। अन्त में निर्णय होता है–

"निश्चय मध है अनध, अनध पहले फिर मध्य हैं।"

इसी प्रख्यात कथा के साथ सुरभि और मध की प्रेम कथा भी चलती है। कथा–संगठन की दृष्टि से अनध के कथानक में एक सुत्रता और क्रम बद्धता है। उसमें कहीं भी सधनता और घनत्व नहीं है। वास्तव में गुप्ता जी के नाटकों की कथा वस्तु सपाट सरल है। उनके नाटाकों के कथानक में नाटकीय व्यापार और गति का अभाव है।[17]

संर्घष की दृष्टि से यद्यपि तीव्र संघर्ष की सृष्टि नहीं की गयी। फिर भी द्वन्द का सर्वथा अभाव नहीं है। सत्–असत् का संर्घष दिखाकर सत् की विजय

दिखाई गयी है।

नाट्य में आन्तरिक सर्घष के स्थान पर वाह्य सर्घष अधिक है। केवल सुरभि के गीतों में उसकी मनोदशा का सुन्दर चित्रण है। कहीं–कहीं मध के संवादों तथा योजन, आर्या और शोभन के साथियों के कथोपकथनों में भी मानसिक संर्घष स्पष्ट नहीं होता। सुरभि, मगध की रानी और मध की मां के हृदय में होने वाले संर्घष को यदि लेखक चाहता तो और अधिक स्थान बना सकता था। किन्तु ऐसा न करके गुप्त जी ने मात्र बाह्य क्रिया कलापों को ही चित्रित किया है। गीतिनाट्य की घटनाएं पूर्व निर्धारित होने के कारण यन्तव्रत प्रतीत होती है। गीतिनाट्य की गरिमा के अनुकूल सूक्ष्म विश्लेषण और रसिकता आ अभाव अनघ में है।[18] काव्यतत्व और नाट्य तत्व की दृष्टि से 'अनघ' सफल नहीं मान जा सकता। न तो कवि ने उच्चकोटि की भावुकता का परिचय दिया है और न नाटकीयता गुण ही उभर कर सामने आये हैं। अत्यधिक क्रियाशीलता के कारण सुन्दर गीतिमयता के भी दर्शन नहीं होते। सुरभि और मगध की रानी के हृदय में अवश्य सात्विक भावों का प्रस्फुटीकरण हुआ है। 'अनघ' में अनेक पात्र है किन्तु प्रमुख पात्र तीन ही हैं– मधु, सुरभि और भोजक। इनके अतिरिक्त अन्य पात्रों के चरित्र का विकास नहीं हुआ 'मध' नाटक का नायक है।।

समस्त कथानक में उसी का व्यक्तित्व अच्छादित है। जातक कथा के मध से गुप्त जी के अनघ का मत भिन्न है। उसके बाह्य रूप का निर्माण गणेश शंकर विधार्थी के व्यक्तित्व के आधार पर हुआ है और आन्तरिक स्वरूप का निमार्ण गांधी जी के चरित्र पर आधारित है।[19]

"मूर्ति है शान्ति रूचिर भी

शिरों पर चिकुर जान शोभन है–

प्रकृति में क्या भोलापन है।

गौर तनु कान्ति सौभ्य शुभ रुचि है।''[20]

मधकी विचार धारा बौद्ध और गाँधी की विचारधारा है। सत्य, अहिंसा, दया, सेवा का वह प्रतीक है। संयंम पर सेवा निष्काम कर्म ही उसके भूषण है। ऊँच–नीच का भेद भुला कर वह मनुष्य तत्व को गौरवान्तिवत करना चाहता है सुरभि के शब्दों में–

''सयंम ही उनके प्रेम विजय का फल है

परहित ही उनके प्रेम विजय का फल है

त्याग–व्रत ही विश्वस्त धर्म है उनका

वे ऊँच–नीच का भेद नहीं कुछ करते

है मनुज मान्त को एक समान निखरते।''[21]

सुरभि 'मध' की प्रेमिका है। उसमें भावुकता है, करुणा है, दया है, ममता है। स्त्रियों के सामान्य गुणों के अतिरिक्त उसके वह सब कुछ भी है जो मध में हैं। उसका धैर्य उस समय डिग जाता है। जब मध को शूली का आदेश होता है उस समय उसका रौद्र रूप सुन्दर बन पड़ा है। भोजक एक व्यौहार कुशल चतुर सांसारिक व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया हैं। उसके चरित्र में गति है वक्रता है, रहस्यमयता है। खलनाय के रूप में उसका चित्रण सुन्दर है। पात्रों में मध की मां, मध की रानी और शोभन का चित्रांकन भी प्रभावशाली हैं। अन्य पात्र कथानक में मात्र विस्तार के लिए आए हैं। अनध के संवाद बेजान गतिहीन और नाटकीयता से हीन है। उनमें स्वाभाविकता और सजीवता का अभाव है। कथोपकथनों में न कार्य व्यापार व्यजंक चांचल्य है और न गीतिनाट्यों की कान्ति और धार।[22] अनेक स्थानों पर कथोपकथन इतने लम्बे और गतिहीन हो गये हैं कि उबा देते हैं। उदाहरण रूप में 'अनध' का प्रथम कथन ही चार पृष्ठ का है। लेखक ने कहीं–कहीं संवादों में रोचकता लाने का प्रयत्न किया हैं। इनमें एक–एक पंक्ति के वार्तालाप

है। भेद दृष्य में पांच किसानों का वार्तालाप ऐसा ही है।[23] कहीं–कहीं वाग्विदग्ध
ाता और विनोद से तथा लालित्य से ओत प्रोत संवादों का भी प्रयोग हुआ है। 'स्वगत' कथनों का प्रयोग बहुत अधिक नहीं हुआ। इसका कारण यह है कि पात्रों की प्रवृति अर्न्तमुखी न होकर बहिर्मुखी है। मनन और चिन्तन के स्थान पर क्रिया व्यापार की प्रधानता है। भाषा और शैली की दृष्टि से भी 'अनध' निरापद नहीं हैं। सशक्त प्रांजल और काव्यात्मकता भाषा का अभाव है। यह तत्र व्याकरण सम्बन्ध
ी त्रुटियों एवं तुक के लिए आग्रह शब्दों का प्रयोग खटकता है। तुकों की बानगी देखिए–

"निकल कर एक वधू घर से
फेंकनी लगी राह में कूड़ा
वहां था मानों कोई घूड़ा
पडो़सिन ने जो उसको रोका
कहा तो उसने खाकर झोंका।"[24]

अनध में गीतात्मकता उच्चकोटि की नहीं है। हां सुरभि के बीच अवश्य की सुन्दर बन पड़े हैं। उनमें राग भाव और संगीत का सुन्दर समन्वय हुआ है। अभिनय को दृष्टि से भी अनघ खरा नहीं उतरता। शायद गुप्त जी का ध्यान अभिनय की ओर नहीं था। पात्रों की भीड़–भाड़ अनेक दृश्यों का सृजन अनावश्यक प्रंसगों का समावेस आदि कुछ ऐसे तत्व हैं जो अनध के अभिनेयत्व में बाधा उत्पन्न कर देते हैं। नाटक नियमों का पालन भी नहीं किया गया। न तो दृश्यों का विभाजन है और न रंग संकेत। पात्रों की वेशभूषा, लय का निर्देश, वात्रिक, कामिक संकेत रंग व्यवस्था सम्बन्धी कोई भी निदेर्श नहीं है। फिर भी यदि अनध का अभिनय किया जाय तो कोई बड़ी कठिनाई नहीं होगी। कोई ऐसा विशेष तत्व नहीं है जिसका अभिनय न किया जा सके। किन्तु तुकान्त छन्दों में नाटकीयता

का अभाव होने से वह सफल नहीं हो सकता।

अनध में छन्दों की विविधता है सत्रह खण्डों में सत्रह से अधिक मात्रिक छन्दों का प्रयोग हुआ है। जब तक 'नट' उक्त समस्त छन्दों की लय से परिचित न हो तब तक उनका गाना महज सम्भव नहीं। छन्द परिवर्तन तो नाटकीयता के लिए होना चाहिये ताकि नाटक में समरसता न हो।

दिवोदास (1947)–"दिवोदास" गुप्त जी का एक छोटा सा गीतिनाट्य है। गुप्त जी लिखते हैं कि इसकी कथा वस्तु पुराण से ली गई है। प्राचीन काल में यहां एक राजर्षि ने स्वयं देवों के विरुद्ध अपने पुरुषार्थ की पताका फहराई, इतना ही नहीं उसने अपने राज्य में उनका बहिस्कार भी कर दिया इससे भी अधिक विस्मय की बात यह है कि हमारे देव प्राण पुराणकार ने भी उसका जै–जै कार किया है।[25] दिवोदास का आदि का नाम रिपुंजय है। गंगा किनारे बने आश्रम में उसकी घोर तपस्या से सन्तुष्ट होकर ब्रह्मा उससे वर माँगने को कहते हैं। रिजुजय उनसे मनुष्यत्व की माँग करते हैं। ब्रह्मा कहते कि मेरी कृति से मनुष्य से श्रेष्ठ नहीं कुछ अन्य। वह कहते है कि दिव भी तुम्हारा दास है। अतः आज से तुम्हारा नाम दिवोदास होगा। वे अकाल पीड़ित काशी का राज्य भी दे देते है। दिवोदास कहता है मुझे आप की आज्ञा शिरोघार्य लेकिन वह शर्त रखता है। कि–

"मानो इसे भेले ही कोई मेरा अति अविवेक

चला जाय मेरी धरती से, सारा सुर समुदाय।"[26]

ब्रह्म यह प्रश्न सुनकर विस्मय में पड़ जाते है वे पूछते है कि यदि सुर पृथ्वी से चले गये तो असुरों का क्या होगा ?

दिवोदास कहता है कि असुरो को स्वयं भगा दूंगा।

ब्रह्म फिर प्रश्न करते हैं कि देवता तो सदैव मानव के सहायक रहे हैं। तो दिवोदास कहता है कि देवताओं पर निर्भर रहने के कारण मनुष्य का निजित्व

समाप्त हो गया है। मेरी इच्छा है के मानव आत्म निर्भर बने।

बह्म पूँछते है कि क्या देवों के प्रति मनुष्य अपनी भक्ति छोड़ देगें?, देवदास कहता है कि मैं चाहता हूं कि मनुष्य स्वयं अपने माध्यम से अपने स्वरूप के समक्ष से अन्ततः देवता निष्कासन की बात मानकर अन्तर्धान हो जाते हैं।

इसी समय नागराज पुत्री अनंग मोहनी प्रवेश करती है दिवोदास को देखकर वह आकर्षित हो जाती है। दिवोदास भी अपना ह्रदय दे बैठता है। जब वह कहती है कि वह काशी शिव के दर्शन करने आई हैं। तो वह बताता है कि अब आज पृथ्वी पर कोई देव शेष नहीं है।

अब सिद्ध एक पुरुर्षाथ हमारी मुक्ति का एक मन्त्र है।" वह बताता है कि जब देवतओं को पृथ्वी पर आने के लिए मनुष्य का रूप धारण करना होगा। अकाल से निपटने के लिए वह कहता है कि हमें ऊपर न देखकर उससे निपटने का स्वयं प्रयत्न करना चाहिए।

"ऊपर सिन्धु तको क्यों नीचे भरे सिन्धु गम्भीर

करो सोचने के उपाय ही अक्षय है निज नीर"

सुजला अब भी भूमि हमारी चलो करे उद्योग

सफलत इसे बना लें मिलकर सम भोगी सब लोग।"[27]

दिवोदास गीतिनाट्य में न तो उच्चकोटि के मानसिक द्वन्द के दर्शन होते हैं, न संर्घष के।

रिपुंजय ने समाधि से उठने से पूर्व जो भाव व्यक्त किये हैं वहां मानसिक संर्घष और अर्न्तद्वन्द होते हैं। वह सोचता है कि तप से मुझे तो सब कुछ मिल गया पर अपनो के लिए किया गया है एक विचार–

क्या पापा मेरी धरती ने, धर कर मेरा भार।"1[28]

अनंग मोहिनी के ह्रदय में उठने वाले द्वन्द्व का चित्रण भी अतिक्षीण और

नगण्य है। वास्तव में इस गीतिनाट्य का मूल उद्देश्य मानव को उसके अस्तित्व को बोध कराना है। दैव–दैव कहते–कहते वह आलसी हो गया है। ऊपर देखते–देखते उसने भव्यता खो दी है, उसने देवों समक्ष दीनता दिखा–दिखाकर अपनी मर्यादा खो दी है। अमृत पुत्र होते हुए भी वह पौरषहीन दिखाई देता है। देवालम्बन ने उसके निजत्व को नष्ट कर दिया है। दिवोदास नहीं चाहता कि मानव सिरों के शासन में रहकर अपना आत्म विश्वास और शक्ति खो दे। एक स्थान पर कवि नर का परिचय नर, नर का नारी ही सब ठौर रहकर मानव के प्रति दृढ़ आस्था व्यक्त की है। यह साकेत की भावना संदेश यहां मैं नहीं स्वर्ग का लाया, इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया का ही रूप है। नाटकीयता की दृष्टि से दिवोदास सुन्दर है। उसका अभिनय किया जा सकता है। घटनाएं कम होते हुए भी सुविन्यस्त और प्रभाव शाली है। किन्तु विन्यास और प्रभावशाली है। वस्तु विन्यास कुछ इस तरह का है उसमें गरिमा आ गई है। हां रंग निदा निर्देशों का अभव अवश्य खटकता है।

चरित्रांकन की दृष्टि से केवल दिवोदास के चरित्र का ही पूर्ण विकास हुआ है। वह देश प्रेमी, प्रजा हितैषी, स्वाभिमानी, श्रम का समर्थक और भाग्य में विश्वास न करने वाले मेधावी पुरुष के रूप में चित्रित किया गया है। वह तपस्वी होते हुए भी वैरागी नहीं है। कर्म सत्ता पर उसका अटूट विश्वास है जीवन के दुखों को वह दैवी विपत्ति नहीं अपितु मानव को स्वयं की निष्क्रयता को मानता है अन्य पात्रों में तार्तिक एवं भक्ति हितैषी के रूप में प्रस्तुत किए हुए है। रंगणी और अनंग मोहिनी के चरित्रों का विकास नहीं हुआ। प्रथम परिचय और थोड़ी सी ही बातचीत के बाद दिवोदास द्वारा अनंग मोहिनी को अर्धांगनी का सम्बोधन खटकता है।

दिवोदास के संवाद गुप्त जी के अन्य गीतिनाट्यों की तुलना में सुन्दर है। सर्वत्र तीव्रता और पात्रों की प्रयुत्पन्न गति के दर्शन होते हैं। संवादों में न तो दर्शन

की बोझिलता और न विचारों की प्रबलता । इस दृष्टि से दिवोदास सुन्दर है। काव्यमकता की दृष्टि से दिवादास सुन्दर नहीं है। लालित्य और संगीतात्मकता नहीं के बराबर है। फिर भी कवि अपने मंत्व्य को स्पष्ट करने में प्रयत्नशील दिखाई देता है। दिवोदास में "सरसी" छन्द का प्रयोग हुआ हैं। इसमें सत्ताइस मात्राएं है। कहीं–कहीं लेखक ने नाटकीयता लाने के लिए उन्हें तीन पात्रों का प्रयोग किया है। छन्दों का निर्वाह पूर्ण रुपेण हुआ है। गुप्त जी के गीतिनाट्यों में कुल मिलाकर जहां अन्तर्द्वन्द का अभाव है, वही वे पाठ्य नाटक के अधिक निकट है। उनका अभिनय कुशल सूत्रधार द्वारा ही संभव है। गुप्त जी को मुख्य श्रेय इस बात के लिए दिया जाना चाहिए कि कवि होते हुए भी उन्होंने गीतिनाट्य को प्रारम्भिक अवस्था में ही इतने सुन्दर ढ़ग से प्रस्तुत किया है।

सियाराम गुप्त–सियाराम गुप्त ने गीतिनाट्य लिखे हैं–कृष्णा और उन्मुक्त। ये दोनों ही गीतिनाट्य सुन्दर आकर्षक है। 'कृष्णा' अप्रैल–मई जून 1921 में ध ारावाहिक रूप से 'प्रभा' में प्रकाशित हुआ था। इसकी कथा वस्तु कर्नल टाड के 'राजस्थान के इतिहास' से ली गई है। इसके पूर्व 7 अप्रैल 1913 को लोचन प्रसाद पाण्डेय की एक कविता 'कृष्णा कुमारी' प्रभा में छपी थी। सम्भव है इसका प्रभाव लेखक पर पड़ा हो। क्योंकि दोनों की कथा वस्तु में कोई अन्तर नहीं है। अन्तर है तो केवल प्रस्तुतीकरण का वास्तव में कृष्णा कुमारी का कथानक बहुत लोकप्रिय रहा। आगे चलकर 'कलंक रेखा' नाम से एक एकांकी डॉ0 राम कुमारी वर्मा ने भी लिखा है। कृष्णा गीतिनाट्य का प्रारम्भ मानसिक उद्वेग से होता है भीमसेन के हृदय में कृष्णा की शादी को लेकर संर्घष चल रहा है।–

"दो जगह के भूप कृष्णा के लिए
कर रहे इच्छा प्रकट सविशेष हैं
क्या करु अब कुछ समझ पड़ता नहीं

धूर्त बईमान ये निज स्वार्थ के

सामने कुछ भी नहीं है देख ले।[29]

एक ओर जय पुरेश्वर जगत सिंह शादी का आग्रह कर रहे हैं और डालने के लिए उदयपुर आक्रमण करना चाहते है। दूसरी ओर जोधपुर नरेश मानसिंह भी कृष्णा से शादी करना चाहते है। उनके पिता को भीमसिंह ने पहले ही वचन दे दिया था। राजा युद्ध को भी तत्पर हो जाते है किन्तु मंत्री कहते हैं–

"किन्तु जननी जन्म स्वदेश का

त्राण करनाही प्रथम कर्तव्य है

युद्ध में यदि वीर गति हमको मिली

दुर्दशा होगी हमारी भूमि की।"[30]

पठान अमीर खां जोधपुर नरेश का पक्ष लेता है वह एक पत्र के माध्यम से कहता है यदि जोधपुर नरेश से शादी न कर सका तो–

"तो कलह के मूल को ही नष्ट कर

आपको झगड़ा मिटाना चाहिए।"[31]

इस प्रस्ताव से भीमसिंह का हृदय दुराशा में फंस जाता है। वे सोचने लगते हैं कि राज्य छोड़कर कहीं चले जाये मंत्री अमीर खां के प्रसताव का सर्मथन करता हुआ कहता है कि–

"हाथ अपना काट देना आप ही

कौन जनकरणीय कर सकता भला

पर उसे काटे न रोग विशेष में

तो समस्त शरीर गलता सीघ्र है।"[32]

भीमसिंह कुछ भी निर्णण नहीं कर पाते। उधर भावी अशंका से स्वयं कृष्णा का मन विचलित हो उठता है, उसी समय उसकी एक दासी यह समाचार देती है

कि राजा उसके वध का निर्णय ले चुके हैं। यह सुनकर कृष्णा के ह्रदय में भीषण संर्घष छिड़ जाता है। वह मात्र भूमि की बलि बेदी पर स्वयं अपना बलिदान करना चाहती है। जवान सिंह का दिया हुआ विष कृष्णा जान बूझकर पी जाती है, लेकिन जवान सिंह स्वयं अपने कृत्य पर पछताता है इसी समय राजमहिषी प्रवेश करती है। वे स्वयं रोने लगती है और भीम सिंह का भला बुरा कहती है। भीमसिंह ग्लानिवस स्वयं मर जाना चाहते है किन्तु दौलत सिंह के समझाते–समझाते गीतनाट्य समाप्त हो जाता है। कृष्णा उच्चकोटि का संर्घष है। सभी पात्रों के मन में बैठा चोर संघर्ष के रूप में खुलकर सामने आता है। पिता का ह्रदय एक ओर पुत्री और दूसरी ओर राष्ट्र रक्षा की दीवानगी से टकराकर चूर–चूर हो जाता है। मां और ममता और वात्सल्य कृष्णा के देशभक्ति पूर्ण भावना का सुन्दर चित्रण किया गया है। अर्न्तद्वद्व ही इस गीतिनाट्य का मूल्य केन्द्र विन्दु है इस दृष्टि से कृष्णा उन्मुक्त से भी अधिक सुन्दर है। कृष्णा में जहां सुन्दर अन्तर्द्वन्द्व है वहीं सुन्दर काव्यात्मकता भी है। ह्रदय की भावुकता उमड़ी पड़ती है। मां की पुत्र वत्सलता, पिता की राट्रीयता मन्त्री का देश प्रेम, सभी की सुन्दर व्यंजना है। नाटकीयता की दृष्टि से भी यह गीतिनाट्य सुन्दर है। इसका मंच पर प्रर्दशन किया जा सकता है 'कृष्णा' सुन्दर गीतिनाट्य नहीं कहा जा सकता उसमें विम्बों की योजना का अभाव है।

उन्मुक्त–सियाराम शरण गुप्त का 'उन्मुक्त' दूसरा गीतिनाट्य है जो 1930 ई. में प्रकाशित हुआ इसमें हिंसा और अहिंसा के संघर्ष को चित्रित किया गया है। युद्ध और तज्जनित परिणामों पर सुन्दर ढ़ग से प्रकाश डाला गया है। क्या युद्ध का एक मात्र उपाय हिंसा है, क्या अहिंसा के माध्यम से हम युद्ध की समस्या हल नहीं कर सकते? क्या मानवीय गुण शान्ति स्थापना में सहायक सिद्ध नहीं हो सकते।

यही कुछ प्रश्न है जिन्हें उन्मुक्त में उठाया गया है। उन्मुक्त पर द्वितीय विश्व युद्ध की विभीषिका का प्रभाव पड़ा है। द्वितीय विश्वयुद्ध के भीषण नर संहार से कवि का मन विचलित हो उठा होगा। समाचार पत्रों मे बर्बर रोमांचकारी घटनाओं को सुनकर कवि का मन कराह उठा होगा उसका जी घुटने लगा होगा यही घुटन पीड़ा और मर्मान्तक वेदना 'उन्मुक्त' के रूप में उभर कर सामने आई है।

कवि गांधीवादी उपायों से विश्व में शान्ति स्थापित करना चाहता है। उसका विचार है कि विश्व में शान्ति का एक मात्र उपाय अहिंसा ही है।–'हिंषा नल से शान्त नहीं होता हिंसानल और हिंषा का है एक अहिंसा ही प्रत्युत्तर' यही विचार धारा उन्मुक्त का मूल केन्द्र विन्दु है। उन्मुक्त का कथानक कल्पित की गई है इसमें लौहद्वीप, ताम्रद्वीप, रौप्यद्वीप पदाक्रान्त हो चुके हैं। अब कुसुमदीप पर आक्रमण हुआ है। जयकेतु कुसुमावती इसकी सूचना देता है और राष्ट्र के संकल्प को दुहराता है–

"प्रस्तुत है हम शौर्य सुबल हम भी है रखते

जय पथ में भय बिध्न कही भी नही निरखते।"[33]

कुसुमावती जय केतु को युद्ध की आज्ञा देती है। यह उपक्रम की कथा है। इसके बाद गुणधर और पुष्पदन्त कहता है कि अब सोचने का समय नहीं है गुणधर के विचार से–

"लगता मुझे तो यह, आत्मघात अपने

आयुधों से करते हमी है स्वयं अपना।"[34]

विवश कुसुमद्वीप को लौहद्वीप से युद्ध की घोषणा करनी पड़ती है। भयंकर युद्ध होता हैं। कुसुमदीप वासी इस युद्ध में तन, मन, धन से सहायता करते हैं। मां अपने पुत्र को हंसते हुए बलिदान कर देती है। अपनी पूंजी अर्पित कर देती है।[35]

बालक युद्ध का अभिनय कर उठते हैं।[36] बलात्कार बर्बरता और विनाश प्रारम्भ होता है।[37]

अन्त में पुष्पदन्त मारक अस्त्र 'भस्मक' का प्रयोग करने का भार लेता है किन्त भाग्य साथ नहीं देता। भस्मक युक्त विमान खराब हो जाता है और भस्मक किरण शत्रुओं के हाथ लगती है। कुसुमद्वीप पराजित हो जाता है। यही कथा है जिसे कवि ने अपनी कल्पना के माध्यम से विस्तार दिया है 'उन्मुक्त' में वर्णित समस्त घटनाओं को प्रत्यक्ष उपस्थित नहीं किया गया। अधिकांश घटनाओं की सूचना मात्र दे दी गई है। युद्ध के समस्त समाचार गुणधर के आहत होने की घटना ध्वंस किरण सज्जित विमान का शत्रुओं के हाथ पड़ना और युद्ध के भीषण और क्रूर दृश्यों को मात्र सूचना के आधार पर बताया गया है। दृश्य परिवर्तन, अंक परिवर्तन जैसा कोई विधान नहीं है। केवल स्थानों का संकेत देकर ही दृश्य परिवर्तन सूचित किया गया है। लेखक ने हृदय द्रावक और करुणार्द्र प्रसंगों को अधिक उभारा है शायद इसी कारण मृदुला द्वारा पुत्र की खोज का प्रत्यक्ष दिखाया गया है। प्रबन्धत्व की दृष्टि से 'उन्मुक्त' सुन्दर है। घटनाओं को गति देने, मोड़ने या परिवर्तन के लिए देव बल का सहारा लिया गया है। विमान की घटना दैवी घटना ही है। गाँधीवादी विचारधारा का प्रभाव उन्मुक्त पर सपष्ट दृष्टिगोचर होता है।[38]

''इसका भय क्या रक्तपात हम नहीं करेंगे

झेलेंगे सब स्वयं, अहिंसक मरण भरेंगे

हिसक है ही नहीं, निरा दानव ही दानव

सोया है अज्ञान दशा में उसका मानव।''[39]

वास्तव में उनमुक्त प्रतीक है उन घटनाओं और भावनाओं का जो युद्ध के नृशंक समाचारों से जाग्रत हुई। युद्ध का प्रत्युत्तर युद्ध से देने और बाद में विनाश

को देखकर पछताने की प्रवृत्ति मानव में अनादिकाल से रही है। लौहद्वीप के बर्बर आक्रमण का सामना कुसुमद्वीप के कर्णधार हिंसा और युद्ध से करना चाहते हैं। परिणाम स्वरूप देश जाति और सभ्यता के नष्ट हो जाने पर वे पछताते हैं। 'उन्मकुत' की मूल समस्या युद्ध की समस्या है। जब कोई बर्बर राष्ट्र किसी राष्ट्र पर आक्रमण करता है। तब वह न्याय की दुहाई देता है। लौह द्वीप के शासन भी विजय के बाद कहते हैं–

"दुर्बलों का आधिपत्य निखिल अशान्ति का

कारण है इनको हटाए बिना भव में

शान्ति का प्रयास व्यर्थ एक तंत्र विधि का

स्थापना अंसम्भव सी।

विजय उन्हीं की नहीं न्याय की विजय है।"[40]

लेखक ने युद्ध की विभीषिका का चित्र प्रभावशाली ढ़ंग से प्रस्तुत किया है अत्याचार, बलात्कार, विध्वन्स और विकरालता के मार्मिक चित्र प्रस्तुत किए गए है। दो वर्णन देखिए–

"बरस पड़े विध्वन्स पिण्ड सौ–सौ यानो से

x x x

प्रेतों का अट्टाहस शत शत प्रलयकर

उल्काओं का पतन वज्रपातों का वर्णन

x x x

ध्वस्त दिखाइ दिए, चिकित्सालय विद्यालय"[41]

बड़े बड़े कृषि क्षेत्र पड़े थे शत्रु पदान्कित

उन्मूलित उच्छिन्न, ग्राम पूरे के पूरे

कोसों तक सुनसान नहीं कोई जन मानस

बीच बीच में गीध घिरे मनुजाग गलित शव।''[42]

जिस प्रकार बरसात में विद्युत अथवा आसुओं के बीच में आंख की ज्वाला जल उठती है। उसी प्रकार इन विकराल भावनाओं के मध्य वीरता की कहीं–कहीं चमक दिखाई दे जाती है। वाह एसा भट आया में यही बात देखने को मिलती है। 'उन्मुक्त' में बह्य संघर्ष के स्थान पर आन्तरिक संघर्ष की प्रमुखता दी गई है। आन्तरिक संघर्ष में दो विचारधाराओं गाँधीवादी और हिंसावादी चिंतनधारा का संघर्ष है। हृदय के अर्न्तद्वन्द्व का चित्रण मृदुला और गुणधर में देखने की मिलता है। पुत्र की मृत्यु से मृदुला का हृदय दुराशाओं से घिर जाता है। गुणधर स्वयं घायल होकर युद्ध की समस्या में खो जाते है। कवि की वृत्ति भौतिक घटनाओं में चोट खाकर अन्तमुखी हो गई है। वह वाह्य जगत की समस्याओं का समाधान अर्न्तमन में ढूढ़ता है। 'उन्मुक्त' में व्यक्ति के मन का संघर्ष बहुत कम चित्रित हुआ है।

'उन्मुक्त' में कुल नौ पात्र हैं। इसके अतिरिक्त जागरिकता अशरीरी पात्र भी हैं। कुछ नागरिक और कर्मकार भी पात्र बनकर आये है। किन्तु प्रधान पात्र तीन ही है पुष्पदत्त, गुणधर और मृदुला। तीनों विविध प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। पुष्पदत्त गाँधीवादी विचारधारा का प्रतिनिधि है तो गुणधर हिंसा का प्रत्युत्तर हिंसा की विचारधारा का प्रतीक। मृदुला मध्यम माग्री है। वह गांधीवादी विचारधारा की पोषक है, किन्तु आवश्यकता पड़ने पर और विवशता की स्थिति हिंसा का सहारा लेने से भी नहीं हिचकती। फलस्वरूप पात्र 'टाइप' बन गये है मृदुला में जहां धीरता, वीरता, बुद्धि और साहस है वहीं स्त्रियोंचित करुणा, ममता और दया भी है। वास्तव में तीनों पात्र सात्विक, राजसी और तामसी प्रवृत्ति के पोषक हैं। गुणधर तो लेखक की स्वंय की विचारधारा का पोषक है। जिस प्रकार कवि रचना काल के मध्य रुग्ण रहकर द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका का अनुभव करता है।

उसी प्रकार गुणधर सुश्रूणालय में पड़ा पिछले दिन की हुई युद्ध की घटनाओं का वर्णन करता है।

पुष्पदन्त उग्र राष्ट्रीयता का प्रतीक है। वह राष्ट्रीयता जो हिटलर के मन में थी। मुसोलिनी के मन में थी, अन्य प्रधान इन पात्रों के सहायक के रूप में आये है। उसके चरित्र का पूर्ण विकास नहीं हुआ। कथोपकथन की दृष्टि से उन्मुक्त सफल नहीं है।

ऐसा लगता है जैसे लेखक ने इसकी रचना मात्र पढ़ने के लिए की है। अभिनय के तत्व उसमे अति अल्प है संवादों में कहीं भी नाटकीयता नहीं आने पाई। कई दृश्यो में एक ही पात्र स्वगत कथात्मक रूप में बोलता रहा है जैसे रण क्षेत्र में पुष्पदत्त का कथन चौदह पृष्ठ (35 से 48) तक चलता रहता है। इसी प्रकार ''मृदुलालय'' में मृदुला का एंकाकी कथन (पृष्ठ 66 से 69) सुश्रूषालय में गुणधर का एकांकी कथन (पृ0 70से 86) ''शिविर'' में पुष्पदत्त का एकांकी कथन (पृ0 87 से 97) एकान्त गुणधर का एकालाद (पृ 114 से 119) 'पराभव' में नागरिक कथन (पृ0 195से 153) आदि गिनाए जा सकते हैं। इन्हें पढ़ने पर ऐसा प्रतीत होता है जैसे कोई गीतिनाट्य नहीं अपितु काव्य पढ़ रहे हों। पात्रों के माध्यम से कवि की हर्दिक अनुभूति का ही वर्णन है।

सम्वादों में क्षिप्रता वाग्विदग्धता का अभाव है। किन्तु कहीं–कहीं स्वाभाविक और अच्छे संवाद भी देखने को मिलते है जैसे मृदुला और वद्धा के वार्तालाप (55से 56) गुणधर और पुष्पमित्र का वार्तालाप (15से 17) किन्तु प्रकार के सम्वाद बहुत कम है। भाषा शैली की दृष्टि से 'उन्मुक्त' सफल है। भाषा में कहीं भी शिथिलता परिक्षित नहीं होती। विचारों की कसावट और शब्दों का चयन निश्चिय ही स्तुत्य है। कहीं भी कमी नहीं आने पाई।

''आश्वासित समाश्वसित हूँ

तुझे देखकर हरित भाव से आशान्वित हूं

देख रहा है जहां क्रोध कुत्सित पावक का

शतशः खण्डीकरण दलन विदलन करके

धरणी की वह सुमन मंजरी म्रदुलान्दोलित

स्नेह सुरभि की लोल लहर ही है उत्तोलित।"

"उन्मुक्त में प्रायः अन्तयानुप्रास युक्त छन्द ही का प्रयोग हुआ है। किन्तु उनमें कहीं भी ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे कोरी तुकबन्दी की गई हो। "उन्मुक्त" का मूल उद्देश्य युद्ध की विभीषिकाओं का चित्रण कर मानव को उससे दूर रहने, अहिंसा का सहारा लेने ओर गांधीवादी विचारों को प्रसारित करता है। सबका हित हो– सर्वोदय, यही मूल मंत्र है।

सियाराम शरण गुप्त के गीतिनाट्यों मे चितंन और भावुरुता का अद्भुत समन्वय है। देश प्रेम, राष्ट्रीयता, त्याग, बलिदान से ओत–प्रोत आपके गीतिनाट्य मानव को मानवता का संदेश देते है। भावों की गहनता और अन्तः संर्घष की दृष्टि से जहां 'कृष्णा' सुन्दर है वहीं व्यापकता, वैचारिकता और युद्ध के परिप्रेक्ष्य में 'उन्मुक्त' को विशेष सफलता मिली है। गुप्त जी ने अपने दोनों ही नाट्यों में अपने गांधीवादी विचारों को सहज भाषा में प्रस्तुत किया है।

आनन्दी प्रसाद श्रीवास्तव–आनन्दी प्रसाद श्रीवास्तव रचित "झांकी" (1925) में चार रुपक संकलित है– "पार्वती और सीता", "शिवाजी और भारत राज्य लक्ष्मी", "नूरजहां", और "चन्द्रगुप्त और चाणक्य"। इन रचनाओं को कुछ आलोचकों ने काव्य रूपक कहा है। तो कुछ आलोचक इस संकलन की कुछ रचनाओं को स्वाँग मानते है।[43] किन्तु न तो ये रचनाएं हैं गीतिनाट्य हैं और न आधुनिक अर्थ में प्रयुक्त काव्य रूपक। ये नाट्य कविताएं हैं इन सभी रचनाओं में केवल एक ही दृश्य है तथा दो पात्रों के माध्यम से द्वन्द्व उत्पन्न किया गया है।

न तो इनमें कथानक का विकास हुआ है और न क्रिया व्यापार ही है। नाट्य–तत्व की दृष्टि से भी ये रचनाएं असफल हैं। इन रचनाओं को गुप्त जी नाट्य कविता ''जयनी'', ''पृथ्वीपुत्र'', प्रफुल चन्द्र ओझा की ''धरादीप'' रामचन्द्र शुक्ल की ''भारत और बसन्त'' तथा श्री नारायण चतुर्वेदी की 'चम्पे की कली' की कोटि में रखा जा सकता है। पार्वती और सीता में पार्वती और सीता का वार्तालाप हैं। स्वयम्बर से पूर्व सीता जी पार्वती की पूजा करने जाती हैं।पार्वती पूजा से प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन देती हैं।

सीता अपनी मनोकामना (राम को पति के रूप में प्राप्त करना)पूर्ति का वर मांगती है। पार्वती सीता के प्रेम की परीक्षा लेने हेतु विवाहोपरान्त आने वाले कष्टों की झांकी प्रस्तुत करती हैं। किन्तु सीता आगत दुखों की बात से विचलित नहीं होती है और कहती है–

''होने वाला जो कि जो कि देव होगा वही

कलेश सहूंगी तृण समान मैं ये सभी।''[44]

सीता के अविचल प्रेम को देखकर उनकी मनोकांक्षा पूर्ति का वरदान देती है, लेकिन साथ ही यह कह देती है कि तुम्हें यह संवाद विस्म्रत हो जायेगा। ''शिवाजी और भारत राज्य लक्ष्मी'' मैं शिवा जी कालीन भारतीय समाज का हृदयग्राही चित्र प्रस्तुत किया गया है। भारत राजलक्ष्मी तत्कालीन समाज की अधोगति से दुखी है। वह शिवाजी से कहती है कि आज हिन्दू समाज शक्तिहीन और धर्मच्युत हो गया है। ईर्ष्या, द्वेष, लम्पटता और वैमनस्य का सर्वत्र प्रसार हो रहा है। जिस भारत ने राम, अशोक, चन्द्रगुप्त जैसे शासक और उनका वैभव पूर्ण शासन दिया आज निस्तेज हो गया है। आज के मानव बुराइयों को ही देखते है। तुलसी के 'कवि वर्णन' की तरह राज लक्ष्मी कहती है–

'' नर है पर का अहित साधने के लिए

नेत्र बुद्धि पर दोष देखने के लिये।

रसना भावों पर निन्दा के हित बनी।

भारतीय जन की, वो कैसे हो गये।''[45]

शिवाजी राज लक्ष्मी से भारत के भविष्य की झाँकी दिखाने का अनुरोध करते हैं। राजलक्ष्मी भारत के भविष्य की बात बताते हुए कहतीं हैं कि भारत की उन्नति और उद्धार अभी कई शताब्दियों तक सम्भव नहीं मुगलों के बाद अंग्रेजी राज्य आयेगा जिसमें भारतीय राजा——

''नरपतिगण होगे अधीन उस जाति के

किन्तु तेज से हीन हीन अभियान से

पर आपस में वे मानी होगें बड़े

सम्राज्ञी के वस्त्र वहन के कार्य में

समझेंगे अपना आदर सबसे अधिक

उसके हित भी आपस में लड़ जायेंगे।''[46]

सम्पूर्ण कथानक में वर्णात्मकता और चिन्तन की प्रधनता है। राजलक्ष्मी सूत्रधार के समान प्रतीत होती है। नूरजहां में नूरजहां और उसकी पुत्री लीला का वार्तालाप है। मृत्यु शैय्या पर लेटी नूरजहां अपने विगत जीवन की झांकी लीला के सम्मुख प्रस्तुत करती है। शेर अफगन की मृत्यु के बाद उसने क्यों जहांगीर से शादी की यही बताना लेखक का उद्देश्य है। इसमें नूरजहां की अन्तर व्यथा का सुन्दर चित्रण हुआ है।

''चन्द्रगुप्त और चाणक्य'' में चाणक्य के सन्यास लेने की घटना का चित्रण है। चन्द्रगुप्त के शासन होने के बाद चाणक्य बन गमन में जाने को तत्पर है। चन्द्रगुप्त उसे रोकना चाहता है लेकिन चाणक्य अन्ततः वन गमन कर जाता है। समस्त रचनाओं में अतुकांत छन्दों का प्रयोग हुआ है। भाषा सुन्दर है किन्तु उसमें

नाटकीयता का अभाव है कथोपकथन संक्षिप्त है। ये रचनाएं नाट्य कविताओं की ही कोटि में रखी जायेगी, क्योंकि गीतिनाट्यों के तत्वों ये खरी नहीं उतरती।

निराला—परिमल में संग्रहीत गीतिनाट्य पंचतटी प्रसंग विवादास्पद रचना है। कुछ आलोचक इसे सफल गीतिनाट्य मानते हैं तो कुछ के विचार में यह नाट्य कविता है। इसे गीतिनाट्य न मानने वालों के निम्न तर्क हैं।

1— इसमें काव्य तन्त्र की प्रधानता है और नाट्य तत्व बहुत क्षीण है।

2— इसमें प्रयुक्त चरित्र पूर्व निर्मित है उनके चरित्र का विकास नहीं हुआ।

3— इसमें चिन्तन की अधिकता है।

4— संघर्ष अत्यन्त क्षीण है।

लेकिन यदि 'पंचवटी प्रसंग का गहराई से अध्ययन किया जाय, तो ये तर्क पूर्ण सत्य प्रतीत नहीं होते। प्रथम तर्क को ही ले 'पंचवटी प्रंसग' पांच दृश्यों में विभक्त है प्रथम दृश्य का प्रारम्भ नाटकोचित ढ़ग से हुआ हैं। राम और सीता का संवाद अति मर्मस्पर्शी शब्दावली में विभक्त किया गया है। इसी प्रकार अन्तिम दृष्टि में भी नाटकीय तनाव सघनता अधिक है। चतुर्थ दृश्य में भी राम और सीता के वार्तालाप में नाटकीयता है। इसमें व्यष्टि, समष्टि, भक्ति, ज्ञान, सृष्टि, स्थिति और प्रलय पर दार्शनिक विवेचन किया गया है।

द्वितीय दृष्टि में लक्ष्मण का स्वगत संवाद है। इसी प्रकार तृतीय दृश्य में सूर्पनखा अपने ही सौन्दर्य पर मुग्ध दिखाई देती है। पंचवटी प्रसंग नाटकीयता नहीं इसी से यह गीतिनाट्य जो मात्र पाठ्य है फिर भी यदि 'पंचवटी प्रंसग का अभिप्रय किया जाय तो कोई विशेष भाषा उत्पन्न नहीं होगी।

जहां तक चरित्रांकन का प्रश्न है पंचतटी में सभी प्रकार का विकास हुआ है। जब पौराणिक गाथओं को गीतिनाट्य का विषय बनाया जाता है। तब पौराणिक पात्रों की विशेषताओं को चित्रित करना ही पड़ता है फिर भी निराला जी

ने पात्रों के चित्रांकन में मौलिकता का परिचय दिया है। यथः लक्ष्मण की तुलना शैवाल जाल से करना जो सरिता में बहता हुआ अन्ततः सरिता में मिला जाता है।[47] सूर्पनखा भट्ट जी की मत्स्यगंधा की भांति सारी सृष्टि के सौन्दर्य को अपने में समाहित मानती है।

"सृष्टि की सुन्दर प्रकृति का सौन्दर्य भाग

खींचकर विधाता ने भरा है इस अंग में।

भावना के साथ–साथ गीतिनाट्यों में कहीं–कहीं चिंतन की अधिकता भी हो जाती है। पंत जी के गीतिनाट्यों में तो समस्त अरविन्द दर्शन समाविष्ट हो गया है। तो क्या उनके गीतिनाट्यों को भी गतिनाट्य नहीं माना जायेगा। 'पंचवटी प्रसंग' में तो दर्शन और चिन्तन पन्त जी के गीतिनाट्यों से बहुत कम है। अन्तः पंचवटी प्रंसग में अर्न्द्वन्द्व का सर्वथा अभाव नहीं है। सूर्पनखा और लक्ष्मण के मन के संघर्ष को यत्र–तत्र वाणी दी गई है। छायावादी काव्य सुलभ अभिव्यंजना और मन की उमंग को देखिये–

"और कहां पास बैठ देखती मैं

चचंल तरंगिणी की तरल तरगों पर

सुर ललनाओं के चारु चरण चपल नृत्य

और कहां सुनती मैं

सुखद समीरण में बिहग कल कूजल ध्वनि

पत्रों के भर्भर में मधुर गधर्व मान।[48]

अतः पचवटी प्रंसग को गीतिनाट्य ही मानना होगा। पंचवटी प्रंसग का कथानक पंचवटी में राम के निवास से सम्बन्धित है राम–लक्ष्मण–सीता अपना समय सुख से काट रहे हैं। लक्ष्मण ज्ञानर्जन हेतु राम से प्रश्न करते हैं और राम उनका उत्तर देते है। तृतीय दृश्य में सूर्पनखा का आत्म–चिन्तन है। चतुर्थ दृश्य

में वह प्रवेश करती हैं। अन्तिम दृश्य में वह अपना प्रणय निवेदन अस्वीकार हो जाने पर क्रोधित हो जाती हैं और तभी लक्ष्मण राम के संकेत पर नाक कान काट लेते हैं। पात्रों का चरित्रांकन सुन्दर हुआ है। लक्ष्मण के चरित्र का चित्रण देखिये–

''पाये हैं इसने गुण सारे सुमित्रा के

वैसा ही सेवा भाव, वैसा ही आत्म ज्ञान

वैसी ही सरलता वैसी ही पंक्ति कान्ति

त्रुटि पर ज्यों बिजली सी टूटती सुमित्रा मां

शत्रु पर त्यों सिंह सा झपटता है लखन लाल।[49]

कवित्व की दृष्टि से भी पंचवटी प्रसंग सुन्दर रचना है। कहीं–कहीं निराला का कवि हृदय होकर गा उठता है–

'चाहता जी–नील जल सरोवर पर

प्रेम सुधा कौमदी पी–सांवरे अधर मधु पान कर

सुख से विताऊँ दिन। (सूर्पनखा)[50]

छन्द की दृष्टि से भी निराला ने नवीन प्रयोग किया है। वे लिखते कि मेरा यह स्वच्छन्द ऐसे ही नाटकों के लिए उपयोगी है।[51] भाषा में व्यवहारिकता लाने के लिए कहीं–कहीं उर्दू शब्दों का प्रयोग किया गया है दगा, दम, हरगिज ऐसे ही शब्द हैं। कुल मिलाकर पंचवटी प्रंसग अर्द्ध सफल गीतिनाट्य है।

मंगला प्रसाद विश्वकर्मा–मंगला प्रसाद विश्वकर्मा कृत 'रेणुका (1930) मे सात रचनाएं संकलित है– 'उत्तरा', 'अभिमन्यु', 'श्री कृष्ण और सुदामा', 'लौंगी', 'देवदासी', 'चित्रलेखा', 'राधा और शाहजहां'। इनमें कुछ रचनाएं सरस्वती में प्रकाशित हुई थी।[52] ये सभी रचनाएं गीतिनाट्य की कसौटी पर खरी उतरती है। 'उत्तरा और अभिमन्यु', 'श्री कृष्ण और सुदामा' तथा 'चित्रलेखा' स्वांग की कोटि के गीतिनाट्य है। इनमें केवल दो दृश्य और दो पात्रों के ही मध्य वार्तालाप है।

इनमें कथानक का अभाव और क्रिया व्यापार की शिथिलता है। इन्हें नाट्य कविता की दृष्टि में रखा जायेगा।

"उत्तरा और अभिमन्यु' में उत्तरा युद्ध में जाते अभिमन्यु को रोकना चाहती है। अभिमन्यु उत्तरा की भावना और प्रेम का उचित सत्कार करता है लेकिन कर्तव्य के समक्ष प्रेम का त्याग अनिवार्य हो जाता है। वह अनेक प्रकार से उत्तरा को प्रबोध प्रदान करता है। उत्तरा को ऐसा प्रतीत होता है जैसे मानो यह मिलन अन्तिम है आगत अशंका से वह भयभीत हो उठती है। किन्तु अभिमन्यु रुकता नहीं।

'श्री कृष्ण–सुदामा' में कृष्ण और सुदामा की मित्रता का भावात्मक चित्रण है। बहुत दिन बाद मिलते ही कृष्ण के मन में पुरानी स्मृतियां जाग्रत हो जाती है। सुदामा भी कृष्ण को नहीं भूले। वह कृष्ण को पुनः वांसुरी के स्वर्गीय संगीत सुनाने का अनुरोध करते हैं–

"बैठो मेरे पास अन्यतम शान्ति से
अभी बजाऊँगा मैं अपनी बांसुरी
देखूंगा क्या उठता है पूर्ववत
उसमें वह स्वर–वही मनोहर रागिनी।"[53]

चित्रलेखा प्रेम प्रधान रूपक है। इसमें भी केवल एक ही दृश्य है और उसमें चित्रलेखा तथा उसकी सखी ऊषा का संवाद चित्रित है। ऊषा बताती है कि उसने गत रात्रि एक स्वप्न देखा है जिसमें एक सुन्दर राजकुमार उसके कक्ष में आकर प्रणय–निवेदन करता है। चित्रलेखा स्वप्न को भूल जाने की सम्मति देती है। लेकिन ऊषा भुला नहीं पाती। अन्त में सखी के रूप वर्णन के आधार पर राजकुमार का चित्र बनाती है। इसमें भी नाट्य तत्व दुर्बल है। शाहजहाँ में भी मात्र शाहजहां और जहां नारा का सम्वाद हैं। बन्दीग्रह में पड़े शाहजहां को मुमताज की याद

आती है जिससे वह बेचैन हो जाता है। जहांनारा उसे सन्तोष दिलाने का प्रयत्न करती है। उसे औरंगजेब के प्रति क्रोध आता है, लेकिन शाहजहां औरंगजेब के अपराधों के लिए ईश्वर से प्रार्थना करता है। यह रचना भी नाट्य कविता की कोटि में ही आती है। गीतिनाट्य के तत्वों पर यह खरी नही उतरती।

'राधा' में भी एक दृश्य है। इसमें राधा कृष्ण के वार्तालाप के माध्यम से राधा के अनन्य प्रेम की झांकी प्रस्तुत की गई है। कृष्ण की वंशी बजते ही राधा सुध–बुध खो देती है। सभी ब्रजवासी वंशी की ध्वनि सुनकर बेचैन हो उठते है। कृष्ण की वंशी के आकषर्ण का रहस्य बताते हुए कहते हैं–

"मैं पाता हूं राधा के जिस प्रेम को

वही वांसुरी के छिद्रों से मुक्त हो

बज उठता है शुचि स्वर्गिक संगीत में।[54]

इस संकलन की दो रचनाएं नाट्य की दृष्टि से सुन्दर है–देवदासी और लौंगी। देवदासी में यौवन का संघर्ष चित्रित किया गया है। देवदासी मृणालिनी राज पुत्र श्री कान्त से प्रेम करती है। लेकिन वह जिन बन्धनों में बंधी है उन्हें तोड़ने का सहस उसमें नहीं है। फलस्वरूप उसके मन में द्वन्द्व चल उठता है। वह देवदासी बनी रहे या सब कुछ छोड़कर श्री कान्त से शादी कर ले। यही सब कुछ है जिस पर विचार करते–करते मृणालिनी बेचैन है। श्री कान्त भी प्रेम से व्याकुल है उसके मन में उठने वाले द्वन्द्व को विश्वकर्मा जी ने सुन्दर ढ़ंग से प्रस्तुत किया है। नहीं जानता कैसी मुझको भ्रान्ति हैं, कहकर वह अपनी मनोव्यथा व्यक्त करता है। देवदासी का कथानक सात दृश्यों में विभक्त है।

लेखक ने रंगमचीय निर्देश दिये हैं जिनके माध्यम से उसे रंग मंच पर प्रस्तुत किया जा सकता है। कथानक में घटनाओं की बहुलता न होते हुए भी क्रिया व्यापार में कमी नहीं आने पाई। मानसिक द्वन्द्व के साथ संवादों का प्रयोग

सुरूचि पूर्ण है। संवादों में भी कहीं–कहीं मानसिक द्वन्द्व के दर्शन हो जाते है। काव्य तत्व और नाट्य तत्वों का संयोजन हुआ है। फिर भी इसे उच्च स्तर का गीतिनाट्य नहीं माना जा सकता। लौंगी का कथानक पांच दृश्यों में विभक्त है। एक भील बालिका लौंगी एक राजकुमार से प्रेम करने लगती है। राज कुमार प्रारम्भ में उत्तम गुण सम्पन्न दिखाई देता है। लौंगी उनके समक्ष आत्म समपर्ण कर देती है। धीरे–धीरे राजकुमार की कपटता परिलक्षित होती है।

वह लौंगी को छोड़कर भाग जाता है। कथानक कुछ–कुछ शकुन्तला और दुष्यन्त के प्रेम कहानी की याद दिला देता है। राजकुमार के निष्ठुर व्यवहार से लौंगी का हृदय भग्न हो जाता है। वह कहती है–

"सुनकर प्रियतम आज प्रेम संगीत को
खड़ी हुई है मुग्ध म्रगी यह सामने
उसे गिरा दो बाण मारकर जोर से
खाल खीचंकर ले जाओं तुम प्राण को।"

लौंगी में तीन ही प्रधान पात्र–लौंगी, राजकुमार और लौंगी का पिता शंकर। लौंगी सहृदय प्रेमी के रूप में प्रस्तुत हुई तो राजकुमार दुष्ट कपटी प्रेमी के रूप में। शंकर के कथनों में उसका पुत्री के प्रति अपार प्रेम परिलक्षित होता है। कथोपकथन जहां कथानक को गति देने में सफल हुए है, वही हृदय के मनोभावों के प्रस्तुत करने में सहायक सिद्ध हुए हैं। लम्बे और नीरस संवादों का लौंगी में अभाव है। लौंगी में मुक्त छन्द का प्रयोग किया गया है, छन्द भावों को प्रस्तुत करने में सहायक रहे हैं। भाषा, काव्यात्मकता, भावाभिव्यंजना और नाटकीयता तीनों गुणों में सम्पन्न है। कुल मिलाकर विश्वकर्मा जी के गीतिनाट्य ने इस क्षेत्र में नई दिशा प्रदान की है। उनमें जो संगीत का माधुर्य है। इसलिए कुछ विद्वानों ने उन्हे स्वांग मान लिया है। जिस प्रकार का स्वांग 'इन्दर सभा' है, लेकिन ये

गीतिनाट्य इन्दर सभा से कई अंशों में अलग हैं। इनका अन्तर द्वन्द्व सामान्य संगीत नाटकों से अलग कर देता है।

(ब) छायावाद युगीन गीतिनाट्य—छायावादी युग में भी गीतिनाट्यों की रचना होती रही। द्विवेदी युग के गीतिनाट्य आदर्शवादी थे और उनमें राष्ट्रीयता तथा स्त्री स्वातन्त्रय के स्वर अधिक मुखर है। छायावादी युग में भी गीतिनाट्यों पर आदर्शवादी सिद्धान्तों की स्पष्ट छाप दृष्टिगोचर होती है। लेकिन यहां कोरा आदर्श ही नही चिन्तन भी है। इस काल के गीतिनाट्यों पर आदर्शवादी सिद्धान्तों की स्पष्ट छाप दृष्टिगोचर होती है। लेकन यहां मेरा आदर्श ही नहीं चिन्तन भी है। इस काल के गतिनाट्यों पर किसी न किसी वाद या विचार धारा का प्रभाव पड़ा है। गांधीवाद, मनोविश्लेषण वाद, मार्क्सवाद, अरविन्द दर्शन ने इन गीतिनाट्यों को प्रभावित किया है। अतिसय चिन्तन के कारण गीतिनाट्यों में कथावस्तु का अभाव हो गया है। इस काल का प्रतिनिधित्व पन्त जी कहते हैं। भाषा में नवीनता तथा शैली शिल्प के नये प्रयोग हुए है।

अतिशय चिन्तन के कारण गीतिनाट्यों में विचार बोझिलता आ गई और भावुकता का स्थान दर्शन ने ले लिया है। इस काल के गीतिनाट्य भी द्विवेदी कालीन प्रारम्भिक गीतिनाट्यों की संज्ञा दी जा सकती है। द्विवेदी युगीन गीतिनाट्यों पर रेडियों शिल्प का प्रभाव नहीं पड़ा, लेकिन इस काल का रचनाओं पर रेडियो शिल्प का स्पष्ट परिलक्षित होता है। अधिकांश रचनाओं पर रेडियों के लिए ही लिखी गई है। अतिशय विचार बोझिलता केकारणइन गीतिनाट्यों का कथानक शिथिल हो गया है। कवि की कल्पना और चिन्तन ने यहीं—कहीं रस निष्पति में भी बाधा डाली है। फिर भी इन गीतिनाट्यों का विकासात्मक महत्व है। इन्हीं से प्रेरणा लेकर कालान्तर में सुन्दर गीतिनाट्यों का सृजन किया गया। इस काल के प्रमुख लेखकों में सेठ गोविन्द दास, प्रेमी, पन्त और प्रभात के नाम विशेष

उल्लेखनीय है।

1– सेठ गोविन्द दास–''स्नेह या स्वर्ग''– सेठ गोविन्द दास ने केवल एक ही गीतिनाट्य की रचना की है 'स्नेह या स्वर्ग' की कहानी होमर केयूनानी काव्य 'ईलियड' से ली गई है। इसे रूपान्तर भी कहा जा सकता है। शतशः भारतीय रूपान्तर ही कहा जा सकता है न तो 'ईलियड' का विस्तार है न उसके पात्र ही है। लेकिन फिर भी लेखक ने यूनानी पात्रों को बताने के लिए उसके नाम भारतीय पात्रों के समक्ष कोष्टक में दिये है।– जैसे– स्नेहलता (मार पैसा), अक्षय (यूनस), चपला(स्थानो), अजेय(इण्डास), प्रभाकर (टालेमन), जयंत (अपोला),शुचिता (अधीनी), महेन्द्र (ज्यूअस) राची हीरा आदि। स्नेह या स्वर्ग में स्वर्ग पर स्नेह की विजय का चित्रण है। इन्द्र स्वर्ग के प्रतीक हैं। नाटक की प्रधान पात्री इन्द्र पुत्र जयन्त को न चुनकर मानव पुत्र अजेय के समक्ष आत्म समर्पण करती है। अर्थात हृदय (प्रेम) की वेदी पर वह स्वर्ग के सुख का तिरस्कार कर देती है।

कथानक का प्रारम्भ जयंत और उसकी बहन शुचिता के वार्तालाप से होता है। जयन्त अपनी बहन को स्नहेलता के साथ प्रणय निवेदन हेतु भेजता है। सुचिता का विचार है कि स्नेहलता जयन्त के प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लेगी। इसी प्रकार द्वितीय दृश्य में अजेय अपने मित्र प्रभाकर को स्नेहलता के पास प्रणय निवेदन को भेजता है। तृतीय दृश्य में स्नेहलता का पदार्पण होता है वह अपनी सखी चपला के साथ वार्तालाप में मग्न है। इसी बीच शुचिता का रथ वहां उतरता है। वह स्नेह के समक्ष स्वर्ग की महिला का बखान करती हुई जयंत का सन्देश दे देती है। लेकिन वह स्वर्ग से दूर रहकर अपना निर्णय अपने पिता को बता देने की बात कहकर शुचिता को टाल देती है। फलस्वरूप शुचिता क्रोधित होकर चली जाती है। स्नेहलता प्रेम का विक्रय नहीं करना चाहती है। वह कहती है–

''पावन प्रेम का क्षेत्र विश्रुत विश्व में

स्वर्ग सुखों से क्या क्रय किया जा सकता।[55]

शुचिता जाती है और प्रभाकर आता उसे अजेय की मध्यस्थता पर क्रोध आता है और प्रभाकर को बिना कोई उत्तर दिये चुप हो जाती है। चतुर्थ दृश्य अजेय के घर का है। प्रभाकर से बात सुनकर वह स्वयं स्नेहलता के घर जाने का निर्णय कर लेता है।

द्वितीय अंक का प्रथम दृश्य पुनः अक्षय उद्यान का है। जहां स्नेहलता और चपला में वार्तालाप चल रहा है। इसी समय अजेय आता है। वह प्रेम का व्यापार न मानकर उसे प्रेम ही बने रहने देने का आग्रह करता है। उसका विचार है कि जयन्त प्रेम नहीं कर सकता क्योंकि वह अप्सरा प्रेमी है। वह स्नेह से अपने साथ चलने का अनुरोध करता है, क्योंकि जयंत उसके पिता अक्षय पर दवाव डाल रहा है। स्नेह उसके प्रस्ताव को स्वीकार कर लेती है।

द्वितीय दृश्य में अक्षय जयन्त से स्नेह को वापस लाने का अनुरोध करता है। फलस्वरूप जयंत अजेय के घर जाकर उसे धमकाता है। वह अजेय को द्वन्द्व युद्ध के लिए भी ललकारता है, जिसे अजेय स्वीकार कर लेता है। स्नेहलता द्विधा ग्रस्त हो जाती है। अगले दृश्यों में अजेय और जयंत के युद्ध का वर्णन है। युद्ध में दोनों वीर लड़ते रहते है। इसी समय इन्द्र प्रवेश कर युद्ध रुकवा देते हैं। वह कहते हैं–

"तुमको जो मिल जाती जय भी अजेय पर
तो भी प्राप्ति लता की लता पर निर्भर थी।[56]

वह लता को दोनों में से किसी एक को चुनने की छूट दे देता है। स्नेह विचार का अवसर मांग लेती है। अन्त में वह अजेय को चुनकर स्वर्ण का तिरस्कार कर देती है। 'स्नेह या स्वर्ग' में वाह्य और आन्तिरिक दोनों प्रकार का संघर्ष चित्रित है। अजेय और जयंत द्वन्द्व वाह्य संघर्ष का प्रतीक है। यहां दोनों का

अजेय मानकर हार जीत का फैसला नहीं होता। लेकिन आन्तिरिक द्वन्द्व में वैभव की पराजय और हृदय की जीत होती है। स्नेह के मन में उठने वाले सघर्ष को सेठ जी ने सुन्दर शब्दों में व्यक्त किया है।

एक ओर स्वर्ग का वैभव है, मान है, सम्मान है, तो दूसरी और उसका प्रेम है, हृदय और स्नेह है। जयंत और अजेय के द्वन्द में अजेय के पराजय की आशंका मात्र से उसका हृदय दुराषा में फस जाता है। इस समय उसके हृदय का संघर्ष अपनी चरम सीमा पर पहुंच जाता है। चरित्रांकन की दृष्टि से "स्नेह या स्वर्ग ' में तीन प्रधान पात्र हैं– स्नेहलता, अजेय और जयंत। स्नेहलता अनुपम रूपवती युवती है। उसी सुन्दरता देवियों से होण लेती है। वह शील और दृढ़ता में सुरगंनाओं को दबा देती है–

"प्रथम तो कम नही, वह किसी देवी से
सुन्दरता में, सदगुणों में किसी भी बात में
शील और द्रढ़ता दो मुख्य गुण नारी के
उसमें जैसे वैसे न किसी सुरागंना में।[57]

जयंत को स्वेछाचारी युवक के रूप में चित्रित किया है जो स्वर्ग के वैभव के बल पर युवतियों से हृदय को जीतना चाहता है देखिये

"जयंत स्वेछाकारी और अप्सरा विहारी
सहज सत्य स्नेह क्या? सोच भी न सकता।[58]

अजेय सच्चा प्रेमी, वीर, साहसी और पौरुषी युवक के रूप में चित्रत हुआ है। उसकी शक्ति और क्षमता देखकर देवगण भी उसकी वाह! कर उठते हैं।

सेठ जी ने प्रस्तुत गीतिनाट्यों में सुन्दर संवादों का वर्णन किया है। वे नाटकीयता और संवाद की सभी विशेषताओं से युक्त है। कहीं भी ऐसा स्थल नहीं जहां संवादो का प्रयोग हुआ है।[59] भाषा की दृष्टि से भी 'स्नेह या स्वर्ग' उत्तम है

जहां–विलक्षण यह लोकवृत्ति तृप्ति न होती कभी 'जैसी सूक्तियों का प्रयोग हुआ' है। वही काव्यात्मक और अलंकारिक भाषा का प्रयोग भी हुआ है। 'तारापति तारे तरु सारे जल रहे' जैसे अनुप्रास युक्त अनेक संवाद मिलते है। काव्यत्व की दृष्टि से भी यह गीतिनाट्य उत्तम है। कहीं कहीं प्रकृति के मनोरम दृश्यों में सेठ जी की लेखनी भावुक हो गयी है। एक वर्णन देखिए–

"जब उठी थी उदयाद्रि पर उदित ऊषा

उस कांचन कान्ति में एक आभा और थी

रूचिर रूपहली प्रभात के नक्षतत्र भी

निर्मल हुआ था जो सद्य सर के स्नान में।"

'स्नेह या स्वर्ग' एक अभिनेय गीतिनाट्य है। कोई भी ऐसा दृश्य नहीं जिसे मंच पर प्रस्तुत न किया जा सके हां, छोटे–छोटे और जल्दी परिवर्तित होने वाले दृश्यों के कारण प्रस्तोता को तनिक कठिनाई का सामना करना पड़ सकता है। नाट्यकला और काव्य कला दोनों का सुन्दर समन्वय है और दोनों मार्यादा में है। किसी ने भी किसी किसी के क्षेत्र का उल्लघन नहीं किया। इस दृष्टि से 'स्नेह या स्वर्ग' एक सुन्दर नाटक कहा जा सकता है।

सुमित्रानन्दन पन्त–वैचारिक पृष्ठभूमि पर लिखे गए पंत जी से गीतिनाट्यों का विशेष महत्व है। पंत जी ने अपने गीतिनाट्यों की रचना रेडियो के प्रसारण हेतु की थी। ये उस समय की रचनाएं हैं जब कि वे रेडियो में परामर्शदाता के रूप में कार्य कर रहे थे,

अतः इन पर रेडियो शिल्प का प्रभाव पड़ा है। कुछ तो 'रेडियो रूपक' मात्र है और कुछ सुन्दर भाव प्रधान गीतिनाट्य। पंत जी के गीतिनाट्य, गीतिनाट्य की दृष्टि से अधिक सुन्दर तो नहीं लेकिन उन्होंने पर्वती लेखको को रेडियो गीतिनाट्य लिखने की प्रेरणा अवश्य दी है। इस दृष्टि से पंत जी का योगदान निश्चय ही

स्तुत्य है। उसके गीतिनाट्यों के तीन संग्रह प्रसारित हुए है– (1) रजत सिखर(2) शिल्पी और (3) सौरव 'रजत सिखर' में छः 'शिल्पी' में तीन और 'सोवर्ण' में दो गीतिनाट्य संग्रहीत है। इस प्रकार कुल मिलाकर पंत जी के ग्यारह गीतिनाट्य हैं संख्या की दृष्टि कसे कोई भी गीतिनाट्कार उनकी समता नहीं कर सकता।

रजत शिखर (12 जून 1951)–'रजत शिखर' पंत जी का प्रथम गीतिनाट्य है जिसमें दार्शनिक एवं साधनात्मक अनुभूतियों की अपूर्ण एवं भ्रान्तिपूर्ण मनोवैज्ञानिक व्याख्या का खण्डन करके "मानव मानव मन की वर्तमान स्थिति में उर्ध्व के अवरोहण तथा समतल के अवरोहण पर बल देकर दोनों में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है।"[60] रजत शिखर का कथानक काल्पनिक है। प्रारम्भ में पुरूष और स्त्री स्वरों के माध्यम से भारत के प्राकृतिक सौन्दर्य और गरिमा का वर्णन किया गया है। उसके पश्चात स्वर्ग का चित्रण है जहां पहुंचने के लिए एक युवक व्यग्र है। वह छाया की घाटी में रहता है और जग जीवन के संघर्ष से शान्त क्लांत हो गया है। मृग मारीचका सदृश्य वह इधर उधर भटक रहा है। वह चाहता है–

"कैसे मैं जीवन के रंजित कदर्म से उठ
भाव तृषित मृग–मारीचका से मोह मुक्त हो
पहुँचू अन्तर्मन की उस प्रज्वलित भूमि तक
जिसके सान्ति शिखर मोति करते भूका मन।[61]

मानव जीवन कामना, तृष्णा, विषाद और अभिलाषा के विविध सोपानों से होता हुआ निरन्तर चित्रपटी की तरह परिवर्तित होता रहता है वह कभी प्रकृति की ओर आकर्षित होता है और कभी नारी के मोह–पाष में आवद्ध हो जाता है। युवक एक युवती से प्रेम करता है किन्तु युवती अब उसकी ओर आकर्षित नहीं है। अपने पूर्व के प्रेमलाप और आलिगंनों को वह किशोर जीवन की भावुकता मनती है। युवक

जब पूर्व छड़ो की याद दिलाता है तो वह कहती है–

"आज प्रेम विषयक इन मदय युगीन शुष्क जल्पित
उद्‌गारों की कीर्ति तुम्हारे मुख से सुनकर
मेरा मन अवसन्न, हृदय उद्विग्न हो उठा।[62]

युवक नैतिकता की दुहाई देता है तो मनोविश्लेषण सुखव्रत प्रेम की मनोवैज्ञानिक व्याख्या करता है। प्रेम क्यों होता है? इसका उत्तर देते हुआ सुखव्रत कहता है कि प्राण चेतना अपने मौलिक नियमों के अनुसार मानों की रामवृति संचालित करती है। उसके अनुसार प्रेम आवेगों का अंध समर्पण नहीं है। उसके पीछे अवचेतन मन कार्य करता है। वही प्रेम की समस्त गीतिविधियों का संचालन करता है। वही कुण्ठओं का मिटाकर और सद्ध ग्रन्थियों को खोलकर मन को वासना के बन्धन में बांध देता है निश्चेतन मन का रहस्य सहज ग्राह्य नहीं है। मन शास्त्र का दूसरा पक्ष सामाजिक है। मानव के उद्धेगों का मूल कारण रागात्मक वृत्तियों का अंध दमन है जिसके लिए हमारा समाज उत्तरदायी है। थोथे आचार और नैतिकता के नाम पर वृत्तियों का दमन की मानव के दुख का कारण है। युवक इसका कारण नैतिक मूल्यों में हुई आस्था को बताता है। वह अरविन्द दर्शन का समर्थक है। उसके विचार से मानव का मन देवासुर संग्राम का क्षेत्र है। जब तक मानव उर्ध्व ज्योति की विजय ध्वजा नही फहराता तब तक चेतना दुखों से छुटकारा नहीं पा सकती।

"मार काट हत्या, निर्दयता, कुटु नृशंसता
पैशाचिक उघाम कामना का खर–ताण्डव
नारकीय प्रति हिंसा, घेर धृणा का उत्सव
नग्न वासना नृत्य प्रेत ज्यों अवचेतन के।[63]

आज के बलात्कार और व्यभिचार के मानव के स्वरूप को बिगाड़ दिया है।

साम्प्रदायिकता, कट्टरता और रुढ़ियों ने उसे पिशाच बना दिया है आज के राजनीतिज्ञ जनता के सेवक न बनकर भक्षक बन गये है। उसकी योजनाएं कागजी योजनाएं है।वास्तव में आज का मानव आपने मूल्यों से विस्तापित हो गया है। जब तक स्वर्ग नरक से मनुष्य विजय नहीं पाले उसे शान्ति नहीं मिलेगी। मानव के मार्ग में अधूरी वासनाए रोड़ा अटकाती है। स्वार्थ र्स्पधा कुण्ठा उसके उपादान है। इन सभी को नष्ट करना होगा। अन्तः युवती और सुखव्रत युवक की बात से सहमत हो जाते है और दोनों मिलकर मानव के उद्धार का व्रत लेते हैं।

'रजत शिखर' में नैतिकता के स्वर अधिक उभरे है इसके कारण काव्यात्मकता को आघात पहुंचता है। समय कथानक विचार प्रधान हो गया है पंत जी मनोवृत्तियों को चित्र रूप देने में सफल हुए है। यथा–

"हास अश्रु की घाटी, यह हंसमुख फूलों की

पलकों से झरते रहते मोती से आंसू।[64]

कनक–भुजंग के समान मन की दुर्बल घाटियां में सरकने और सिहरन उत्पन्न करने वाली अभिलाषाएं किस प्रकार साधना के मार्ग में विध्न बनती है। इसका वर्ण करते हुए कवि लिखता है–

"चपलाओं के विभ्रम से क्रत चकिन मनोद्रग

फिर प्राणों की अभिलाषा कनक–भुजंग सी

लिपट बांध देती उत्सुक चरणों को

धीरे–धीरे झींगुर सी फिर रेंग कामना

जड़ निषाद को कम्पा जगाती सुख की तृष्णा।"[65]

कवि पर अरविन्द दर्शन का स्पष्ट प्रभाव है विश्वम्भरनाथ उपाध्याय के शब्दों में–'कवि ने एक ही बात को सैकड़ों वार पैतरे बदलकर कहा है और वह बात भी कवि की अपनी नहीं अरविंद से उधार ली गई है।[66] युवक अरविन्द का ही

पोषक है अरविन्द दर्शन के माध्यम से वह नैतिक मूल्यों की वकालता करता है और मनोविश्लेषक को हार मानने के लिए विवश करता है। सघर्ष पंत जी के समस्त गीतिनाट्यों में देखने को मिलेगा।

प्रस्तुत गीतिनाट्य में जीवन के उर्ध्व और समतल संचरणो का द्वन्द्व प्रदर्शित किया गया है ओर अन्ततः दोनों में समन्वय स्थापित किया गया है इसके अतिरिक्त फ्रायड और अरविन्द दर्शन में भी द्वन्द्व दिखाया गया है। कहीं–कहीं गीता के निस्काम कर्म का भी प्रभाव परिलक्षित है–

'आओ हम अन्तः प्रतीत को धर्म बनाए

आओ हम निष्काम कर्म को वर्म बनाएं।[67]

वास्तव में 'रजत शिखर' में भौतिकवाद पर मानवीय मूल्यों की विजय दिखाई गई है। दूसरे शब्दों में विनाश पर सृजन की हिंसा पर अहिंसा की ओर अशान्ति पर शान्ति की विजय है। आंतरिक संघर्ष के साथ बाह्य संघर्ष भी दिखाया गया है। फिर भी संघर्ष में तीव्रता नहीं आने पाई। चरम विन्दु पर पहुंचने के पूर्व ही तनाव का अन्त हो गया है।

पंत जी ने लगभग सभी गीतिनाट्यों में काल्पनिक पात्रों का विधान किया है। ये पात्र स्वयं का अपना कोई व्यक्तित्व नहीं रखते। ये किसी न किसी विचार धारा में बधे हुए है। 'रजत शिखर' के पात्र भी ऐसे हैं। युवक अरविन्द दर्शन का व्याख्याता है, तो सुखव्रत फ़्रायड की विचारधारा का प्रतिनिधित्व करता है राजनीतिज्ञ वर्तमान राजनीतिनों का प्रतिनिध है। इस प्रकार सभी पात्र टाइप बनकर रह गये है।

प्रतीक–विधान की दृष्टि से 'रजत शिखर' अच्छा है। 'रजत शिखर' मनुष्य की अन्तरचेतना का शुभ्र प्रतीक है।[68] यद्यपि प्रतीक योजना का पूर्ण निर्वाह नहीं हुआ। बीच में विचारों की बोझिलता ने समस्त कथानक को डगमगा दिया है।

फूलों का देश—फूलो का देश पन्त जी का दूसरा गीतिनाट्य है। इसमें कवि ने वस्तुवाद और आदर्शवाद का व्यापक समन्वय किया है। कवि के शब्दों में—प्रस्तुत काव्य रूपक में इस युग के अध्यात्मवाद, भैतिकवाद तथा आदर्शवाद वस्तुवाद बाद सम्बन्धी संघर्ष को अभिव्यक्ति देकर उनमें व्यापक समन्वय स्थापित करने की चेष्टा की गई है एवं विश्व जीवन में वहिरन्तर सन्तुलन तथा परिपूर्णता लाने के लिए दोनों को ही उपयोगिता दिखाई गई है।[69] गीतिनाट्य के कथानक का प्रारम्भ देश गान से होता है। पुरुष और स्त्री स्वरों के माध्यम से कवि राष्ट्र की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कहता है—

"यह फूलों का देश, ज्योति मानस का रुपक
जहां विचरते अन्तर्द्वष्टा कलाकार कवि
यहां प्रेरणा की स्मति अप्सरियां उड़कर
बरसाती आभा पखड़िया रात रगों की।[70]

और—

यह मोहित अभिसार भूमि है गन्धर्वो की
जहां दूर वास्तविक जगत के कोलाहल से
स्वर्णिम आभा से रचती है सृजन कल्पना
सूक्ष्म विश्व मानव भावी का सतरंग कल्पित।[71]

इसी सुरभ्य मधुमय देश में एक कवि, एकाकी जीवन व्यतीत कर रहा है। संसार की करुणा मिश्रित चीत्कारें उसके भाव जगत को व्यग्र बना देती है। वह विनाश के महाध्वंस में नवल सृजन के गीत गाया करता है। वह कहता है कि यह देश कितना सुन्दर है। जहां अर्द्ध रात्रि को झिल्ली की झंकार गूंजती है नीड़ो में पक्षियों का कलरव चेतना पाता है और तरु पत्र सृष्टि के गान से सिहर उठते हैं। तरुण मधुप पंखुडियों का घूँघट हटाकर कलियों का चुम्बन करते है। आकाश में

इन्द्रधनुश को नभ से छीनकर धरा की वेणी में गूंथ देगा और जन भू के उप चेतन की विक्रतियों को अपनी सशक्त वाणी से दूर कर उसे उर्ध्व चेतन की ओ उन्मुख कर देगा।[72]

कुछ जन कवि की इस विचारधारा की हंसी उड़ाते हैं और कहते हैं। कि तुम कलाकार हो इसलिए हवा में महल बनाया करते हो। तो कवि उत्तर देता है कि तुम जो अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित होकर विजय वाहिनी लेकर चल रहे हो इस प्रकार से मेरे ही कार्य को कर रहे हो। जीवन की तृष्णा भुजंगिनी की भीषण पुकारों को मैं पी जाता हूं और उसके ऊपर चेतना का अमृत सिंचन करता हूं घृणा को प्रीति में बदल देता हूं। आगत पुरुष कहते है कि तुम तो मृग तृष्णा के पूरक हो और अपने को अनुज–नियति का विधाता समझ बैठे हो वासतविक निर्माता तो हम लोग हैं जिन्होंनें युगों की लौह स्रंखलाओं को तोड़ डाला है। जहां बनैले पशुओं का निवास है वहां पर हम अपने सैनिकों के शिविर बनायेंगे।

एक स्त्री स्वर के माध्यम से कवि वर्तमान समाज का यर्थाथवादी नग्न चित्रण करता है। स्त्री कहती है कि क्या कभी तुम्हारा हृदय वर्तमान समाज को देखकर विचलित नहीं होता। कवि कहता है कि मै सब कुछ देख रहा हूं और लज्जा से गड़ा जा रहा हूं–

"भूखों के कंकाल खेड़े चीत्कार कर रहे

अवचेतन के प्रेत भर रहि अट्टहास है।[73]

आज चारो ओर मिथ्या, विषमता, अतृप्त पिपाशा, तृष्णा, का ही बोल वाला है

भूखों द्वेष अन्याय कपट छल, र्स्पधा, हिंसा

आज पुकार रहे चिल्लाकार बाह्य संगठन।[74]

ये लोग मार्क्सवाद के समर्थक हैं, प्रगतिवाद के सर्मथक है। वे देश में क्रान्ति लाना चाहते है। 'हम युग विद्रोही है' कहकर वे जीवन का आदर्श व्यक्त

करते है। कवि को आश्चर्य है कि आखिर क्या कारण है कि जन विद्रोह दूर नहीं हुआ? शायद उपचेतन की विकृति का सम्बन्ध उस व्यवस्था से है जिसमें उस प्रकार की विकृतियां उत्पन्न हो जाती हैं। परन्तु व्यवस्था को बदलने के प्रयत्न से तटस्थ होकर उसका विरोध करने से उपचेतन की विकृति कैसे दूर होगी।

कवि वर्तमान वैज्ञानिक प्रगति का स्वागत करता है। विज्ञान के कारण आज मनुष्य के जीवन का रुपान्तर हो गया है किन्तु साथ ही मनुष्य वैज्ञानिक यन्त्रों का दास बन गया है। वह लक्ष्य भ्रष्ट हो गया है। यदि यन्त्रों की शक्ति आर्थिक समत्व में बट जाती, जीवन के उपायों का समुचित वितरण हो जाता स्वार्थ लोभ, अन्याय र्स्पधा संसार से उठ जाती तो संसार का कल्याण हो जाता । यदि मानव उर्ध्व चेता बन जाता तो यह दुख नहीं होता आज मानव की मानवता मर गई है। यन्त्रों ने मानव के हृदय को कुचल दिया है वैज्ञनिक चाहत है।–

"मनुज सदा अपने को अतिक्रम कर, अन्तर्मुख
आदर्शों के नित नूतन उर्ध्वग प्रकाश को
नवल वास्तविकताएँ बाँधेगा जीवन को।"[75]

अन्त में कवि ने आदर्शवाद, भौतिकवाद में समन्वय स्थापित किया है। वह वैज्ञानिक से कहता है–

"आओ हम दोनों वहिरन्तर के प्रतिनिधि मिल
अर्मत चेतना को इस फूलों के प्रदेश की
नव युग जीवन में परिणत कर, सत्य बनाए।[76]

गीतिनाट्य के कथानक में कोई तीव्रता नहीं है। कथानक में कोई तीव्रता नहीं है। कथानक में कोई संघर्ष भी नहीं है। फूलों का देश सांस्कृतिक चेतना का प्रतीक है। इसमें विचारों की स्पष्टता है और संकीर्ण मनोवृति पर भीषण प्रहार किये गये है। परन्तु इसके साथ ही बड़ चातुर्य से पंत जी अपने अध्यात्म के लबादे

में अपनी जनवादी विरोधी विचारधारा को छिपाकर उसे ही सच्चा जनवाद सिद्ध करना चाहते है,यह एक विचित्र द्वन्द है।[77]

कहीं–कहीं कवि ने उच्चकोटि की भावुकता का परिचय दिया है। प्राकृतिक दृश्य सर्वत्र कवि के मन को लुभाये रहते है एक दृश्य देखिये–

''गन्ध पवन में धरती भीनी सांस ले रही
जाग रही वन छायाएं अंगड़ाई भरती
तसण मधुप षंट, पद से हटा पंखुरियों के पट
अर्ध स्मिता कलियों के मृदु मुख चुम्वन करते।[78]

X X X

''यद्यपि अब भी लहरों की रूपहली पायले
बजती छम छम खेतों में हंस मुख हरियाली
सोना उगला करती है, नव मुग्धओं की
चल चितवन से स्वर्ग झांकता नव शिशुओं को
घेर स्वर्ग की परियां मडराती लुक छिपकर।''[79]

उत्तर शती (1980)–'उत्तरशती कल्पना प्रधान रूपक है, जिसमें कवि ने कल्पना की है कि बीसवी शती का उत्तार्रध मानव में नवीन आशा और उल्पास का संचार करेगा।

कवि का दृढ़ विश्वास है कि उत्तर शती मानव जगत में नवीन स्वर्ण युग का समारम्भ करेगी।[80] पंत जी ने स्वप्न सम्मोहन और संदेशों के माध्यम के माध्यम से काव्य श्रेयकर बना दिया है। उत्तर शती में भी आपने स्वप्नों का सृजन किया है। शिल्प की दृष्टि से 'उत्तर शती' रेडियो रूपक है, गीतिनाट्य नहीं इसमें सन् 1951 के अतिरिक्त और कोई पात्र नहीं जो सामने आता हो। कथा का विकास स्त्री और पुरुष स्वर के माध्यम से हुआ है। नरेशन के कारण उसमें नाटकीयता नहीं आने

पाई। सम्पूर्ण नाटक में लेखक स्वप्नवत सोचता रहा है। हां यदि स्त्री और पुरुष के रूप में प्रस्तुत किया जाय तो नाटक अभिनेय हो सकता है।

"युग मैत्री सद्भाव संधि स्थापित करने को
समुतलित मनः सुह्रदय अभ्युदय के गौरव से
उन्नत मष्तक, बन्धन मुक्त स्वतन्त्र आज वे
लोक क्रान्ति के लिए स्वतः भी जाग्रत उघत।"[81]

सन 1951 अपने को इसलिए भाग्यशाली मानता है कि सभ्यता आज अपने नवीन इतिहास का निर्माण कर रही है। लेकिन उसे इस बात का दुख भी है कि आज भय, शंसंय नैराश्य, विषाद, उपेक्षा, निन्दा, ईष्या, स्पर्धा अहंकारआदि से मानवता त्रस्त हो गई है। इनको दूर करने के लिए मानव के मध्य रागात्मक प्रेम जाग्रत करना होगा। यही बीसवी शती का संदेश है।

शुभ्र पुरुष (2 अक्टूबर 1950)–शुभ्र पुरुष रेडियो (रेडियो फीचर) है, जिसमें राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के जीवन पर प्रकाश डाला गया है।[82] इसकी रचना गाँधी जी के जन्म दिवस पर हुई है। लेखक के अनुसार "गांधी जी भारतीय चेतना के आधुनिकतम रजत संस्करण है।" यह रूप यह जन–गण–मन अधि नायक गांधी जी के राजनीति, सांस्कृतिक तथा अध्यात्मिक व्यक्तित्व के प्रति युग की विनम श्रद्धाजलि है।[83] इसमें कविने उर्ध्व संचरण में सहायक होने वाले तत्वों का विशेष उल्लेख किया है

"कोटिजनों के कंठ गान बन
कोटि मनो के मर्म प्राण बन
जन जीवन प्रांगण में लाये
तुम नव अरुणोदय है।"[84]

इसके पश्चात कवि उन परिस्थितियों का वणर्न करता है।, जिसमें गांधी जी

अवतरित हुए।

"स्वर्ग खण्ड यह हाय शम्भु सा समाधिस्थ हो

विचरण करता रहा कहां तक मध्य युगों में

आत्मा के सोपानों मे खो उर्ध्व उर्ध्वतर

आत्मोल्लास प्रमत जगत के प्रति विरक्ति हो।[85]

पृथ्वी पर हिंसा तान्डव रही थी।स्वार्थ लिप्सा, स्पर्धा, अनैकतिकता के युग में गाँधी जी ने सदाचार की रजत शिखा लेकर पदार्पण किया। जिन्हें पाकर– 'धन्य हुइ धरणी यह अवतरित हुए तुम।
जहां तक कथानक का प्रश्न है 'शुभ्र पुरुष में कोई कथानक नहीं है। आदि से अन्त तक स्त्री एवं पुरुष के माध्यम से कवि का चिन्तन ही दृष्टिगोचर होता है। कवि भारत की पराधीनता के दिनों पर विचार करता हुआ गांधी जी के चिरस्थायी प्रभाव का वर्णन करता है जो अन्त में श्रद्धाजंलि अर्पण करते हुए रूपक का अन्त कर देता है। "शुभ्र पुरुष' में कर्ठ कथानक नहीं है। आदि से अन्त तक स्त्री एवं पुरुष के स्वर के माध्यम से कवि का चिन्तन दृष्टिगोचर है। "शुभ्र पुरुष में अन्तर्द्धन्द्ध का भी अभाव है। किसी प्रकार का संघर्ष नहीं है न उच्चकोटि की भावुकता और काव्यात्मकता के ही दर्शन होते है। नाटकीयता की दृष्टि से भी उसमें कुछ भी उल्लेखनीय नहीं है।

विद्युत वासना (15 अगस्त 1950)–कालक्रम के अनुसार 'विद्युत वासना' पन्त जी का प्रथम गीतिनाट्य है। इसमें स्वतन्त्रता के मूल मंत्र पर प्रकाश डाला गया है। यह नव युग का सन्देश लेकर ज्योतिर्मय स्वतन्त्रता की अर्मत चेतना से जीवन के प्रांगण को अप्लावित कर देना चाहता है। विद्युत वासना में कथानक का अभाव है। न तो उसमें घटना कौतूहल है और न कथा क्रम। कवि यदि कथोपकथनों का सृजन न भी करता तो भी कोई अन्तर न आता। सम्पूर्ण रूपक

विचारात्मक है और कवि सिधान्तों और उपदेशों, सम्बोधनों और सन्देशों के आर्वत में ही फंसा रहा है।

"यह विद्युत वासना का रूपत है सांकेतिक

नव युग का स्नदेश भरा जिसमें ज्योतिमय।"[86]

इसके बाद युग की प्रवृतियों का वर्णन विविध स्वरों के माध्यम से किया गया है

"तुम उतरो नव आदर्शों के

शिखर पर किरणें बरसाओ

उतरो, उर्वर तलहटियों में

फिर ज्याति बीज नव बिखराओ।[87]

कवि कहता है। कि स्वाधीनता के आगमन से प्राचीन मान्यता और रुढ़ियाँ धराशायी हो रही है और नवीन क्रान्ति आ गई है। स्वतनत्रता अपनी शक्ति का परिचय देती हुई कहती है–

"मैं अग्नि बोती भास्वर

उपजाती लपटों की खेती

मैं महाप्रलय के पंखों की

छाया में सर्जन को सेती।[88]

कवि का मत है कि स्वधीनता ध्येय नहीं साधन माना है ध्येय है अन्तर निर्भरता तथा एकता। इस युग में जन स्वतन्त्रता की उपयोगिता लोकयोगिता तथा विश्व मानवता के निर्माण ही में चरितार्थ हो सकती है।"[89]

"जन स्वतन्त्रता नहीं, लौह संगठित जनों की

अन्तर निर्भरता ही युग का परम लक्ष्य है।"[90]

जहाँ कवि ने स्वतनत्रता की चेतना से सम्बन्वित कर लेता है स्वतनत्रता की

उपयोगिता लोक एकता एवं विश्व मानवता के निर्माण में ही सहायक हो सकती है ऐसी कवि की मान्यता है।इसी सिद्धान्त का प्रतिपादित होने के कारण प्रेमलता बाफना ने इसे सिद्धानत प्रधान रूपक कहा है।"[91]

शरद चेतना (1 सितम्बर 1951)—शरद चेतना' संग्रह का ऐसा रूपक है जिसमें विचारों की बोझिलता नहीं है। इसमें कवि ने किसी सिद्धान्त विशेष का भी प्रतिपादन नहीं किया, इसलिए यह विशुद्ध रूप से भावना प्रधान गीतिनाट्य है। कवि के अनुसार—'शरद चेतना' प्रकृति सौन्दर्य का कल्पना प्रधान रूपक है। इसमें धरती ऋतुऐं—हेमन्त, बसन्त शिशिर आदि आकाशवासिनी शरद ऋतु का अभिवादन करती है।[92]

सर्वप्रथम आकाश का गीत है जो शरद चेतना का अभिवादन करता है शरद चाँदनी पृथ्वी पर उतरी है। यह शरद चांदनी केवल भौतिक ज्योति नहीं अपितु स्वर्ग लोक की अमर चेतना है। अरविन्द के दोहरे सिद्धान्त के अनुसार—

"भौतिक ज्योति नहीं है केवल शरद चांदनी

आत्मलीन वह अमर चेतना स्वर्ग लोक की।"[93]

रजत शिखर—'रजत शिखर' संग्रह के समस्त रूपकों पर यदि एक साथ विचार करें तो इन समस्त रूपकों में मानव की अन्तर चेतना का विकास और उध्र्व का अवरोहण तथा समतल आदि आरोहण में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है।

दूसरे शब्दों में "सांस्कृतिक धरातल पर आध्यात्मवाद, भौतिकवाद तथा आर्दशवाद सम्बन्धी संघर्ष का चित्रण और उसमें समन्वय स्थापित करना है इन रूपकों की प्रमुख विशेषता है।

इनमें से दो रूपक 'उत्तरशती' और 'शुभ्र पुरुष' गीतिनाट्य न होकर टाइप हैं वे या तो किसी न किसी वर्ग का प्रतिनिहित्व करते है या किसी विचारधारा के

प्रतीक है। (1). विद्युत व्यवस्था (15 अगस्त 1950) (2). शुभ्र पुरुष (2 अक्टूबर 1950) (3). फूलों का देश (5 मार्च 1951) (4). रजत शिखर (25 जून 1951) और (1 सितम्बर 1951)

शिल्पी—शिल्पी में पंत जी के तीन गीतिनाट्य संकलित है।— 'शिल्पी, ध्वंस शेष और अपसरा'। ये अकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से प्रसारित हो चुके हैं।[94] शिल्पी में कलाकार के अन्त संघर्ष का चित्रण है।

कलाकार एक ऐसी अनुपम मूर्ति का निर्माण करना चहता है। जिसमें निखिल चेतन युग वैभव साकार हो उठे और जिसमें जन आकाक्षांए प्रतिविम्बित हो जायें। लेकिन बार—बार प्रयत्न करने के बाद भी वह इच्छित मूर्ति नहीं बना पाता। वह खीज उठता है। उसका अंह उसके मार्ग में बाधा उत्पन्न करता है। शिल्पी की शिष्या उसकी व्यग्रता को देखकर उसकी खीज का कारण जानना चाहता है।

कलाकार बताता है कि वास्तव में उसे अपनी कृतियों पर संतोष नहीं। मैं इस संक्रान्ति काल में मनुष्य की आत्मा का वास्तविक सत्य प्रस्तुत करना चाहता हूँ।

"नहीं जानता कैसे इस सक्रान्ति काल की
नित्य बदलती हुई वास्तविकता के पट में
मूत्रित करु चिरतंन सत्य मनुज की आत्म का।[95]

द्वितीय दृश्य का प्रारम्भ मुरलीधर की मूर्ति प्रतिष्ठा के साथ होता है। कुछ भक्तगण मुरलीधर की मूर्ति की प्रशंसा करते है। इसी समय छठा व्यक्ति मूर्ति पूजा के प्रश्न को लेकर वाद—विवाद उपस्थित कर देता है। वह कहता है कि

"लगता है प्रतिमा पूजन आर्दशों का
पूजन भर है, धर्म भीरु दुर्बल जन जिनको
उर से चिपकाए है, स्वर्ग नरक के भय से।"[96]

शिल्पी उन्हें बताता है कि कल सकेतों का सृजन करती है। यह तो मनुजों का कार्य है कि वे उसे यथार्थ बनाएं। सभी लोक शिल्पी की नृत्य प्रतिमा से चमक्रत हो जाते हैं। और वे कलाकर की महत्ता को स्वीकार कर लेते है। यह मार्क्सवाद वाद पर अरविंद वाद की विजय हैं।

''शिल्पी'' में अन्य गीतिनाट्यों की अपेक्षा कथा विन्यास भी स्पष्ट और संघठित है। जहां अन्य कृतियों में घटनाएं और प्रसंग कार्य कारण सम्बन्ध से आबद्ध नहीं वरन वहां 'शिल्पी' इससे मुक्त है। इसमें वस्तु विन्यास का सहज क्रम है। जहां रजत शिखर संग्रह के अधिकांश पात्र अशरीरी हैं, वहा शिल्पी के पात्र हमारे आपके बीच के पात्र है।

'शिल्पी'' के पात्र किसी न किसी विचारधारा का प्रतिनित्व करते हैं। शिल्पी अध्यात्मवाद का प्रतीक है जो जन नेता मार्क्सवाद का। किसी पात्र विशेष के चरित्र का विकास नहीं हुआ काव्यत्व की कसौटी पर ''शिल्पी'' खरा उतरता है। कहीं–कहीं मोहक और सुन्दर काव्य स्थल देखने को मिलते है बहिरंग की जटिल समस्याओं के ऊहाफोह में इन स्थलों ने अनन्य सौन्दर्य ला दिया है। उदाहरण के लिए दो स्थल देखिये

1– ''गुरु रवीन्द्र नव युग द्रष्टा, नव जीवन सृष्टा
अमर कल्पना खोल, रत्न छाया समित
सेतु बांध जी गए धरा मिला स्वर्ग से।
स्वप्न मुखर भावों की निःस्वर पहचानों से
झंकृत कर मानव आत्मा के नील मौन को।''

अथवा कृष्ण का यह चित्रण

2–''चरणों में बज उठी स्वर्णिम पायल निःस्वर
भुवन मोहनी है त्रिभंग मुप्रा त्रिलोक मय

ज्यों अरुप चेतना हो उठी मूर्तिमान हो

मोहन मुरी जिनके गोपन सकेतों पर

मुग्ध–प्रकृति सर्जन करती गति लय में निर्तित।

शिल्पी के संवाद भी सुन्दर है। इसमें न तो बड़े–बड़े आत्मसंलापारमक संवाद है और न तो कोई पात्र घंटो बोलता है। नाट्यतत्व की दृष्टि से 'शिल्पी' में रंग संकेत और मंचीय निर्देश दिये गये है।

ध्वंस शेष–''ध्वंस शेष 'शिल्पी' संग्रह का दूसरा नाटक है। यह चार दृश्यों में विभक्त है और इसमें प्रलयोपरान्त की ध्वंस सृष्टि का काव्यत्मक वर्णन है। इसके माध्यम से कवि ने वर्तमान युग की विषमताओं और विज्ञान जनित दुराशाओं को समाप्त कर लोकतांत्रिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की है। अन्य गीतिनाट्यों की भांति इसमें भी भौतिकवाद को दुख का मूल कारण मानकर आध्यात्मवादी सिद्धान्तों की प्रतिष्ठा की दृष्टि से 'ध्वंस शेष' सुन्दर नाटक है। धर्म राजनीति, दर्शन, वर्ग संघर्ष आदि के सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। 'ध्वंस शेष' का कथानक लम्बी कालावधि में फैला हुआ है। यद्यपि कथानक में गति नहीं है फिर भी वह क्षीण नहीं है। प्रथम दृश्य का प्रारम्भ राज घोषणा के साथ होता है। जिसमें विश्व युद्ध से आशंकित लोगों को निर्भय रहने का आदेश दिया जाता है। उसी समय एक बृद्ध प्रवेश करता है जो वर्तमान सभ्यता की चकाचौंध से चमत्कर होकर किंमर्तव्यविमूढ़ बना एक नवयुवती के घर में आश्रय लेता है। नवयुवती विंशशती की नई सभ्यता का प्रतीक है। वह युग का विश्लेषण करते हुए कहती है कि यह दुनिया आजायबघर है। जिसे आप चाहें तो गोदाम या कूड़ाखाना भी कह सकते है। आज मानव का कार्य क्षेत्र विस्तृत हो गया है। पृथ्वी पर प्रत्येक देश से उसका सर्म्पक है। यांत्रिक विकास अपनी चरम सीमा पर है।

आज का मानव अणुबम बनाकर शान्ति के पीछे पागल बन रहा है। बृद्ध

कहता है कि आज मानव भले ही कितनी ही शक्ति क्यों न अर्जित कर ले लेकिन वह जगत के प्रवाह को बदल नहीं सकता–

"उर्ध्वग समदिक संचरणों के बीच छिड़ा जो
आज धरा में भौतिक आध्यात्मिक विप्लववन
ध्वस्त हो रही जीर्ण मान्यांए जन मन की
बदल रहा है जग जीवन के प्रति दृष्टि कोण अब।"[97]

द्वितीय दृश्य में पंत जी ने प्रलय के प्रत्य अंकित किये हैं। मानव निर्मित अणु आयधों से पृथ्वी दहल जाती हैं

"अगणित भीषण व्रज कड़क उठते अम्बर में
लप–लप तणित शिखांए टूट रही धरती पर
महानाश किटकिटा रहा कटु लोह दन्त निज
विकट धूम्र वाष्पों के श्वासोच्छवाश छोड़कर।

X X X

धू–धू करता ताम्र व्योम धू–धू जलती भू
धू–धू जलती दिशा उबलता धू–धू–सागर।"[98]

प्रलय का विस्तृत वर्णन पंत जी ने प्रकृति और पुरुष के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

"सघर्षण चलता घोर मानव के उर में
यह विराट विस्फोट उसी का राम दूत है।"99

X X X

"जय हो नव मानव की
जय संस्कृत की।
जिसके पावन अम्रत स्पर्श से

ध्वंस शेष से।

धरा स्वर्ग नव निखर रहा

जन मनः क्षितिज में।[100]

चतुर्थ दृश्य में एक कल्पित पात्र दृष्टा के माध्यम से कवि ने नवयुग का वर्णन और आह्वान किया है। मानव तन्त्र की प्राण प्रतिष्ठा पर सब आश्वस्त और आह्लादित होते हैं।[101] भाषा शैली वैसी है जैसी कि पन्त जी के अन्य गीत नाट्य में है। जहां कवि अरविन्दवाद का वर्णन करता हैं। वहां भाषा दुरूह हो गयी है इस प्रकार अनेक उत्प्रेक्षाए 'ध्वस शेष' में भरी पड़ी है।

"फट–फट पड़ती ज्वालामुखिया विकट घोष कर

द्रवित रक्त मज्जा उड़ेलती धरा उदर में

हृदय क्षोभ ज्यों उगल उबारों में बमनों में

थूक रही हो नभ के मुख पर घोर घृणा से।

महा मृत्यु मुंह भयानक नरक कुहासा

निगल रही भू को, सांसों में खींच मसक सी।"[102]

अप्सरा–अप्सरा गीतनाट्य में अप्सरा का सम्मोहन चित्रित किया गया है। मन क्षितिज की द्वाभा चेतना में हृदय सरोवर के तट पर कलाकार ध्यान मग्न बैठा है। सामने भावनओं की स्वर्ण–श्रेणिया विचारों के रजत कुहासे को चीरकर बिखर रही है। इसी समय उसे अप्सरा का संगीत स्वर सुनाई देता है–छम छम डुम चलकल पायल। संगीत के सम्मोहन में कलाकार अपने को बंधा पाता है। वह समझा नहीं पाता की स्वर्ण लोक की कौन सी अप्सरा उसके भीतर समा गयी है। उसी समय अप्सरा का परिचयात्मक गीत सुनाई पड़ता है–

"मै शशि की रजत तरी पर चढ़

तारा पथ से आती जाती।

केवल न प्रकृति का ही आगन

मैं रंग दृष्टि में नहलाती।

मैं अन्तर जग को अपनी स्वप्निल

सुषमा में हूँ लिपटाती।''[103]

कलाकार निर्णय नहीं कर पाता इसमें सत्य और भ्रम का अन्तर कितना है। अप्सरा के सौन्दर्य जाल में कलाकार के ज्ञान दीपक बुझते से प्रतीक होते हैं। चेतना कलाकार के मन में नव चेतना का संचार करती है। नव चेतना की पुनर्स्थापना करने का का संकल्प कलाकार लेता है–

''गिरगिट से रंग बदलकर

युग परिवेशों को कर बिम्बत

ये शत प्रतिरोध खड़े करते

युग जीवन धारा के शिकार

निमग्न अवचेतन के पथ कटक

ये विद्रोही नर नहीं तुच्छ

मानव द्रोही युग के अंगार।[104]

चतुर्थ दृश्य में जन मंगल की कामना व्यक्त की गयी है। कलाकार वर्तमान स्थिति से असन्तोष प्रकट करता है। उसे लगता है जैसे प्राण चेतना अधोमुखी हो अवचेतन के तम में लिपटी रेग रही हो।''[105] जिसके कारण जीवन को शोभामण्डित करने वाली आकांक्षा आरोहण नहीं कर पाती अन्त में प्राण चेतना का गीत है। जिसमें मंगल उत्सव और प्रगति का अह्वान किया गया है।

''कौन पुकार रहा मुझको, अज्ञात देश से

या यह मेरे ही अन्तरतम की पुकार है।''[106]

यही पुकार सर्वत्र छायी हुई है। कवि ने कविता के माध्य से दार्शनिक

विचारों को कुशलता में प्रस्तुत किया है–

"ईस्यावस्य मिंद सर्व कहते दृष्टा ऋषि

उन निषादों के जयती में ओ कुछ अक्षय है

वह भगवत सत्ता है जग की निखिल वस्तुएं

ईश्वरमय है वही सत्य है सार रूप में

जगत भागवत जीवन भिन्न पदार्थ नहीं है

ईश्वर का ही अंश जगत आरोहण पथ पर।"[107]

सौवर्ण (1954)–पंत जी के काव्य रूपकों मे 'सौवर्ण' का विशेष महत्व पूर्ण स्थान है। 'रजत शिखर' और 'शिल्पी' की अपेक्षा 'सौवर्ण' का क्षेत्र अधिक व्यापक और चिन्तनधारा अधिक व्यापक है। इसमें कवि ने प्रतीक रूप में भावी मानव की कल्पना को प्रस्तुत किया है यहां कवि का लोक मंगलकारी रूप उभरकर सामने आया। 'सौवर्ण' का पात्र सौवर्ण आलौकिक है और उसमें आदर्श मानक के दर्शन होते है।

जै हिमाद्रि जये हे!

पवन सुर वारि नखर

उर में स्वर्णिम रख भर

भू रज रखते उर्वर

जड़ चित परिणय हे।"[108]

कवि का मन अपनी पावक जन्म स्थली का गुणगान करते हुए थकता नहीं। इन्हीं शैल शिखरों पर देवगणों का अवतरण होता है। देव–देवी हिमालय के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन करते हैं। नरेशन के माध्यम से कवि प्राचीन युग की विशेषताओं का वर्णन करता हुआ रुढ़वादी सभ्यता, उसके दोष तथा पश्चित–पूर्वी सभ्यता का पारम्परिक वैषम्य दिखाता हैं। देव कहते हैं कि नया सांस्कृतिक व्रत्त

उदित हो रहा हैं। स्वर्दूत और स्वर्दूती देवताओं को प्रतिक्रियावादी बताते हैं क्योंकि वे मनुष्यों को पलायन सिखलाते हैं। स्वर्दूत और स्वर्दूती पृथ्वी पर आते है जहाँ का मादक वातावरण देखकर वे नृत्य कर उठते हैं। इसी बीच कुछ नागरिक आकर वर्तमान के प्रति क्षोभ प्रकट करते हैं। वे कहते हैं कि धरा की चेतना शक्ति, क्रान्ति, विपल्व, युद्ध आन्तरिक संघर्स और आन्दलनों के फलस्वरूप त्रस्त हो उठी है। आज सांस्कृतियाँ ध्वस्त हो रही हैं, धर्म नीति और आचार ध्वस्त हो रहे हैं। मानव मन मृगमरीचिका के समान वहित्जगत के मरुस्थल में भाग रहा है, लेकिन उसे शान्ति नहीं मिलती। जगती वास्तविकता परिवर्तित होती जा रही है। नवीन मूल्य जन्म ले रहे हैं। नवीन प्रयोगों और अविष्कारों के कारण नव–चेतना आयी हैं। लेकिन दूसरी ओर दैन्य, निराशा क्षुधा तथा अपना सामराज्य फैला रहे है। लेकिन उन्हें ध्वस्त करने हेतु नवीन विचार धराएँ पनप रहीं है–

"आदर्शों के दीप्त लोक नव उदित हो रहे
जन संस्कृति का अरुणोदय, प्रासाद उठ रहा
सिन्धु ज्वार सामुक्त प्राण रवि शशि गृह चुम्बित
खोल दिगन्तों के वातायन स्वप्न मंजरित।"[109]

कवि जीवन के विविध पक्षों का वर्णन करता हैं। आज का मानव वादों और विचार धाराओं से धिरा हुआ हैं। युग के समक्ष दो प्रकार के दारुण संकट हैं। एक तो वह जो स्वर्ण की लालसा देकर मानव को भय, अन्याय और यातना सहने को प्रेरित करता हैं। दूसरे वे जो मानव को मात्र स्वप्न लोक में विचरण की प्रेरणा देते हैं। इन दोनों को ही हमे दूर करना है। हमें पलायन वादियों से लड़ना होगा, कायरता से बचना होगा। तभी वास्तविक सुख मिल सकता है। कवि को ग्रामों नवीन चेतना के दर्शन होते हैं। उसे विश्वास हो जाता है कि यहां असत् पर सत् की विजय हुई है और उपचेतन मन आलोकित हो उठता है–

"यहाँ असत् पर सत् तम पर असत् ज्योति की

तथा मृत्यु पर विजय हुई अमृत्व की महत।"[110]

और–

नव आशा आकांक्षा से मुखरित जन–मन अब

नव्य चेतना से दीप्त, आश्वस्त, उल्लसित

हृष्ट–पुष्ट तन शत कर पढ़ श्रम दान कर रहे

नव जीवन निर्माण हेतु जन–मंगल प्रेरित।"[111]

कवि औद्योगिक केन्द्रों पर भी विचार करता हैं कवि कहता है कि विश्व दो भागों में बटा हुआ है। पूँजीवादी और साम्यवादी विचारधारा को लोग आपस में संघर्ष करते रहते हैं। लेकिन शीघ्र ही सुख का प्रकाश फैलेगा। कवि का 'सौवर्ण' पूर्णतः कवि का आदर्श है। वह कहता है–

"मै हूं वह सौवर्ण लोक जीवन का प्रतिनिधि

नव मानव मैं जन–जीवन में गरिमा में मण्डित।"[112]

वह आगे कहता है–

"ध्यान मौन तुम शून्य अनीन्द्रिय नभ में खोये

मुझे खोजते जीवन से निष्क्रिय निरीह हो।

वहाँ नहीं मैं अतिवादों से दूर,, निरन्तर

जग जीवन में ही निविष्ट, अति से अतितम हूँ।

आत्म–ज्योति और भूत तमस से अंध उभय ही

एक समान मुझे है......ज्योति तमस से पर मैं।

स्वयं सत्य हूँ।........ ज्योति तमस जड़–चेतन मय

मन–जीवन मय, मुझमें जो वागर्थ से जुड़े।"[113]

'सौवर्ण' परम ब्रह्म की तरह कहता हैं कि मैं प्रकाश का प्रकाश हूँ अन्धकार

का अन्धकार हूँ, मैं ही अतत्व हूँ और मैं जीवन का शाश्वत रस हूँ। मैं नव युग मैं जन–मानस का प्रतीक हूँ, मैं ही भावी चेतन्य, नव–संस्कृति का सारथी हूँ। वह कहता है–

"अब न कला के स्वप्न निकुंजो में पल सकते
अगणित वक्षों में अब स्पंदित नई चेतना
नव जीवन सौन्दर्य उग रहा जन धरणी में
मनुष्यत्व की फसल उगलती हँसती भू रज
नव मूल्यों की स्वर्णिम मंजरियों से भूषित।"[114]

यही 'सौवर्ण' का सन्देश हैं।

कवि आशा के स्वप्निल पंख बाँध मानव को नव–जीवन का सन्देश देता है। वह कहता है कि पृथ्वी पर एक नवीन स्वर्ण पृष्ठ खुल रहा है। और नव प्रभात स्वर्गदूत हँसता हुआ उतर रहा हैं। कवि कल्पना लोक में विचरता हुआ कहता है–

"दैन्य दुःख मिट गये, छँट गये धूमिल पर्वत
घृणा द्वेष स्पर्धा के भय संशय उत्पीड़न के
जन शोषण, अन्याय, अनय से मुक्त धरा पर
एक छत्र अब शान्ति, साम्य स्वातत्र्य प्रतिष्ठिता।"

वास्तव में 'सौवर्ण' कल्पना लोक का गीत नाट्य है। इसमें कवि ने प्रतीकात्मक रूप में भावी मानव की कल्पना को प्रस्तुत किया है।

"हिमालय के रूप में उसने मानव जाति के विगत सांस्कृतिक संचय का दिग्दर्शन कराया है, जिसमें विकास अपेक्षित है। आध्यात्म के प्रति मध्य युगीन नैतिक दृष्टि कोण से मन को मुक्त करके सौवर्ण में क्रियात्मक आध्यात्म को व्यक्तित्व दिया हैं और उसमें मनुष्य को नैतिक तथा भौतिक प्रवृत्तियों का समन्वय कर मानव हृदय को जीवन की रचना के प्रेम की ओर उन्मुख किया है।"[115]

नेरेशन का प्रयोग होने के कारण संघर्ष का आभाव है कहीं–कहीं देव–देवी और स्वर्दूत– स्वर्दूती के हृदय में अन्तद्वन्द्व के दर्शन होते हैं। अन्यथा संघर्ष की कमी ही हैं।

पात्र एवं चरित्रांकन की दृष्टि से 'सौवर्ण' के किसी पात्र विशेष का विकास नहीं हुआ। वे तो मात्र सहायक है। कवि के विचारों और चेतना को प्रकट करने के। सौवर्ण का आगमन गमन और सम्भाषण सभी अनौखे और सुन्दर हैं। धरा गर्भ से प्रकट धरा में समा गया' कहकर कवि इसी बात की पुष्टि करता है।

'सौवर्ण' के कथोपकथन भी उनके अन्य नाटकों के समान हैं। उनमें भी विचारों की बोझिलता होने के कारण न तो नाटकीयता हैं न क्षिप्रता। फिर भी 'रजत शिखर' और 'शिल्पी' संग्रह के नाटकों जैसे लम्बे–लम्बे और उबा देन वाले कथोपकथन 'सौवर्ण' में नहीं हैं। कहीं–कहीं सुरुचि पूर्ण संवाद हैं।

'सौवर्ण' में कवि की कल्पना और बुद्धि उन्मुक्त विहार कर जीवन के अनेक क्षेत्रों में विचरण करती रही है। अतः कथावस्तु किसी एक काल, देश और क्षेत्र में बाधकर नहीं चलती। स्वर्दूत विभिन्न स्थानों पर घूमते हैं और वर्णन करते हैं। क्षेत्र का यह विस्तारण चिन्ताधारा की दृष्टि से विकास का द्योतक है परन्तु नाट्य कला की दृष्टि से विशेष शुभ नहीं हैं।

कवि का कवित्व नाटकीय तत्वों पर हावी है। कहीं–कहीं सुन्दर कल्पना और भावुकता के दर्शन होते हैं–हिमालय के वर्णन में कवि तन्मय हो जाता है वह कह उठता है–

"शुक्ल पक्षः नवमी के शशि का सौभ्य पार्श्व मुख
जौन मधुरिमा, अभिजात्य गरिमा में मण्डित
नीरव सम्मोहन बरसाता अन्तरक्षि से
अन्धकार के निखिल जगत का केन्द बिन्दु बन।"[116]

प्रकृति का एक मनोहारी वर्ण देखिये–

"बिखर शिखर पर जाती जीवन स्वर्णिम किरणें

मरु की सनी कम्पती निर्जल छायाओं सी,

हंसती वहाँ न प्राणों की मर्मर हरियाली

लोट रूपली लहरों में धरती की रज पर

प्रणय गीत गीती न मधुकरी मधु अधरों से

मुकुलों का मुख चूम, झूम गुंजित पंखो में

कूक न पाती पिकी मंजरित डालों पर उड़

सृजन प्रेरणा शून्य, अमूर्त विदेह लोक में।"[117]

कहीं–कहीं कवि पर अरविन्द दर्शन का प्रभाव पड़ा है। अधिमानस का चित्रण अरविन्द दर्शन का ही एक अंग हैं–

"अधिमानस का शैल खड़ा जाज्वल्य स्वप्न स्मित

यशः काम चैतन्य का अजर अन्तर्मन का

सार तत्वः मानव संस्कृति का अमर दाय धन।"[118]

इसी प्रकार अन्तर्मानस का स्मित अधित्यका का चित्रण भी अरविन्द दर्शन से प्रभावित है। इसी दृष्टी के माध्यम से कवि प्रगतिवाद का चित्रण करता है। वास्तव कें कवि किसी एक विचारधारा में बँधकर नहीं चला। उसका चरम लक्ष्य तो आध्यात्म की स्थापना करना हैं। लगभग सभी नाटकों में कवि ने आध्यात्म की प्रतिष्ठा की है। इस प्रकार इसमें कवि का दार्शनिक सशक्त लोक मंगलकारी रूप उभर कर आया है।

स्वप्न और सप्य (1952)–'सौवर्ण' संग्रह का दूसरा रूपक स्वप्न और सत्य है। इसमें लेखक ने आदर्श और यथार्थ अर्थात सत्य और कल्पना के मध्य संघर्ष का अंकन किया है। वर्तमान युग में कल्पना और वास्तविकता के मध्य द्वन्द्व

छिड़ा हुआ हैं। मध्य युग के नैतिक आदर्शों तथा वर्तमान युग के भौतिक आदर्शों दोनों का तिरस्कार कर लेखक ने यह संकेत दिया है कि आज के मानव को अधिक व्यापक तथा गम्भीर सत्य दृष्टि की आवश्यकता हैं। सम्पूर्ण नाटक आदि से अन्त तक पारस्परिक अन्तर्द्वन्द्वों का चित्रण करता है। वास्तव मे इसमें संघर्ष अधिक और आदर्श कम हैं। परम्परा से हटकर पन्त जी ने प्रथम बार आदर्श और आध्यात्म से पल्ला छुड़ाकर वास्तविक व्यापक दृष्टि को स्वीकारा है।

कथानक का प्रारम्भ प्राकृतिक सुषमा के चित्रण से हो जाता है। एक तरुण कलाकार पतझर का रेखा चित्र बनाने में व्यस्त है। वह "मर्मर भरी बनाती" गीत गाता हुआ प्रकृति के सौन्दर्य पर मुग्ध हो रहा है। इसी बीच उसके दो मित्र प्रवेश करते है। इन दोंनो में कला के उद्देश्य को लेकर विवाद छिड़ जाता है। पहला मित्र स्वप्न और कल्पना को छोड़कर यथार्थ की भूमि पर आने का आह्वान करता है। वह कहता है कि अब प्राकृतिक सुषमा का अवलोकन करने का समय नहीं है। आज मानव प्रकृति का दास नहीं है अपितु प्रकृति स्वंय ही मनुज के इशारों पर नृत्य किया करती है–

"आज प्रकृति नियमों से नहीं, मनुजा इंगित से
संचालित हो रही नियति मानव समान की।"119

दूसरा व्यक्ति प्रकृति प्रेमी है। वह कलाकार की कला की प्रशंसा करता है। कलाकार कहता है कि मैं न तो विद्वान हूँ और न तार्किक हूँ। मुझे तो मन और आँखों को जो सुन्दर लगता है उसी का पुजारी हूँ। यह मेरी विवशता है। क्योंकि–

"मन तो मेरे हाथ नहीं है तर्क बुद्धि से
न चल सकूँगा मुझे भावना ही प्रिय है।"[120]

प्रथम मित्र मानव को प्रकृति से सुन्दर बताता है। कि मानव पुष्प और पशुओं से अधिक विकसित और बुद्धिमान हैं–

"मानव जगत कहीं सुन्दर है प्रकृति जगत से

क्योंकि अधिक विकसित है, वह पुष्पों पशुओं से।"[121]

उसका विचार है कि हमे संसार के वास्तविक सत्य से आँख नहीं मूँद लेनी चाहिये। कलाकार इन दोंनो मित्रो के इस नीरस वार्तालाप को सुनकर ऊब जाता हैं और आह भर कर सोने चला जाता हैं। यहीं से कलाकार के स्वप्न का प्रारम्भ होता हैं। अर्द्ध जाग्रतावस्था में अनेक प्राचीन महाकवियों और महापुरुषों से उसका मनसा–साक्षातकार होता है। स्वर्ग के अलौकिक सौन्दर्य को देखकर कलाकार का मन सहज मोहित हो जाता है। वह महापुरुषों की छायाओं से अनुरोध करता हैं कि–

"मेरा भी भू पन्त प्रकाशित करें कृपा कर।"

छायाएँ क्रमशः उपदेश देती हैं। एक कहती है–

"पुण्प कर्म रत रहो पाप का पथ मत रोको"

X X X

प्रेम क्षमा शत्रु को करो, तुम्हें प्रभु क्षमा करेगें

प्रेम क्षमा, जन दया,, विनय सोपान स्वर्ग के।"[122]

दूसरी छाया जो बुद्धि की छाया है का उपदेश है कि–

"जन मंगल का मार्ग गहे, मध्यमा प्रतिपदा"

X X X

"तृष्णा दु:ख का कारण उसका पूर्ण त्याग कर

ग्रहण करें जन–गण सेवा पथ, जीव दया रत।"123

इसे बाद कलाकार की आत्माा गांधीजी की आत्मा तक विभिन्न आत्माओं से बात करती है। वह तुलसी, सूर, कवीर, मीरा और विश्व कवि रवीन्द्र की आत्माओं से भी साक्षात्कार करता हैं। इसमें स्वर्ग लोक के अनेक सूक्ष्म स्तरों का

आभास वर्णित है।

इसके बाद 'स्वप्न और सत्य' के द्वितीय दृश्य का चित्रण हैं। इसमें जीवन की समस्त कुत्सा, विडम्बना, अमानुषिकता और घृणा का वर्णन है। कलाकार किंमर्तव्यविमूढ़ हो जाता हैं। यह ऐसा देश है जहां के लोग–

"हटी कुटिल–मत, भेदभाव से भरे विषैले
पर–द्रोही, प्रतिशोध–क्षुधि, निर्बल के पीड़क
कलह विषाद विनोदी, घोर विषमता प्रेमी
निरुद्यमी, निःसत्व निरुत्साही निराश मन
रोग शोक दारिद्रय दैन्य के जीवित पंजर
निखिल क्षुद्रताओं के जीवन–मृत प्रतीक से।"[124]

इस दुःस्वप्न के बाद पुनः लोक जागरण की माया अंकित है। इसमें लेखक ने जागरण का उत्सव गीत और कलाकार के द्वारा आदर्श जन–समाज की सुखद कल्पना व्यक्त की हैं। इसी बीच पुनः रण का कोलाहल, शोषण, उत्पीड़न से कलाकार क्षुब्ध हो उठता हैं। वह अंधकार घना अन्धकार है, कह कर व्याकुल हो उठता हैं। उसी क्षण उसके मन में उल्लास के भाव जाग्रत होते है।

उसे नव जीवन अरुणोदय का भाष होता है। इसी आशा और उल्लास में गीतिनाट्य का पर्यवसन हो जाता है। इस प्रकार कवि ने द्विविध स्थिति का सुन्दर चित्रण किया है।

'स्वप्न और सत्य' में चरित्रांकन पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। एक कलाकर की मनःस्थिति के परिणाम स्वरूप जिस परिस्थिति का निर्माण हुआ है, उसे लेखन ने सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। कलाकार का साक्षात्कार महान आत्मओं और कवियों से होता हैं और उसी की प्रेरणा से वह अपने मार्ग को प्रशस्त करता है।

काव्यत्व और नाटकीयता में काव्यत्व की ही प्रधनता है। हाँ–इस गीतिनाट्य में लम्बे–लम्बे आत्म कथन नहीं हैं। इसलिए नाट्यत्व गुण भी आ गये हैं। रंग संकेतों का भी सुन्दर चित्रण हुआ है। अंगडई लेता है 6तख्त पर सो जाता है' जैसे सूक्ष्म निर्देश भी है और रेडियों पर संगति बिठाने के लिये स्वर निर्देश भी बहुलता से दिये गये हैं।

भाषा में दुरुहता नहीं है। इसका प्रमुख कारण ये है कि इसमें विचारों की बोझिलता नहीं है और दार्शनिक प्रवचनों का 'स्वप्न और सत्य' में आभाव है। कहीं–कहीं सुन्दर गीतों के माध्यम से भावात्मक वाताकरण की सृष्टि की गई है। प्राकृतिक सुषमा के चित्रण में कवि अत्यन्त भावुक हो उठा है। वास्तव में प्रकृति कवि की ऐसी प्रेरणा है कि उसका स्थल आते ही वह गद्–गद् हो जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1– प्रसाद ने लिखा है कि गीतिनाट्य हमारे देश में प्राचीन काल से ही चले आ रहे हैं। अभिनय गुप्त ने जिन राघव विजय' और मारीच वध' नामक राग्य काव्यों का उल्लेख किया है वे 'ठक्क' और 'कुकुम राग में कदाचित अभिनय के साथ वाद्य ताल के अनुसार गाये जाते थे। यही प्राचीन राम काव्य आज की भाषा में में गीतिनाट्य कहे जाते हैं– काव्य कला तथा अन्य निबन्धा प्र.92–93

2– 'करुणालय–– सूचना।

3– करुणालय, पृ0. 4–5

4– करुणालय, पृ0. 2

5– करुणालय पृ0. 7

6–करुणालय, पृ0. 7

7–करुणालय, पृ0. 5

8–देखिए सरस्वती जनवरी 1919 प्र. 22 तथा मार्च 1919 पृ0.126

9– लीला मैथलीशरण गुप्त साहित्य सदन चिरगांव झांसी प्र. सं. 2018 पृ0.35

10– वही, पृ. 37

11– वही, पृ. 39

12– अमाकान्तः गुन्प्त जी की काव्य साधना नेशनल पब्लिशिंग हाउस प्रि. सं. 1961 पृ0. 207

13– उमाकान्त मैथीशरण गुप्त व्यक्तित्व और काव्य पृ. 193

14– वही पृ0. 193।

15– दशरथ ओझाः हिन्दी नाटक उद्‌भव और विकास पृ. 435

16– अनध, साहित्य चिरगांव झांसी प्र. सं. 2007,पृ. 56

17– उमाकान्तः गुप्त जी की काव्य साधना पृ. 205

18– बच्चन सिह हिन्दी नाटक पृ. 17

19– देखिए– सुधा, नवम्बर 1931 प्र. 448 गुप्त जी का 'विद्यार्थी' जी सम्बन्धी लेख

20– अनध पृ. 16–17

21– वही पृ. 32

22– निर्मला जैनः अधुनिक हिन्दी काव्य में रूप विधाएं पृ. 336

23– देखिये अनध, पृ. 104 से 108

24– अनध पृष्ठ 14।

25– प्रतीक–1 ग्रीष्म 1947 पृ. 6

26– वही पृ0. 8

27– वही पृ0. 7

28– प्रतीक–1 पृ0. 9

29– प्रभा अप्रैल 1921, पृ0. 217

30– प्रभा, अप्रैल 1921 पृ0. 218

31– वही, पृ0. 191

32– वही, पृष्ठ 220

33– उन्मुक्त सियाराम शरण गुप्त साहित्य सदन झासी प्र. स. 1997 वि. पृ. 4

34– पृ 23

35– देखिए उन्मुक्त पृ. 56 57 58

36– वही पृ. 51 52

37– वही, पृ. 42

38– देखिए सियाराम शरण गुप्त, सं. नगेन्द्र गौतम बुक डिपो दिल्ली प्र. सं. 1950 पृ0. 18

39– उन्मुक्त पृ0. 158

40– वही 144

41– उन्मुक्त पृ. 42

42– वही, पृ. 90

43– देखिये– हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास, एकादश भाग, नागरी प्रचारिणी सभा काशी पृ0. 270 और 307

44– झांकी आनन्दी प्रसाद श्रीवास्तव गांधी पुस्तक भण्डार, प्रयाग प्रथमावृति 1925 पृ. 19

45– झांकी पृ. 33

46– झांकी पृ. 35

47– देखिये परिमल, पंचवटी प्रंसग पृ. 215

48– परिमल, पृष्ठ 209–210

49– वही, पृ. 213

50– परिमल, पृष्ठ 228

51– प्रबन्ध प्रतिभा निराला, पृष्ठ 49

52– देखिये–सरस्वती–1 दिसम्बर 1927, जनवरी 1928 तथा मार्च 1928

53– रेणुका, मंगला प्रसाद विश्वकर्मा साहित्य सदन, चिरगांव झांसी प्रथमावृत्ति 1930 पृ. 26

54– वही, पृष्ठ 124

55– स्नेह या स्वर्ग, सेठ गोविन्द दास, किताब महल इलाहाबाद प्र. स. 1946 पृ. 34

56– स्नेह या स्वर्ग सोठ गोविन्द दास, किताब महल इलाहाबाद प्र. सं. 1946

57– वही पृ0 7

58– वही पृ0 35

59– स्नेह या स्वर्ग पृ. 45

60– रजत शिखरः सुमित्रा नन्दन पंत, भारतीय भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद

61– वही, पृ. 10

62– वही, शिखर, पृ. 16

63– रजत शिखर, पृ. 28

64– वही, पृ. 9

65– रजत शिखर पृ. 10

66– विश्वम्भरनाथ उपाध्यायः पन्त जी का नूतन काव्य और दर्शन साहित्य रत्न भण्डार, आगरा प्र. स. 1956

प्र. 746

67– रजत शिखर, पृ. 41

68– रजत शिखर, विज्ञप्ति, पृ. 3

69–वही, पृ. 47

70–वही, पृ. 49

71–वही, पृ. 50

72–देखिये– रजत शिखर पृ. 55–56

73– वही, पृ. 63

74–वही, पृ. 63

75– रजत शिखर पृ. 73

76– वही

77– विशम्थर नाथ उपाध्याय पन्त जी का नूतन काव्य और दर्शन पृ. 748

78– वही, पृ. 72

79– वही पृ. 72

80– रजत शिखर पृ. 87

81– वही पृष्ठ 85

82– रजत शिखर पृष्ठ 101

83– वही पृ. 105

84– रजत शिखर, पृ. 108

85– वही पृष्ठ 113

86– रजत शिखर, पृष्ठ 123

87– वही पृष्ठ 126

88– रजत शिखर, पृष्ठ 130

89– वही पृ. 121

90– वही पृष्ठ 132

91– प्रेमलता वाफनाः पन्त का काव्य, साहित्य सदन देहरादून, पृष्ठ सं. 1969

92– रजत शिखर, पृ. 133

93– वही पृ. 134

94– शिल्पीः सुमित्रानन्दन पंत राजकमल दिल्ली प्र. स. 1952 विज्ञापन

95– वही पृष्ठ 17

96– वही पृ. 31

97– शिल्पी, पृ. 551

98– वही पृष्ठ 58–59

99– वही प्र. 63

100– शिल्पी, प्र. 79

101– निर्मला जैनः आधुनिक हिन्दी काव्य की रूप विधाएं पृ. 354

102– शिल्पी पृष्ठ 66

103– शिल्पी पृष्ठ 96

104– वही पृष्ठ 100

105– देखिये– शिल्पी पृ. 110

106– वही पृ. 90

107– वही 105

108– सौवर्ण सुमित्रानन्दन पन्त, भारतीय ज्ञान पीठ काशी, शि. सं. 1963, पृ. 15

109– सौवर्ण, पृ. 28

110– वही, पृ. 38

111– वही, पृ. 40

112– वही पृ. 58

113– वही, पृ. 60

114– सौवर्ण, पृ. 63

115– मुख पृष्ठ पर प्रकाशकीय विचार

116– सौवर्ण, 16

117– वही पृ. 51–52

118– वही, पृ. 18

119– सौवर्ण पृ. 79

120– वही, पृ. 80

121– सौवर्ण, पृ. 80

122– वही पृ. 90–91

123– वही, पृ. 91–92

124– सौवर्ण, पृ. 106

चतुर्थ अध्याय

चतुर्थ अध्याय

समकालीन हिन्दी गीति–नाट्य गवेणात्मक परिशीलन

(अ) समकालीन प्रमुख हिन्दी गीतिनाट्यकार

आधुनिक युग के प्रारम्भ होते ही हिन्दी नाटकों में भी वैज्ञानिक तथा तर्क के धरातल पर परिवेशगत यथार्थ को प्रस्तुत करने की चेष्टा दृष्टिगोचर होती है। पौराणिक वस्तुविधान का भी पुनराख्यान किया गया, किन्तु इन नाटकों के परिपार्श्व परिवेशगत यथार्थ के कारण और समाधान सहित प्रस्तुत करने में प्रति आ ग्रही हैं। ऊपर द्विवेदी युगीन तथा छायावाद युगीन गीतिनाट्यों की गवेषणापरक पड़ताल की जा चुकी है। अब साम्प्रतिक सन्दर्भ को आत्म सात किए समकालीन गीतिनाट्य कारों का परिचय इस प्रकार है–

1– धर्मवीर भारती 'अंधा युग'– ''धर्म युग'' के अद्युना सम्पादक धर्म वीर भारती ने गीतिनाट्य के क्षेत्र में स्तुत्य सफलता प्राप्त की। उनका 'अंधा युग' हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। 'अंधा युग' से पूर्व से के गीतिनाट्य या तो एकांकी ये अथवा उनमें वह व्यापकता नही आने पाई थी जो गीत नाट्यों के लिये अपेक्षित होती है। 'अंधायुग प्रथम एंसा गीतिनाट्य है जो गीतिनाट्य की कसौटी पर पूर्णतः खरा उतरता है।

अंधा युग में महाभारत के अठारहवें दिन की संध्या से लेकर प्रयास तीर्थ में कृष्ण की मृत्यु के क्षण तक की प्रख्यात कथा अंकित की गई है, किन्तु कुछ प्रसंग उत्पाद्य भी हैं। लेखक ने स्वकल्पित पात्र एवं घटनाओं का भी वर्णन किया है। प्रख्यात कथा के संयोजन में जहां एक ओर महाभारत का आश्रय लिया गया है, वही विष्णु पुराण से भी सहायता ली गई है। इस पर इलियट की 'बेस्टलैण्ड' कविता का भी प्रभाव पड़ा है। 'वेस्टलैण्ड' में महा युद्धोत्तर योरोप की ध्वंस युगीन निराशा और विध्वंस को प्रतीकात्मक पद्धित पर चित्रित किया गया है। जिस प्रकार

'वेस्टलैण्ड' का टाइरेशियम अंधा है उसी प्रकार अंधा युग के धृतराष्ट्र। यहां 'वेस्टलैण्ड' के आर्प दृष्टा का काम व्यास करते हैं। इसमें जिस प्रकार अंध आस्थाहीन मानव संस्कृति की आलोचना की गई है, उसी प्रकार अंधा युग में भी।[1]

वेस्टलैण्ड में जिस प्रकार व्यंग विश्वास वर्णित हैं, उसी प्रकार अंधा युग में भी है। हाँ अंधायुग में भारती आस्थावादी हैं इलियट नहीं। मानव समाज का विद्रूप चित्रण यथार्थ वादी लेखकों के अतिनिकट है। यथार्थवादी लेखकों ने असुन्दर तथा कुण्ठ, मनोदौर्बल्य और आत्महन्तामयी निराशा का खुलकर चित्रण किया है। सात्रे के 'लमोचे' नाम नाटक में इसी प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। ' अंधायुग ' में सात्रे के अस्तित्ववाद की स्पष्ट झलक दिखाई देती है। जिस प्रकार सात्रें ने रक्त–रंजित दीवालों और शोकपूर्ण नारियों का चित्रण किया है,, उसी प्रकार अंधायुग में भी जघन्यता का वर्णन है।[2]

विषय–अंधायुग की कथा वस्तु उस मर्यादाहीन युग से सम्बनिधत है, जिसमें कुण्ठा निराश, विकृति, कुरुपता और अंधापन अपने पूर्ण अंगों के साथ अवतरित हुए थे। भारती जी का प्रधान उद्देश्य इसी विकृति का चित्रण करता रहा है। वे लिखते हैं–

युद्धोपरांत–यह अंधायुग अवतरित हुआ जिसमें स्थितियाँ, मनोवृत्तियाँ आत्माएं सब विकृत हैं। है एक बहुत पतली डोरी मर्यादा की पर वह भी उल्झी है, दोनो ही पक्षों में (सिर्फ कृष्ण में है साहस सुलझाने का) वह है। भविष्य का रक्षक, वह हैं अनासक्त शेष अधिकतर है– अन्धे पथ भ्रष्ट, आत्महारा, विगलित अपने ही अन्तर ही अन्ध गुफाओं के वासी यह कथा ज्योति की अंधो के माध्यम से।[3]

लेखक ने ऐतिहासिक तथ्यों, कल्पना जीवन–दर्शन और चिन्तन को अपने ढंग से संजोया, सम्भाला है। महाभारत कालीन दयनीय स्थिति के अतिरिक्त युद्ध के भीषण समस्याओं को भी उठाया है। इसमें, युद्ध के कारणों पर प्रकाश नहीं

डाला गया। क्योकि यह कथा युद्धोपरान्त की है। अतः युद्ध के परिणामों और तज्जनित स्थितियों वृत्तियों और प्रतिक्रियाओं का यथार्थ चित्रण हुआ है। नन्द दुलारे बाजपेयी के विचार से कवि की विचारधारा वास्तविकता और सत्य से परे हैं। उसे सच्चाई और औचित्य कही नजर नहीं आता कवि का दृष्टिकोण सर्वत्र निषेधात्मक है।[4]

युद्ध के परिणामों पर प्रकाश डालते हुए लेखक ने वर्तमान आणविक आयुधों की भीषणता को प्रदिर्शत किया है–

"ज्ञात है तुम्हें परिणाम इस ब्रह्मस्त्र का

यदि यह लक्ष्य सिद्ध हुआ ओ नर पशु

तो आगे आने वाली सदियों तक

पृथ्वी पर रसमय वनस्पति नहीं होगी

शिशु होंगे पैदा विकलांग और कुष्ट ग्रस्त

सारी मनुष्य जाति बौनी हो जायेगी।[5]

युद्ध जनित क्रन्दन, हा हा कार चीख पुकार, विकृति आदि का वर्णन व्यापक रूप से किया गया है। युद्ध के पूर्व जो कौरव नगरी अपने सौन्दर्य और गौरव के लिये प्रसिद्ध थी जहाँ राग और रस अनवरण अपना आंचल फैलाये–नर नारियों को तृष्णा की भूमि से तृप्ति के स्वर्ग की ओर ले जाते थे, वहां युद्धा परान्त गिद्ध भँडरा रहे हैं। सम्राटों का अधिपति दुर्योधन असहाय सा निराश्रित सा विचर रहा है। पैर फट गये हैं, रक्त प्रवाहित हो रहा है।[6]

और दो खूँखार गिद्ध उसको खाने के लिए लोलुप दृष्टि से देख रहे हैं, भेड़िये जी लपलपा कर घूम रहे हैं–

" कोटर से झांक रहे थे

दो खूँखार गिद्ध

इस झाड़ी से उसी झाड़ी में थे

घूम रहे

गीदड़ और भेड़िये

जीभें निकाले

लोलुप नेत्रों से देखते हुए अपलक

राजा दुर्योधन को।[7]

वीरता और शैर्य के प्रतीक दुर्योधन को खाजाने के लिये गीदड़ और भेड़िया देखे इससे बड़ी बिडम्बना और दुःख की क्या बात हो सकती है।

'अंधायुग की समस्या युद्ध की समस्या है। उसमें जो कुछ सुन्दर और शुभ था वह नष्ट हो गया। यदि कुछ शेष था तो सन्नाटा सूनापन, उदासी। कौरव नगरी के जिन रत्न जटित फर्शो पर कौरव बधुएं मंथर गति से चलती थी, वे अब निस्सहाय विधवा होकर निराशा का जीवन व्यतीत कर रही हैं।[8]

कौसों तक मैदान सड़ी–गली लाशों से पट गया। जिधर देखो धूँआ, लपट, लोथे, घायल घोड़े टूटेरथ रक्त भेद, मज्जा, मुण्ड ही दिखाई देते ये–

"धुआ,, लपट, लोथें, घायल घोड़े, टूटे रथ

रक्त, भेद, मज्जा, मुंड

खण्डित कवन्धों में

टूटी पसलियों में

विचरणकरता था अश्वत्थामा।[9]

सारी मानवता भूखी नंगी हो गई है। आत्मघाती नपुंसक, ह्रासोन्मुख प्रवृत्ति उभरकर सामने आई है और संस्कृति नष्ट हो गई है। कवि ने युद्ध की भयानकता को बढ़ाने के लिये भयानक वातावरण की सृष्टि है। दुर्योधन के पतन के बाद मडराते हुए गिद्धो का निकलना ऐसा लगता हैं जैसे मौत ऊपर से निकल गई हो।

न जाने वे किसकी लोथों पर जाकर उतरेगे–

"जाने किसी लाशों पर जा उतरेगा

वह नर भक्षी गिद्धों का भूखा बादल।[10]

युद्ध के पश्चात के वातावरण का भयानक वर्णन प्रहरियों ने अनेक कपोल कल्पित कथाओं क रूप में किया हैं, जैसे कंकड़ पत्थर की वर्षा सूरज में मुण्डहीन काले कबन्धों का हिलना, द्वारिका में आधी रात को काला पीला शेष धारण किये काल का घूमना, उसंका सहसा अंधड़ में गायब हो जाना, वाणों का असर न होना[11] आदि। इसी प्रकार वन दावाग्नि के समान धूमकेतुओं का घिरना।[12] धधकते हुए वरगद के गिरने से गांधारी और धृतराष्ट्र की मृत्यु[13] जलती शाखा के गिरने से संजय का झुलस जाना[14] आदि दृश्य भी भंयकरता लाने में सहायक हुए हैं।

कथानक– सामान्य परिचय–अंधायुग का सम्पूर्ण कथानक पाँच अंको में विभक्त हैं जिन्हे प्रतीकात्मक शीर्षकों द्वारा नामांकित किया गया हे जैसा पहला अंक– कौरव नगरी, दूसरा अंक– पशु का उदय। तीसरा अंक–अश्वथामा का अर्द्ध सत्य, अन्तराल– पंख, पहिये और पट्टियाँ, चौथा अंक– गांधारी का शाप, पाँचवा अंक– विजय एक क्रमिक आत्महत्या आदि। प्रारम्भ में स्थापना और अन्त में समापन है।

स्थापना में मंगलाचरण के साथ उद्घोषणा की गई है। प्रथम अंक का प्रारम्भ कथा गायन से होता है। इसकी प्रेरणा लेखक को यूनानी नाटकों से मिली है। कथा गायन या कोरस यूनानी नाटकों में अनिवार्य था उसके द्वारा नाटक की पृष्ठ भूमि तैयार की जाती है। कथा गायन के बाद पर्दा उठता हैं ओर दो प्रहरी हमारे सम्मुख आते हैं, जो आपस में महाभारत के युद्ध और उससे अन्य परिस्थितियों का वर्णन करते हैं। उसके साथ ही भयानक वातावरण की सृष्टि होती है और विदुर, धृतराष्ट्र, गांधारी और याचक प्रवेश करते है। सभी शोक मग्न और दुःखी

हैं। धृतराष्ट्र प्रथम बार यह अनुभव करते है। कि मेरे वैयक्तिक मानदण्डों के कारण ही मर्यादा नष्ट हुई है। मेरे अंधत्व ने ही राष्ट्र को युद्ध की विभीषिका में डाला। किन्तु गांधारी उसका प्रतिवाद करती है। वह कहती है कि मैने कहा था कि जिधर धर्म होगा उधर ही जय होगी पर धर्म किसी ओर नहीं रहा–

"धर्म किसी ओर नहीं था

सब ही थे अंधी प्रवृत्तियों से परिचालित।[15]

बिदुर इसे गांधारी की पीड़ा का परिणाम मानते है। उनका विचार है कि पुत्र शोक से जर्जरित माता हृदय की यह आर्तपुकार है, इसीलिये वह कृष्ण को 'वचंक' कहती है। सभी संजय के आगमन की प्रतीक्षा में हैं। धृतराष्ट्र की अभिलाषा हैं कि उनका पुत्र दुर्योधन युद्ध में विजयी हो। इसके बाद पुनः प्रहरियों का वार्तालाप है और अंक के अन्त में कथा गायन।

द्वितीय अंक फिर कथा गायन से आरम्भ होता है। जिसमें संजय का परिचय दिया गया है। इसमें अश्वत्थामा का पश्चाताप और फिर उसकी भंयकर प्रतिहिंसा और पशुत्व का चित्रण है। लेखक ने इस अंक का नाम भी 'पशु का उदय' रखा है। पागलपन मे अश्वत्थामा एक निरपराध वृद्ध याचक की हत्या कर देता है। इसी अंक में यह सूचना मिलती है। कि कौरव पक्ष में केवल तीन वीर ही बचे हैं– आश्वत्थामा, कृपाचार्य, कृतवर्मा और दुर्योधन तालाब में छिप गया है।

तृतीय अंक में धृतराष्ट्र की व्यग्रता और अश्वत्थामा की विकृति का सुन्दर चित्रण हुआ है। अंक के प्रारम्भ में पाण्डवों की ओर से लड़ने वाले युयुत्स और गूँगे सैनिक के माध्यम से आज के परमाणु युग का चित्रण किया गया हैं। उसके बाद अश्वत्थामा की मनोदशा और प्रतिशोध का वर्णन है। रंग निर्देश में कौए और उलूक की लड़ाई और उससे अश्वत्थामा की प्रेरणा का बड़ा ही मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। वह निश्चय कर लेता है कि जिस प्रकार युधिष्ठर ने अर्थ

सत्य बोलकर मेरे पिता द्रोण की हत्या की हैं, उसी प्रकार धोखे से मैं भी पाण्डवों को उत्तरा को और दृष्टद्युम्ब को नहीं छोडूँगा। इसके बाद अन्तराल मैं, इसमें युयुत्स, संजय और विदुर को बड़ी ही नाटकीय एवं प्रतीकात्मकता के साथ छाया–रूप में उतारा गया है जो 'मूल्यहीनता' के लिये स्वयं अपने को उत्तरदायी मानते हैं। इससे पूर्व वृद्धवाचक का लम्बा कथन है, जो तत्कालीन परिस्थितियों पर सुन्दर व्यंग्य करता है। पूरा अन्तराल एक लम्बी कविता के रूप में है।

चतुर्थ अंक में अश्वत्थामा के भीषण नर संहार का वर्णन संजय द्वारा कराया गया है। धृष्टद्युम्न के वध का वर्णन देखिए–

"विजली सा झपट, खींचकर शैया के नीचे

घुटनों से दाब दिया उसको

पंजों से गला दबोच दिया

आँखों के कोटर से दोनो साबित गोले

कच्चे आमों की गुठली जैसे उछल गए

खाली गड्ढ़ों में काला लोहू उबल पड़ा।[16]

इसके बाद शतानीक, शिखण्डी का बध और अनेक स्त्री बच्चों का होता हैं। इस नर संहार से गांधारी प्रसन्न है। प्रसन्न क्यों न हों जो उसके सौ पुत्रों ने नहीं कर पाया, द्रोण नहीं कर पाये, भीष्म नहीं कर पाये, वह अश्वत्थामा ने कर दिखाया। इसी बीच दुर्योधन सांस तोड़ देता है। इसके बाद सभी मृतकों का वर्णन करने के लिये कौरव नगरी छोड़कर चल देते हैं। कथा गायन में उनका वर्णन करता हुआ लेखक कहता हैं–

" वे छोड़ चले कौरव नगरी को निर्जन

वे छोड़ चले वह रत्न जडित सिंहासन

आगे रथ पर कौरव विधवावों को ले

हैं चली जा चुकी कौरव सेना सारी

पीछे पैदल जाते हैं शीश झुकाऐ

धृतराष्ट्र, युयुत्सु, विदुर, संजय गांधारी।

युयुत्स को मार्ग में ही छोड़कर सभी जंगल की ओर प्रस्थान करते हैं। यहाँ उन्हें दावाग्नि घेर लेती है। इसके वाद अश्वत्थामा द्वारा ब्रह्मास्त्र प्रयोग और उससे जनित परिणामों का बड़ा ही हृदय विदारक वर्णन है। अश्वत्थामा का यह ब्रह्मास्त्र उत्तरा के गर्भ को खण्डित कर देता है, किन्तु कृष्ण उसे पुनः जीवन दान दे देते हैं। यही नहीं वे अश्वत्थामा के कुकृत्य से क्रुद्ध हो कर उसे भ्रूण हत्या का शाप दे देते है और वह शैरव पीड़ा भोगने लगता है।

इसी अंक में गांधारी अपने पुत्र के कंकाल को देखकर कृष्ण को शाप देती है कि तुम्हारा सारा वंश पागल कुत्तों की तरह एक दूसरे को फाड़ खायेगा और तुम स्वयं साधारण व्याघ के हाथों मारे जाओगे। कृष्ण इस बाघ के स्वीकार कर लेते हैं और जिस क्षण से कृष्ण शाप स्वीकार करते हैं उसी क्षण से युग की मर्यादा निष्प्राण हो जाती है।

पंचम अंक में युद्धोपरान्त की निराशा का वर्णन हैं। गांधारी आदि दावाग्नि में जल मरते हैं। प्रजा में भय छा जाता हैं। 'समापन' में प्रभु की मृत्यु का करुण वर्णन है। जिसके बाद अश्वत्थामा में आस्था जाग्रत होती हैं। वह कृष्ण का प्रशंसक बन जाता है। व्याघ के द्वारा नाटक के अन्त में कृष्ण का यह संदेश देते हैं–

"सबका दायित्व लिया मैंने अपने ऊपर

अपना दायित्व सौपे जाता हूँ मैं सब को।"[17]

कवि का मत है कि उस दिन जो 'अंधायुग' अवतरित हुआ था, वह अभी बीता नहीं है। आज हर कृष्ण प्रभु की मृत्यु हो रही है। वह आशा करता है–

"उतना जो अंश हमारे मन का है

वह अर्द्ध सत्य से ब्रह्मस्त्रों से

मानव भविष्य को हर दम रहे बचाता

अंधे, शंसय, दासता, पराजय से।"[18]

चित्रांकन—अंधायुग में कुला मिलाकर छोटे बड़े सोहल पात्र है। इसमें से गांधारी को छोड़कर शेष समस्त पुरुष है। गांधारी के अतरिक्त यद्यपि अप्रत्यक्ष रूप से कुन्ती, उत्तरा कौरव विधवाओं और पाण्डव शिविर में विद्यमान स्त्रियों का उल्लेख किया गया है।[19] किन्तु इनकी चरित्र रेखाओं को नहीं उभारा गया। यद्यपि कौरव विधवाओं को जाते हुए प्रदर्शित किया है, किन्तु इनमें से किसी के भी संवाद नहीं है। पुरुष पात्रों में युद्ध याचक, गूंगे सैनिक और प्रहरियों को छोड़कर शेष समस्त पात्र पौराणिक एतिहासिक हैं। वृद्ध वाचक को लेखक ने 'जरा' नाम व्याघ के साथ सम्बन्धित कर दिया है और उसे वृद्ध वाचक की प्रेत काया मान लिया है। कृष्ण के वधकर्ता का नाम 'जरा' था ऐसा भगवत में मिलता है, लेखक ने उसे वृद्ध की प्रेत—काया मान लिया है।[20]

वास्तव में गूंगे सैनिक, प्रहरियों और याचक के व्यक्तित्व कल्पित तथा प्रतीकात्मक हैं। जिनका बड़ी ही पटुता से नाटक में समावेश किया गया है। पौराणिक एतिहासिक पात्रों को महत्व की दृष्टि से दो भागों में बाँटा जा सकता है— 1—प्रधान पात्र 2—अप्रधान पात्र। प्रधान पात्रों में अश्वत्थामा, कृष्ण, धृतराष्ट्र, युयुत्सु, विदुर, संजय और गांधारी के नाम आते हैं और अप्रधान पात्रों में कृपाचार्य, कृतवर्मा, बलराम युद्धिष्ठर आदि आते हैं।

पात्रों के चरित्र का उभारने, उन्हें अभिव्यक्ति देने और उनकी मनावृत्ति का विश्लेषण करने के लिए लेखक ने चार पद्धतियाँ अपनाई है—

1—पात्र विशेष की स्वयं की उक्तियों द्वारा चरित्र की अभिव्यंजना:—

पात्रों के स्वयं के कथोपकथनों द्वारा उनके चरित्र पर प्रकाश पड़ता है—

यथा धृतराष्ट्र की विवशता का भान उनके इस कथन में होता है–

"समझ नहीं सकते हो विदुर तुम

मैं था जन्मान्ध

कैसे कर सकता था

गृहण में

बाहरी यथार्थ या सामाजिक मर्यादा को?[21]

2–दूसरे पात्र द्वारा प्रकाशः–

पात्रों के आपसी वार्तालाप में दूसरे पात्रों के चरित्र पर भी प्रकाश डाला है– अश्वत्थामा के प्रति गांधारी का यह कथन–

"किन्तु वीर है

उसने वह किया हैं

जो मेरे सौ पुत्र नहीं कर पाएं

द्रोण नहीं कर पाये

भीष्म नहीं कर पाये।[22]

3– कवि द्वारा अपनी और से चरित्र विश्लेषणः–

साधारणतः नाटक में इस पद्धति का प्रयोग नहीं होता, क्योंकि लेखक को स्वयं कुछ भी कहने का अवसर नहीं मिलता, किन्तु 'अंधायुग– में कथा गायन के कारण यह सम्भव हो सकता हैं यथा–

"ये भी बुद्धि से मंद, प्रकृति से अभियानी

अर्जुन थे असय वृद्ध, नकुल थे अज्ञानी।[23]

4–रंगनिर्देश के माध्यम सेः–

दो एक स्थान पर रंग निर्देश के माध्यम से भी पात्रों के चरित्र और मनोदशाओं को उभारा गया है। यथा–युयुत्सु के इस वर्णन में–युयुत्सु अर्द्ध

विक्षिप्त की सी करुणोत्पादक चेष्टाएँ करता हुआ दूसरी ओर निकल जाता है।[23]

अश्वत्थामा– 'अंधा युग' का सबसे महत्वपूर्ण क्रियाशील और मुखर पात्र है। महाभारत युद्ध में शेष बचे वीरों में वह सबसे अधिक भावुक, प्रबुद्ध और स्वाभिमानी है। वह आधुनिक मानव की परिस्थितियों का जीवन प्रतीक है, जो अपने शरीर पर अगणित घाव लिये युग युगान्तर तक जीने के लिये अभिशप्त है। उसके सर्वप्रथम दर्शन द्वितीय अंक में होते हैं। वह दुर्योधन और पिता की मृत्यु से विक्षिप्त सा हो गया है। युद्ध में युधिष्ठर के अर्धसत्य और भीम के नियमोलंघन से उसका ह्रदय टूट गया है। परिणाम स्वरूप वह बर्बर बन जाता है। महाभारत की समस्त अनैतिकता उसमें पूँजीभूत हो गई है। वह सामान्य हो गया है। भारती जी ने उनके घनी–भूत क्षणों को काव्यतत्वों से सन्निविष्टसर अभिव्यक्ति दी है।[25]

वह सोचता है कि जब दो ही मार्ग हैं, कि या तो आत्मघात कर लूँगा या फिर वध, केवल वध को जीवन का उद्देश्य मानकर क्रूर हत्याऐं करना प्रारम्भ करुँ। वह द्वितीय को अपना लक्ष्य चुनता है और प्रतिशोध की उत्कृष्ट इच्छा उसे हिंसक क्रूर और निर्दय बना देती है। बध उसके लिए नीति न रहकर मनोग्रन्थि बन जाती है।[26] वह पागल बन जाता है। जहाँ भी उसे अवसर मिलता है वह हत्या पर उतारु हो जाता है। बध उसका धर्म है, प्रतिहिंसा उसकी प्रेरणा हैं, क्रूरता उसकी सहचरी है घृणा उसका तर्क है।[27]

महाभारत की सारी अनीति, मर्यादा ,पशुता, बर्बरता का यह प्रतीक बन जाता है।[28] इसका अभिप्राय यह नहीं है कि वह सदा से ही क्रूर था। अपने जीवन के प्रारम्भिक दिनों में वह कोम प्रकृति का युवक था। लेकिन महाभारत के छल, कपट और द्वेश उसे क्रूर धर्मा बना देता है। मानसिक संवेगों के वशीभूत होकर वह वृद्ध याचक की हत्या कर देता है। उत्तरा का गर्भ पर ब्रह्मस्त्र का प्रयोग करता है और वह अपने ही मित्र कृतवर्मा का वध करने को तैयार हो जाता है।[29] वह एक

स्वामिभक्त सेवक है। दुर्योधन के प्रति उसकी अनन्य निष्ठा है। उसकी पराजय पर वह अपना धनुष तोड़ देता है और अपने को नपुंसक तक कह देता है। इसी अनन्यता के कारण मरणासन्न दुर्योधन को वचन देता है कि वह उसका प्रतिशोध लेगा।[30] वह स्पष्ट वक्ता है। वह कृष्ण के कपट पूर्ण व्यवहार की स्पष्ट आलोचना करता है–

"पूरे पाण्डव वंश को

निर्मूल किये बिना शायद

युद्ध लिप्सा

नहीं शान्ति होगी कृष्ण की।"[31]

अंधायुग में अश्वत्थामा का क्रूर रूप ही अधिक उभरा है। दूसरे को दुखी और छटपटाता देखकर जैसे उसे आनन्द आता है। धृष्टद्युम्न के वध में उसकी क्रूरता चरम सीमा पर पहुँच जाती है। वह उसकी आँखों को फोड़ देता है, फिर उसके मर्म स्थलों को चूर–चूर कर देता हैं। तभी तो व्यास उसे नराधम कहते है और लेखक ने 'पशु का उदय' शीर्षक देकर उसे पशु की संज्ञा दी है।

'अंधायुग' के अश्वत्थामा के बाद दूसरा महत्वपूर्ण व्यक्तित्व गांधारी का है। महाभारत में उसे ऐसी प्रतिव्रता स्त्री के रूप में चित्रित किया गया है, जो पति के स्वयं भी आँखो पर पट्टी बाँध दृष्टि सुख से वंचित कर लेती है। फलस्वरूप उसमें वह शक्ति आ गई हैं कि जिस पुरुष को वह आँखें खोलकर देख ले उसकी काया पत्थर की हो जाये। अंधायुग में भी उसे उस शक्ति से परिपूर्ण माना है। किन्तु उन्होंने उक्त कथा में एक परिवर्तन किया है जहाँ महाभारत में उसने दुर्योधन की काया को पत्थर बनाया है वहाँ अंधायुग में अश्वत्थामा को अमर बना दिया है।[32]

वह महाभारत की सबसे दुःखी नारी है। दुखी भी क्यों न हो? जिसके सौ पुत्र एक–एक कर सत्रह दिन में मार डाले जायें उसके हृदय की पीड़ा भी वही

जान सकती है। वह स्वयं कहती है–

"सत्रह दिन के अन्दर

मेरे सब पुत्र एक–एक कर मारे गए

अपने इन हाथों से

मैंने उन फूलों सी बधुओं की कलाइयों से

चूडियाँ उतारी हैं

अपने इस आंचल से

सेंदुर की रेखाएँ पोंछी हैं।[33]

धृष्टद्युम्न की हत्या और पाण्डव नारियों के क्रन्दन सी भी उसका हृदय नहीं पसीजता। अपने पुत्र दुर्योधन के कंकाल को देखकर वह संतुलन खो बैठती है और कृष्ण को शप देती है कि–

"तो सुनो कृष्ण

प्रभु हो या परात्पर हो

कुछ भी न हो

सारा तुम्हारा वंश

इसी तरह पागल कुत्तों की तरह

एक दूसरे को परस्पर फाड़ खायेगा

तुम खुद उसका विनाश करके कई वर्षो बाद

किसी घने जंगल में

साधारण व्याघ के हाथों मारे जाओगे।"[34]

वास्तव में गांधारी धैर्य, विवेक और वस्तु स्थिति के विश्लेषण करने की क्षमता खो बैठती है। वह एक ऐसा ज्वालामुखी बन जाती है, जो विध्वंश को तत्पर है। आवेश और आक्रोश के वशीभूत होकर वह अपने एकमात्र शेष बचे पुत्र युयुत्सु

का तिरस्कार कर बैठती है। वह पूछती है–"भुजायें तुम्हारी थकी तो नहीं, अपने बन्धु जनों को बध करते करते।"[35]

कृष्ण को शाप देन के पश्चात उसके मन में द्वन्द्व और पश्चाताप की भावना इसी बात का द्योतक है। वह इसके लिए निराशा कटुता और पुत्र हीनता को उत्तरदायी बताती है–

"कर देते शाप यह मेरा तुम अस्वीकार

तो क्या मुझे दुख होता

मैं थी निराश मैं कटु थी

पुत्र हीना थी।"[36]

युद्ध के अन्तिम दिन वह अनुभव करते हैं कि कौरव के प्रति मेरी ममता ने ही यह सब विध्वंश किया है। उनकी वैयक्तिकत ही महाभारत का करण बनी–

"आज मुझे भान हुआ

मेरी वैयक्तिक सीमाओं के बाहर भी

सत्य हुआ करता है।"

संजय द्वारा यह जानने पर कि अश्वत्थामा ने उत्तरा के गर्भ को नष्ट कर दिया है तो उनमें उत्साह आ जाता है।

कृष्ण अनासक्त नियति के नियामक है। अंधायुग में वे प्रत्यक्ष तो कम ही आये हैं लेकिन उनका प्रभाव सर्वत्र परिलक्षित होता है। रामस्वरूप चतुर्वेदी के शब्दों में–"कृष्ण, जो मानवीय आचरण की जटिलतम मर्यादा के मर्मज्ञ थे, इस दृश्य काव्य के केन्द्रस्थ पात्र हैं। जो सभी पात्रों और परिस्थितियों पर छाये रहते हैं।"[37]

युधिष्ठिर का गौरव अर्ध सत्य के आस–पास चक्कर लगाता है। उनके अर्ध सत्य को लेखक ने अपनी आलोचना का लक्ष्य बनाया है। उसने सत्य का अनुसरण

किया है, लेकिन उसके कारण उसे अपनो से ही तिरस्कार और घृणा मिली स्वयं उसकी माँ उसे नहीं देखना चाहती। कृपाचार्य ओर कृतवर्मा के चरित्रों का विकास नहीं हो सकता वे पराजित जुंआरी जैसे है। अश्वत्थामा के प्रहार से बचे बूढे बच्चों को पाण्डव शिविर से बाहर निकलते ही ये दोनों मार डालते है। संजय अदृष्टा के रूप में चित्रित किया गया है। व्यास भविष्य दृष्टा और महानभूति के रूप में आये हैं।

'अंधायुग' चरित्र–चित्रण वैचारिक पृष्ठभूमि पर हुआ है। धृतराष्ट्र और युधिष्ठर नेतृ वर्ग की ऊँची शक्ति, उपासना और विश्व पर एकाधिकार का स्वार्थी वासना के प्रतीक हैं।[38]

कथोपकथन–सम्वाद कौशल की दृष्टि से 'अंधायुग' अद्‌भुत है। न तो काव्य है और न मात्र नाट्‌कीयता से ओत–प्रोत। 'उनका रेटारिक नाटकीयता से अधिक वर्णनात्मकता पर बल देता है उनमें प्रयोजनीयता, प्रतीकात्मक अर्थों को सम्प्रेषण की क्षमता एवं व्यंग क्षमता है।[39] अश्वत्थामा और युयुत्सु के कथनों की लय पग पग पर परिवर्तित है संजय के वार्तालाप में मार्मिकता और नाटकीयता के अनुसार 'टोन' बदलती रहती है।

द्वन्द विधान–द्वन्द्व विधान की दृष्टि से भी अंधायुग उत्तम है। इसमें ब्राह्य और आन्तरिक दोनों द्वन्द्वों को चित्रित किया गया हैं। कौरव–पाण्डवों का संघर्ष वाह्य संघर्ष था। उलूक और कौवे के वाह्य संघर्ष के माध्यम से आन्तरिक संघर्ष को वाणी दी गई है। 'अंधायुग' की पूरी रचना प्रक्रिया मानसिक द्वन्द्व पर आधृत है। मानव की अन्तरचेतना,, मनः व्यापारों, मनोभावों और अतृप्त इच्छाओं को लेखक ने सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। गांधारी एक के बाद एक मरने वाले पुत्रों के आघात से सन्तुलन खो बैठती है। जो अपने सौ पुत्रों की मृत्यु पर नहीं रोई वह कृष्ण को शाप देकर पछताती है। युयुत्सु के तो समस्त कथन ही द्वन्द्वात्मक हैं।

पाण्डव पक्ष की ओर से युद्ध करने का निर्णय और गांधरी तथा पाण्डव द्वारा किये गये अपमान के कारण वह अपने कार्य पर पछताता है। वह सोचता है कि अनन्तः मुझे क्या मिला जिसमें असत्य की विजय होती है–

"दोनों ही पक्षो में विवेक ही द्वारा

दोनों ही पक्षों में जीता अंधापन

भय का अंधापन, ममता का अंधापन

अधिकारों का अंधापन जीत गया

जो कुछ सुन्दर था, शुभ था, कोमलता था

वह हार गया.........द्वापर युग बीत गया।"[40]

प्रतीक विधान–प्रतीक विधान की दृष्टि से भी अंधायुग श्रेष्ठ है। उसके सभी पात्र किसी न किसी विचारधारा या मनोविकारों का प्रतिनिधत्व करते हैं। जो स्वजनो के प्रति पक्षपात और अंधी शक्ति उपासना के प्रतीक हैं। गांधारी मानवता के उस वर्ग का प्रतीक है जो युद्ध से घबरा गई है। अश्वत्थामा हिंसक पशुत्व और अर्थ सत्य पोषित हिंसक युद्ध लिपसा का प्रतीक है। ज्योति और अंधकार का द्वन्द्व उनके भीतर है। इसी प्रकार संजय कर्मलोक से बहिष्कृत निरपेक्ष सत्य का प्रतीक है।[41] भारती जी ने कहीं–कहीं प्रतीकात्मक घटनाओं का भी चित्रण किया हैं। उलूक और कऊए की घटना प्रतीक है– छल, कपट और धोखाघड़ी की। अंधायुग के शीर्षक भी प्रतीकात्मक है पशु का उदय, पंख, पहिये और पट्टियों आदि प्रतीकाात्मक ही हैं तथा किसी–किसी घटना और विचारधारा के प्रतीक हैं। 'अंधायुग' स्वयं प्रतीकात्मक शीर्षक है। वह ऐसे युग का प्रतीक है जिसमें कुंठा, निराशा, रक्तपाद, प्रतिशोध, विकृति, कुरूपता अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई थी। दो प्रहरियों के वार्तालाप का भी प्रतीकात्मक महत्व है।

ऐसा लगता है जैसे सारा दृश्य हमारे सामने साकार हो उठा है। दुर्योधन

की दयनीय दशा का चित्र देखिये–

"वह जो सम्राटों का अधिपति था

खाली हाथ

नंगे पाँव

रक्त सने

फटे हुए वस्त्रों मे

टूटे रथ के समीप

खड़ ही निहत्था ही

अशु भरे नेत्रों से

उसने मुझे देखा और माथा झुका लिया।"[42]

अश्वत्थामा के नर संहार के बाद एक अन्य बिम्ब देखिये–

"धुआ, लपट, लोथें, घायल घोड़े, टूटे रथ

रक्त, भेद, मज्जा, मुण्ड

खण्डित कबन्धों में

टूटे पसलियों में

विचरण करता था अश्वत्थामा

नर रक्त से वह तलवार उसके हाथों मे

चिपक गई थी ऐसे

जैसे वह उगी हो

उसी के भुज मूलों से।"[43]

जैसे–याचक का यह सूक्ष्म बिम्ब–

"याचक है

उन्नत ललाट

श्वेत केशी

अजान बाहु।''

इसी प्रकार कई स्थानों में विभिन्न प्रकार के काव्य बिम्बों का प्रयोग अंधायुग में हुआ है।[44]

गीतीनाट्यों में इतनी सफलता के साथ वृत्तगंधी कथोपकथनों का प्रयोग प्रथम बार 'अंधायुग' में ही हुआ है। छन्द योजना में लय का विशेष ध्यान रखा गया है। पात्रों के कथोपकथन में सभी पक्तियाँ एक ही लय में हो यह आवश्यक नहीं। किन्तु नाटकीय कथन में इसे मैं आवश्यक नहीं मानता।[45] भावाभिव्यंजना की दृष्टि से सशक्त और सांकेतिक शब्द चयन सर्वत्र परिलक्षित होता है एक सहज चित्रण देखिये–

''यह रात गर्व में

तने हुए माथों की

यह रात हाय पर

धरे हुए हाथों की।[46]

नाटकीयता और अभिनेयता की दृष्टि से भी अंधायुग पूर्ण सफल है। उसमें समस्त नाट्कीय स्थितियों तथा शिल्प का प्रयोग किया गया है। लेखक ने इसे अभिनेय बनाने का पूर्ण प्रयत्न किया है। भारती जी के ही शब्दों में–''यह काव्य रंगमंच को दृष्टि में रखकर लिखा गया था अधिक कल्पनाशील निर्देशक इसके रंगमंच को प्रतीकात्मक भी बना सकते है।[47] अंधायुग का सफल प्रदर्शन कई बार विभिन्न स्थानों पर हुआ है। बम्बई के थियेटर यूनिट ने इसका सफल प्रदर्शन किया।[48] इसके बाद दिल्ली में भी इसका प्रदर्शन हुआ।[49]

अलवर की नाट्य संस्था ने भी इसका सफल प्रदर्शन 6 सितम्बर 62 को किया, जिनकी दर्शकों ने भूरि–भूरि प्रशंसा की।[50] रेडियो पर भी इसका प्रदर्शन

हुआ जिसमें वाल्यूम अण्डरटोन, ओवर टोन, ओवर लैपिंग टोन्स, स्वरों का कंपन आदि प्रयोग किया गया।[51] इस प्रकार अंधायुग एक सफल अभिनय मंचीय गीतिनाट्य ठहरता है।

मातागांधारी के हृदय की वेदना को कवि ने निकट से देखा हैं, अनुभव किया है। गांधारी के इस कथन में कितनी वेदना है–

"सत्रह दिन के अन्दर

मेरे सब पुत्र एक–एक कर मारे गए

अपने इन हाथों से

मैंने फूल सी बधुओं की इन कलाई से

चूड़ियाँ उतारी हैं

अपने इस आंचल से

सेंदुर की रेखाएँ पौंछी हैं।"[52]

युगानुकूल अभिव्यक्ति ने 'अंधायुग' के प्राचीन कथा सूत्रों को अर्वाचीन सूत्रों में बाँध दिया है। उस काल की विकृतियाँ अनैतिकता, अमर्यादा, रक्तपात, आज की समस्याएँ है। कवि कहता है–

"उस दिन जो अंधायुग अवतरित हुआ जग पर

बीतता नहीं रह रह कर दुहरता है।"

दो प्रहरियों के वार्तालाप द्वारा भी उस युग को आज के युग से जोड़ा गया है–

"शासक बदले, स्थितियाँ बिलकुल वैसी हैं

इससे तो पहले ही शासक अच्छे थे, अंधे थे–

लेकिन वे शासन तो करते थे

ये तो संत ज्ञानी हैं।"[53]

अंधायुग की विशेषताएँ–'अंधायुग' में भारती जी ने अनेक अभिनव प्रयोग किये है, जिनके कारण वह सामान्य गीतिनाट्यों से भिन्न विशेष गौरव ग्रन्थ बन गया है। उसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं–

1–नवीन छन्द विधान–'अंधायुग' से पूर्व गीतनाट्यों में अन्तुकान्त छन्दों का प्रयोग होता था, लेकिन भारती जी ने टी. एस. ईलियट के समान मुक्त छन्द का प्रयोग किया। इसके कारण कृति में जहाँ रंगमचीय नाटकीयता आ गई है वहीं भावों को व्यक्त करने में सहायता मिली है।

2–कथागायन का प्रयोग–भारती जी ने कथा गायन या कोरस का प्रयोग कर नाटक में जान डाल दी है। यह पद्धति लोक नाट्य परम्परा से ली गई है। यूनानी नाटकों में भी कथा गायन का प्रयोग होता है। कथानक की जो घटनाएँ मंच पर नहीं दिखाई जाती उनकी सूचना देने, वातावरण को गहन बनाने या कहीं उसके प्रतीकात्मक अर्थों को भी स्पष्ट करने के लिए कथा गायन की पद्धति अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है।[54]

'अंधायुग' में कथानक द्वारा जहाँ पृष्ठभूमि को उभारा गया है, दृश्यों को ध्वनि के माध्यम से चित्रित करने में भी कथानक सहायक हुआ है। अंको के बीच में जाने वाले कथा गायन और उनके गायन में अन्तर है। प्रथम में कथा गायन संक्षिप्त और आगे की घटनाओं को इंगित करता है, किन्तु दूसरे में कथा गायन का क्षेत्र व्यापक है और कथा विस्तार में सहायक हैं।[55]

3–प्रसंगानुसार बदलती लय–'अंधायुग' में परिस्थतियों और भावों के अनुसार बदलती राय में उसमें पुनर्जीवन डाल दिया है। यह बात अश्वत्थामा, संजय, गांधारी आदि सभी पात्रों में देखी जा सकती है। प्रथम अंक में पैरों की आहट सुनकर धृतराष्ट्र का संजय पुकारना ऐसी ध्वनि उत्पन्न करता है जैसे उसका मन व्याकुलता में घिर गया हो। उनके हृदय की हलचल को व्यक्त करने में पूर्ण

सफल है।

4—रंग निर्देशों द्वारा नाटकीयता—'अंधायुग ' को नाटकीयता प्रदान करने में रंग निर्देशों ने पर्याप्त योगदान दिया है। ध्वनि और प्रकाश के माध्यम से उलूक और कौवे की लड़ाई और उसके द्वारा अश्वत्थामा का दिशा निर्देश ऐसा ही है।

5—अन्तराल योजना—सामान्यता गीतानाट्य में अन्तराल नहीं होता। लेकिन 'अंधायुग' में भारती जी ने अन्तराल रखा है। इसमें पात्र बारी—बारी से आकर मंत्रवत अपने मन की भावनाओं को व्यक्त करते है। समस्त अन्तराल में प्रेत—लोक जैसा दृश्य है।

6—दृश्य—श्रव्य एवं लोकनाट्य का समन्वय—'अंधायुग'की एक अन्य प्रधान विशेषता उसका मंचीय दृश्य विधान है। इसके साथ ही रेडियो पर इसका सफल प्रसारण भी हो चुका है। खुले मंचवाले लोकनाट्य में भी परिवर्तित किया जा सकता है। इस प्रकार 'अंधायुग' दृश्य नाट्य, ध्वनि नाटक और लोक नाट्य तीनों का समन्वित रूप है जिसके कारण वह अद्भुत कृति बन गई है।

गिरजा कुमार माथुर (16 अगस्त 1919)—प्रयोगवादी कविता के आधार पर स्तम्भ गिरजा कुमार माथुर ने आकाशवाणी के माध्यम से अनेक गीतनाट्यों की रचना की है। इनमें से कुछ तो गीतनाट्य है और कुछ गीतनाट्य परक रचनाएँ है। गीतनाट्यों में इन्दुमती (1951) और गीतनाट्य परक रचनाओं में 'कल्पान्तर' 'दंगा', 'राम', 'व्यक्ति मुख' और 'स्वर्ग श्री'।

इन्दुमती—'इन्दुमती' सर्वप्रथम 'प्रतीक' में सितम्बर 1951 को प्रकाशित हुआ था। बाद में लेखक ने इसे कविता संग्रह 'धूप के धान' में संकलित कर दिया। जहाँ प्रतीक में प्रस्तुत 'इन्दुमती' में लेखक ने नाट्कीयता के लिए पात्रों के नाम देकर संवाद लिखे हैं जहाँ 'धूप के धान' में ऐसा कम किया गया है। उदाहरण के लिए

'धूप के धान' में गीतिनाट्य का प्रारम्भ अनायास ही हो जाता है और प्रतीत नहीं होता कि कौन बोल है जब कि 'प्रतीक' में गायक और गायका का निर्देश दिया गया है। यदि कोई मात्र 'धूप के धान' में इन्दुमती पढ़े तो उसे गीतिनाट्य न होने का भ्रम हो जाय।[56] 'इन्दुमती' का कथानक कालिदास के रघुवंश से प्रेरित है। किन्तु लेखक ने अपनी मौलिक प्रतिभा को भी परिचय दिया है। इसमें 'इन्दुमती' के स्वयंवर का वर्णन है। स्वयंवर में विभिन्न देश के नरेश पधारे है पर इन्दुमती को कोई आकर्षित नहीं कर पाता। अन्त में वह रघु के गले में जयमाला डाल देती है। यही कथानक है, जिसे लेखक ने अपनी कल्पना शैली से अनुपम बना दिया है। लेखक का कवि सर्वत्र मुखर है। एक वर्णन देखिए–

"यदि रहना चाहो मृगनयनी
नाग बल्लियों के कुंजो मे
है तमाल की सेज जहाँ पर
एला गन्धित मलय वनों में
तन्वि, वरो तुम पाण्ड्य राज को
जिनके तन पर है हरि चन्दन
हेम वर्ण तुम थे इन्दीवर
ज्यों विद्युत से मिलें श्याम घन।"[57]

नाटकीयता की दृष्टि से 'इन्दुमती' सुन्दर रचना नहीं है। संवादों में भी नाटकीयता नहीं हैं। हाँ सुनन्दा का वर्णन और इन्दुमती के अल्प उत्तर सुन्दर है। जैसे–

"सखि जब नहीं कौमुदी रजनी, कैसे दिन के खिले कुमुदिनी।"

अथवा

"पर सखि बन्द ताम रस अन्तर , खिला न पात कोटि सुधा धर।"

वास्तव में ये कथोपकथन ही इस रचना के प्राण हैं। संघर्ष की दृष्टि से भी यह हल्की रचना है।

जानकी वल्लभ शास्त्री—छायावादी काव्य धारा के सुपरिचित मूर्धन्य कवि आचार्य जानकी बल्लभ शास्त्री का नाम गीतिनाट्य के इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आपके दो गीतिनाट्य संग्रह प्रकाशित हुए हैं—एक 'पाषाणी' और दूसरा 'तमसा'। दोनो में पाँच—पाँच गीतिनाट्य संग्रहीत हैं।

गीतिनाट्यों में शास्त्रीय संगीत का प्रयोग प्रथम बार अत्यन्त कुशलता के साथ किया गया है। आज कल आपेरा के लिए संगीति का शब्द का व्यवहार होता है, जबकि शास्त्री जी की रचनाएँ 'आपेरा' नहीं, गीतिनाट्य हैं। वैसे 'तमसा' में शास्त्री जी ने इन्हें गीतिनाट्य कहा हैं। पाषाणी में भी इनको गीतिनाट्य कहा हैं।

'पाषाणी' शास्त्री जी का प्रथम गीतिनाट्य संग्रह है जिसमें पाँच एकांकी उसी क्रम से संग्रहीत है। जिस क्रम से उनकी रचना हुई है। लेखक का विश्वास है कि ईषत् संशोधनों के साथ इनका रंगमंच पर भी प्रदर्शन किया जा सकता है।''[58] क्रमानुसार 'पाषाणी' में संग्रहीत गीतिनाट्य इस प्रकार है—(1) गंगावतरण (2) उर्वशी (3) वासन्ती (4) पाषाणी ओर (5) मंजरी।

1—गंगावतरण— 'गंगावतरण' पौराणिक घटना पर आधारित है जिसमें भागीरथ द्वारा गंगा को स्वर्ग से पृथ्वी पर लाने का आख्यान है। यदि मानव के मन में दृढ़ संकल्प, विश्वास, अदम्य विश्वास और कर्मठता हो तो पृथ्वी पर स्वर्ग आ सकता है। भागीरथ, गंगा को पृथ्वी पर लाने हेतु घोर तपस्या करते है जिसके कारण इन्द्रलोक में भय व्याप्त हो जाता है इन्द्र ब्रह्मास्त्र रूप में उर्वशी और रम्भा को तपस्या भंग करने हेतु पृथ्वी पर भेजते हैं। भागीरथ की आँख नहीं खुली और अप्सराएँ श्लध शिथिल पदों से वापस लौट गयी।

भागीरथ की तपस्या से प्रसन्न हो ब्रह्मा ने गंगा को पृथ्वी पर उतरने का

वर दिया। उन्होंने कहा कि गंगा भूतल पर उतरेगी किन्तु उसके वेग को मात्र कैलाश वासी शंकर ही सम्भाल सकते है, अतः उन्हे प्रसन्न करो। उसी समय शंकर प्रकट होकर सहर्ष गंगा के वेग को झेलने के लिए तैयार हो जाते हैं–

"मैं प्रसन्न हूँ स्वर्गङ्गण उतरे भू पर

कीर्ति तुम्हारी गगनं चढ़े, फहरे ऊपर।"[59]

गंगावतरण' का यही छोटा आख्यान है। भागीरथ एक एसे कर्मयोगी हैं जो दूसरे के लिए तपस्या करते हैं–

'तप रहा था मैं न अपने हेतु'

भगवान शंकर इसी से बिना तपस्या कराये ही उनकी सहायता को उद्धृत हो जाते हैं। वे कहते हैं–

"सत्य के लिए तप करने वाले देखे

मुक्ति शान्ति निर्वाण चाहने वाले भी

सुन्दर स्वर्ग–पिपाशा से जो कंठ सूखा

लेते ऐसे सिन्धु चाहने वाले भी,

बात तुम्हारी न्यारी उन सबसे तुम तो

शिव के लिए, लोक–मंगल के लिए तपे।"[60]

गंगावतरण के सम्वाद नाटकीयता से परिपूर्ण हैं। रेडियो पर इनका सफल प्रसारण हुआ है।[61] शास्त्री जी ने गीतनाट्यों में विशुद्ध परिमार्जित भाषा का ही प्रयोग किया है। 'गंगावतरण में कहीं भी शिथिल भाषा का प्रयोग नहीं हुआ। भागीरथ जहाँ उद्घोष के स्वर में–"मैं रहूँगा अटल, अडिग, अडोल कहते हैं वहीं रम्भा भी छुम छुम छुम नूपुर–धुन सुन–सुन सहज ही मन मोह लेती है।शास्त्री ने अपने गीतनाट्यों में अन्त्यानुप्रास युक्त सम मात्रिक छन्दों का प्रयोग किया है और भावों में कहीं भी शिथिलता नहीं आई। गंगावतरण में घनाक्षरी छन्द का भी प्रयोग

हुआ है। कहीं मुक्त छन्द भी प्रयोग किया गया है।[62]

संगीत तत्व के समक्ष गीतिनाट्य के अन्य तत्व—नाटकीयता और काव्यत्व विचारे दबे—दबे से लगते है। शास्त्री जी के ही शब्दों में—ऐसा लगता है जैसे संगीति का काव्य—नाट्य के किनारे डुबोकर बहने वाली संगीत की गंगा ही है।[63] 'गंगावतरण' में नाटकीय रंग संकेतों और निर्देशों का पर्याप्त उल्लेख है। यथा 'मेघ मन्द स्वर में', 'गद्—गद् स्वर में', 'कुटस्थ स्वर में', 'उर्ध्व श्वांस लेकर' आदि जैसे—पृष्ठभूमि में तालबद्ध नूपुरों की झंकार, नूपुर निनाद क्रमशः मुखरित होता है।''

2—उर्वशी—'उर्वशी', 'पाषाणी' संग्रह का दूसरा गीतिनाट्य है। इसकी प्रेरणा विक्रमोर्वशीय से प्राप्त हुई है। लेखक ने कथानक में मौलिकता का परिचय दिया है। इसमें आलौकिक कला प्रेम तथा लौकिक द्वन्द्वात्मक प्रेम को केन्द्रित करके भोगवादिनी (दरबारी—सरकारी) कला का वर्णन है। इसी के कारण नृत्य संगीत में निपुण कलाकार उर्वशी को अभिशप्त हो कर मानुषी जीवन स्वीकार नहीं होता है।[64]

कथानक इस प्रकार है— एक असुर उर्वशी का हरण करके भागता है, अन्य अप्सराएँ बचाओ बचाओं का आर्तवाद करती है, जिसे सुनकर पुरुवा वहाँ पहुँचता है और उर्वशी को बचाने का अश्वासन देकर चला जाता है। चित्रलेखा को डर है कि राजा हार न जाये। सुकेशी इस धारणा को निर्मूल बताती है, राजा की हार निश्चित है क्योंकि—

''कोतूहल के नत नयन उठा, चंचल चितवन
जब सखी चलायेगी, राजा का आहत मन
चीत्कार कर उठेगा मैंने ली हार मान।[65]

पुरुवा उर्वशी को छुड़ाकर सखियों का सोंप कर चला जाता है। लेकिन उर्वशी राजा पर आसवक्त हो जाती है। वह प्रेम पत्र लिखती है, जो बिदूषक के

माध्यम से पुरुवा महारानी के हाथ लग जाता है। उर्वशी इन्द्रलोक में वियोग व्यक्ति होने से सुन्दर नृत्य नहीं कर पाती जिससे क्रोधित हो भरत मुनि शाप दे देते हैं–

"कलाकार थी अब तू नारी मात्र रहेगी

स्वर्ग–भ्रष्ट! तू क्या जाने क्या भूमि कहेगी।"

गीतों मे सहज भाषा का प्रयोग दृष्टव्य है–तुम क्या जानो मेरे मन की दिन में चैन न नींद रैन की।" शास्त्री जी पहले कवि और बाद में नाटककार है। अतः उनका कवि रूप सर्वत्र इन गीत नाट्यों में छाया रहा है। उर्वशी और पुरुवा दोनों के हृदय के मंथन को वाणी दी गयी हैं। 'क्या जिलाया था मुझे इस भाँति मरने के लिए, तन किया था, मुक्त मन लाचार करने के लिये' कहकर उर्वशी न जाने कितनी मन की कुण्ठाएं व्यक्त करती है।

3–वासन्ती–वासन्ती एक प्रतीक गीतिनाट्य है, जिसमें पतझड़, आशा, विश्वास वासन्ती आदि अमूर्त पात्रों के साथ–साथ किसान, मजदूर, जवान आदि मूर्त पात्रों का समावेश हुआ है। जहाँ एक ओर–"मैं पतझड़ का अंधड़ हर हर हर भर भर भर" की आवाज कानों में गूँजती है। वहीं दूसरी ओर अपनी धरती भुज–बल अपना, बैल हमारे है हल अपना' का समूह गान भी पढ़कर पाठक उसे बार–बार दुहराने लगता है।

आगे कुछ मजदूर मिलते हैं जो गाते जाते हैं और काम करते जाते हैं। वे श्रम को भगवान मानते है। पतझड़ उनसे कहता है कि–"क्या कुए में भाँग पड़ी है या गाँव ही पागल है।" मेहनत को भगवान मानने वालो अपने पैरों और हाथों को कष्ट क्यों देते हो। मजदूर उत्तर देते हैं यदि हम रुक जायें तो जगती की गति ही रुक जाय। पतझड़ उन्हें भी बाबरे कहकर आगे बढ़ जाता हैं। वह कहता जाता है–

"पाला पड़ जायेगा सुन्दर सड़ जायेगा।"

वासन्ती अन्त में कहती है–

अभ्युदय टिकाऊ होता है, सहाज संचार्य से आनन्द और क्या निःश्रेयस का ललित नाम।" वासन्ती प्रतीकात्मक रूपक है, जिसके कारण चरित्रों का विकास नहीं हुआ। पतझड़ है जो संसार में भ्रम अविश्वास और निष्क्रियता भरना चाहता है। दूसरी ओर किसान, मजदूर और कलाकार हैं। जो आशा और विश्वास के सहारे जीवन में हर्ष और उमंग लाना चाहते हैं। प्रकृति का सुन्दर विधान किया है एक दृश्य देखिय–

"रग तिरंगों पर लहराती, जाती मलय बयार

फाग राग सुन सुन गुम सुम मदमाती मलय वयार

टेसू टह टह लाल, सुनहला आंचल भूका फैला

तीक्ष्ण किरणके सैन चलाता , ऊपर से नभ छैला।"[66]

लेखक का विश्वास है कि रंगमंच पर इसका अभिनय एक नया रंग लायेगा। संघर्ष सुन्दर है।"[67] पतझड़ अपनी असफला पर झुँझलाता है। उसे बहुत सुन्दर ढ़ंग से प्रस्तुत किया गया है।

4–पाषाणी–"पाषाणी" मनोवैज्ञानिक गीतनाट्य है, जिसमें अहिल्या के मन की काम कुंठा अभिव्यक्त हुई है। बालपन में ही बूढे ऋषि को व्याही अहिल्या का मन सहसा उद्वेलित हो उठता है। उसे आश्रम का बाहरी दिखावा और शान्ति वर्फीले फुहारों जैसी दिखई देती है। उसे अपना तापसी जीवन खलने लगता है–

"मै कब की तापसी। मल्लिके, तुम्हें नहीं कुछ ज्ञात मैं भी राजकुमारी ही थी कभी। भाग्य की बात बालपन में मुझे तपोवन मिला, शिला का स्नेह छाँव पेड़ की, धुआँ होम का और धूप की देह।"[68] संयम को वह शब्द जाल मात्र समझती है। अहिल्या गौतम से कहती है–

"बस बस तप की मत बात करें, तपते–तपते मन ऊबा है

"जीने वाले चुप जीते हैं, क्यों आप किन्तु चिन्तित इतने

मैने ऐसे रोते–हंसते, काटे जीवन के दिन कितने"[69]

उसे सात्विकता और नीति कथाएँ अब नहीं भाती। कात्यायनी और मैत्रैयी की कहानी सुनते–सुनते वह सो जाती है। उपचेतना उसे छलती है। इन्द्र स्वप्न उसे उन्मादित कर देता है। वह 'वज्रधर' के स्थान पर 'इन्द्र' के सपने देखने लगी, ऋषि यज्ञ का परिणाम बताते है और अहिल्या 'शची' बनते का सपना देखती है।"[70] विफलता और निराशा उसके मन को तोड़े देती है–"क्या कहूँ क्या–क्या अहिल्या कह रही, कठिन कुंठा, घुटन दुःसह सह रही' कह कहकर महर्षि भी उनको मनोव्यथा को व्यक्त करते हैं–

मैं युयती तुम जरा–जर्जरित इस जलले से सत्य को धर्म, ज्ञान, तप बुझा न पाए, जला न पाये तथ्य को। आज अनावृत्त आत्मा लेकर खड़ी हुई जब सामने दिशा दिशा में गूँज उठ रही धिक धिक असफल सामने।"[71] अहिल्या अपने जीवन पर प्रकाश डालती हुई कहती है–

"नारी हूँ, यह बात प्रथम

हारी हूँ स्वीकृत घात चरम

अन्तर्द्वन्दों में जले बुझे

जीवन की तृषित कहानी हूँ

कैसे कहते पाषाणी हूँ।"[72]

कथानक की दृष्टि से पाषाणी केवल एक रात की कहानी है जो तीन दृश्यों मे पूरी हुई है। अहिल्या आश्रम में दीपक राग गा रही है। राजकुमारी मल्लिका पति की खोज में आश्रम में पधारती है। अहिल्या उससे आश्रम की नीरसता का वर्णन करते हुए अपनी कहानी सुनाती है कि उसके पिता के कोई संतान नहीं थी। महर्षि गौतम ने इस शर्त पर पुत्र प्राप्ति का आशीर्वाद दिया कि पहली संतान महर्षि को

सोंपनी होगी आतुर माता पिता ने इसे स्वीकार कर लिया । अहिल्या पहली सन्तान थी, अतः वह बूढे ऋषि को दे दी गई–'पिता प्रति श्रुति थे, क्या होता करना पड़ा अकार्थ्य।

वह अपनी भावना को अँगड़ाई लेकर, उँगली चटकाकर व्यक्त करती है। ममता, अभिलाषा, कामना का त्याग सम्भव नहीं। वह कहती है–

''ममता का त्याग नहीं सम्भव, कहने सुनने की सब बातें।

कुछ वेद कहे, कुछ धर्म शास्त्र जीवन की अपनी ही घाते।[73]

गौतम उसके आवेग को कम करने के लिए याज्ञवल्कि की पत्नी कात्यायनी और मैत्रेयी की कहानी सुनाते हैं। किन्तु अहिल्या सो जाती है और तृतीय दृश्य में वह स्वप्न में इन्द्र से प्रेमालाप करती दिखाई देती है। वह इन्द्र को अपनी कामना का प्रतीक समझती है। जब वह स्वप्न की पीड़ा से मुक्त होती है तब उसे वास्तविकता का ज्ञान होता है। वह गौतम से कहती है कि मैरी चेतना ''सती'' नहीं रह सकी । मैं इन्द्र का सपना देखने लगी थी। गौतम को अपने कार्यों पर पश्चाताप होता है। वे कहते हैं–

''आत्म यंचना मेने की है, दण्डनीय में आप ही

पुण्य से न जो तुम्हें पा सका, मेरा जीवन पाप ही।[74]

ऋषि मूर्छित हो जाते है, अहिल्या के मन में एक आवाज गूँजती है कि मैं क्या कहूँ? और तभी मूर्छिक्त ऋषि के मुँह से सहसा 'पाषाणी' शब्द निकलता है यह सुनकर अहिल्या जोर से चीखती है। यहाँ शास्त्री जी ने पाषाणी शब्द का प्रयोग मनोवैज्ञानिक पृष्ठ भूमि पर किया है। अहिल्या को महर्षि गौतम ने, इन्द्र के साथ सम्भोग करने के कारण 'पाषाणी' बन जाने का अभिशाप दिया था। इसी बात को लेखक ने मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया था। अहिल्या 'तन तो तन है, पर मन क्या है? कहकर अपने को निर्बल और शंकाकुल प्राणी कहती जो

कुंठाओं का शिकार बन जाती है।

तपोवन के तात्विक वातावरण में यौवन से परिपूर्ण अहिल्या का मन विचलति हो उठता है। उसका चरित्र द्विधा परिपूर्ण है। जहाँ वह उप चेतना में 'शची' बनने का स्वप्न देखती है वहीं चेतना में वह इन्द्र को क्षुधित भक्षक मानती है। लालसा और संयम के बीच झूलती अहिल्या जीवन में विश्राम नहीं पा पाती। नारी सुलभ भावना, कोमलता और सहृदयता उसमें हो वह आत्म–समर्पण करती हुई कहती है–

''नारी मात्र कदर्थित क्यों हो

पास अहिल्या आपके

जो चाहें सो इसे कहें

यह योग्य दण्ड के शाप के।[75]

वह अपनी उन्मत्ता के लिये पश्चाताप करती है। वह सोचती है कि न तो उसने ज्ञान ही प्राप्त कर पाया और न माया ही प्राप्त कर सकी ।

महर्षि गौतम संयमी और ज्ञानी हैं। किन्तु वे स्त्री के हृदय और भावनाओं के पारखी नहीं। कामुतावश वे वृद्धावस्था में अहिल्या से विवाह करते हैं अन्त में उन्हें अपने कार्य पर पश्चाताप होता है। वे कहते है–

''नाम मेरा तुम पुकार–पुकार

करो, गौतम है तुम्हें धिक्कार।

X X X

आत्म वंचना मैनें की है

दण्डनीय मैं आप ही।

X X X

मेरा लक्ष्य अलक्ष्य

लेकिन तुम बढ़ती गई

अनन्त तक।[76]

संवादो की दृष्टि से पाषाणी उत्तम है। उसके संवाद तीक्षण और मनोविकार को प्रकट करने में पूर्ण सक्षम हैं। उनमे नाटकीयता और कथानक को गति देने की क्षमता है। पाषाणी की भाषा संस्कृत निष्ट है। कहीं–कहीं तो पूर्णतया ऐसी भाषा का प्रयोग हुआ है–

"प्रास्थानिक स्वस्त्ययन? और कोई सकाम निष्काम

क्षमा देवि मैं चली, निशा, की शेष प्राथमिक याम।"77

1– सात्वकिता की सूखी पपड़ी, राजस–रस से गीली

2– एक भेद की बात कि तुम हो पूर्ण चन्द्र का रूप

सागर का अभिनय करता है, मेरा जीवन कूप"

3– यह विष–लता आप चन्दन तरु,वर्षों का सहवास ही

4– दिन भर झरते है विकच सुमन

भर रात टूटते तारक गण

हैं शुष्क धरा है शून्य गगन

मै भावुकता–नादानी हूँ

कैसे कहते पाषाणी हूँ।[78]

कथानक मन की भावनाओं के द्वन्द्व में थपेड़े खा कर ही आगे बढ़ता है। कहीं– कहीं प्रतीकात्मक चित्रण भी सुन्दर है–

"चरमरा उठे हरित भरित द्रुम, धूम हुआ अंगार

ये निरीह मृग शिशु बन बैठे व्याघ्र–सिंह अवतार।[79]

संगीत का दृष्टि से भी पाषाणी अभिनव है। संध्या से लेकर प्रातः तक गाई जाने वाली राग– रागिनियों का प्रयोग इसमें हुआ है।

"पावन वन अंचल में क्यों कर चंचल मन का दीप" यह प्रारम्भिक दीपक राग है। वैसे ही आगे चल कर ब्रह्ममुहर्त को साकार करने के लिए "प्रिय प्राण प्रबुद्ध हमारे हो"– ऐसा मंत्र गीत प्रयोग में लाया गया है। प्रबुद्ध जैसे अगेय शब्द का भैरव, रामकली अधिघोटी में सहज भाव से स्वीकार कर लेता है।[80] एक उदाहरण देखिए–

"पर्वत चुप सिन्धु गजरता है,

रे किसको कौन बरजता है।

क्या ऊँचाई क्या गहराई

मैं तो समतल की वाणी हूँ।"

इस प्रकार संगीत, नाटक और काव्य तीनों ही दृष्टियों से पाषाणी सुन्दर है। अभिनेयत्व की दृष्टि से पाषाणी मैं कुछ कमियाँ हैं। अहिल्या का स्वप्न और इन्द्र के साथ उसकी बातचीत को रंगमंच पर प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। रेडियो पर तो इसका प्रयोग सम्भव है किन्तु मंचीय दृष्टि से नहीं।

5. मंजरी– मंजरी पाँच दृश्यों की त्रासदी है जिसकी प्रेरणा राजशेखर से ली गई। राजा चन्द्रपाल अपनी सुन्दरी रानी के साथ सुखमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं। दोनों में अपार प्रेम है। किन्तु एक दिन रानी के एक गुरु योगी भैरवानन्द अपने योग चमत्कार के प्रदर्शन के लिये योग विद्या के बल से कुन्तल देश की राजकुमारी मंजरी को उठवा मँगाते है। यहीं से राजा और रानी के दुर्दिन प्रारम्भ होते हैं। राजा मंजरी को देखकर उसे पाने को बैचेन हो जाते हैं और रानी क्रोधित होकर मंजरी को बन्दी खाने में डाल देती है। यद्यपि मंजरी को राजा का प्रणय निवेदन स्वीकार नहीं है, क्योंकि वह किसी अन्य से प्रेम करती है।

एक दिन राजा अपने विश्वास पर विदूषक के साथ प्रणय निवेदन करने मंजरी के पास जाते है। मंजरी महाराज का प्रस्ताव अस्वीकार करती हुई कहती

है–

"आप रहेंगे महाराज

रानी होगी बेचारी

हम असमय में फूल उठें

निर्गन्ध? पवन बन चारी।

राजा राजकुमारी की बात सुनकर मूर्छित हो जाते है। मंजरी को इस पर बड़ा पश्चाताप होता है। वह सोचती है कि मैंने क्या कर दिया। राजा की जीवन रक्षा के लिये महारानी स्वयं मंजरी को विवाह के लिए प्रोत्साहित करती है, किन्तु मंजरी रानी के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करती है। वह बेटी को यह कहने के लिए मंजरी के पास भेजता है कि महाराज ने मंजरी को पाने के लिए कुन्तल पर आक्रमण करने का आदेश दिया है। मंजरी राष्ट्र रक्षा के लिए प्रस्ताव स्वीकार कर लेती है।

मंजरी महारानी से थोड़ा समय माँगती है। द्विधा उसके मन में संघर्ष उत्पन्न कर देती है। मंजरी अन्त में आत्म हत्या का निर्णय करती है और अपने कलेजे में कटार चुभाकर प्रणांत कर देती है। मंजरी की मृत्यु के सामाचार से चारों और हा हा कार मच जाता है। गुरु भरैवानन्द इसके लिए अपने को उत्तरदायी मानते है। वे कहते हैं–

"मंजरी तुम्हें मैंने मारा।

में पतित अधम मैं हत्यारा

X X X

जैसा हँसता था, हँसता हूँ

मैं राज कुलों को डसता हूँ।"[81]

भैरवानन्द जी अन्त में मर जाता है। राजा भी पश्चाताप करता हुआ

कहता है–

मंजरी मंजरी मरी कहाँ?

मैं बीच सिन्धु वह तरी कहाँ।

मंजरी, मरु में खेद नहीं

हो हम दोनों में भेद नहीं

X X X

"मैं जिऊँ और सौ बार मरू

मैं हार हार हर बार मरू।"[82]

मंजरी में पात्रों के चरित्र पूर्णता स्पष्ट हैं। राजा प्रेमी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्रणय निवेदन में असफल हो जाने पर मूर्छित हो जाना, विदूशक के माध्यम से कार्य करना, उसे अन्तरंग बनाना और राजा के परम्परागत सामन्तीय स्वरूप को प्रकट करते है। पति प्रशन्नता के लिए वह स्वयं मंजरी को विवाह के लिए मानने जाती है किन्तु वह ईष्या से बच नहीं पाई। इसलिए वह मंजरी को बन्दी बना लेती है। उनमें नाटकीयता और अभिनेयता है उदाहरण के लिए–

राजा– सत्य अभय होता है।

दया करो ईश्वर के प्रति।

विदूषक–– ईश्वर निर्दय होता है।

राजा– तो क्या मंजु मंजरी मेरी।

विदूषक– नहीं अदृष्ट अनूठी।

राजा– मण्डप की शोभा बढ़ा रही।

विदूषक– नहीं आपसे रूठी।

राजा– ऐसा क्यों कोई न मनाता।

विदूषक– सब सुहागिनें हारीं।

इसी प्रकर के कथोपकथन मंजरी में भरे पड़े है। चेटियों का संवाद, राजा विदूशक और भैरवनान्द के संवाद इसी प्रकार के है।

मंजरी की भाषा पात्रानुकूल है। भैरवानन्द के परिचय में–

"मण्डित सिर, मस्तक पर टीका, फीका मंगल तारा

वज्र कपाट–सपाट–वक्ष पर अक्षत चन्दन माला।"[83]

साामन्ती प्रशस्ति सी प्रतीत होती है। इस वर्णन में भैरवानन्द का बिम्ब स्पष्ट हो जाता हैं। मंजरी की भाषा में थिरकन और बहाव है जब विदूषक कहता है–

स्वर्ण– ताम्र पिंजरित आम्र की, मंजु मंजरी खाएँ।

पिएँ सुरभि, केशर अशोक की, गुन गुन गुन गुन गाएँ।"

तब ऐसा लगता है जैसे भाषा स्वयं गुन गुना रही हो

वियोग, करूण और पश्चाताप की भाषा देखिए–

मंजरी मंजरी मरी कहाँ, मैं बीच सिंधु वह तरी कहाँ

X X X

मैं जिऊ और सौ बार मरूँ मैं हार हार हर बार मरूँ

है मृत्यु विजय बलिदानी की, परिणति करुणा कल्याणी की।"

मंजरी के मन के संघर्ष को देखिए–

हम तो बिना नेह के दीपक, क्यों कर हमको बालो

इष्ट जलाना हो जो बन्दी, घर में आग दो।

X X X

हमे योग पथ से बुलवाया, हम सब भोग पथी थे

क्या जाने हम योग–ढोंग को, हम कब धर्मरथी थे।

X X X

हम तो क्वारी किरन, घटावन, हमको मन्द किया क्यों।''[84]

नाटकीयता की दृष्टि से भी 'मंजरी' सफल है। रंग संकेतों में कहीं–कहीं रेडियो शिल्प की प्रधानता दी गई है। जैसे आँधी का चलना, बिजली का कड़कना, सन–सन हवा का चलना, घोड़ों का हिन हिनाहट आदि। इस प्रकार नाटक संगीत और काव्य की त्रिवेणी मंजरी में बही है।

तमसा–'तमसा' जानकी वल्लभ शास्त्री का दूसरा गीतिनाट्य संग्रह है। जिसमें भी पाषाणी के भाँती ही पाँच गीतिनाट्य संग्रहीत है। मदन दहन, तमसा, मुक्त पुरुष, पांचाली और गोपा।

तत्कालीन और आधुनिक परिस्थितियाँ अतीत और अनागत से अनिच्छा गुंथी हुई है। जैसे सागर का जलता हुआ, जल गगन से छनकर पावस का रस बन जाता है।''[85]

इसमें पाँच महान विभूतियों–शिव, वाल्मीक, कृष्ण, पाण्डव और गौतम के जीवन में घटित घटनाओं का वर्णन है। इन सभी नाटकों में मानव जीवन के राग तत्वों को भावनाओं और अनुभूतियों की द्वन्द्वात्मक तीव्रता और गहन मार्मिकता में उबारा गया है। वेदना इन गीतिनाट्यों में राशि–राशि बिखरी पड़ी है। इस वेदना के गिर्द ढेर सारी रुढ़ियाँ हो सकती है, अन्धविश्वासों का पहाड़ हो सकता हैं, नीति धर्म आदि का उज्ज्वल अन्धकार भी हो सकता हैं, किन्तु वेदना है जो किसी के घेरे में नहीं घिरती।[86]

मदन–दहन–'मदन–दहन' पौराणिक गीतिनाट्य है, जिसमें योगिराज शंकर द्वारा कामदेव को भस्म करने की पौराणिक कथा अंकित है। इसमें कुल तीन दृश्य हैं। प्रथम दृश्य में शंकर की अखण्ड समाधि का चित्रण है। देवर्षि नारद, देवराज तथा अन्य देवताओं के साथ शंकर, जय अभय शंकर 'गरल कण्ठ–धारी' कहकर शिव की आराधना करते हैं और असुरो से रक्षा करने की प्रार्थना करते हैं।

किन्तु शिव की समाधि नहीं टूटती। देवराज कहते है कि हमारी प्रार्थना स्वार्थमयी है, जब कि शिव अनादि काल से योगी है–निष्काम योगी। भला उन पर क्या प्रभाव होगा–

"स्वार्थमयी प्रार्थाना हमारी

शिव स्वेच्छा से योगी।

हम हैं पिछले मूल पुण्य के

चक्र व्याज के भोगी।"

द्वितीय दृश्य में सदन वसन्त, उमामदन और मदन रति के सम्वाद है। मदन उमा के पास जाकर उनसे परिचय पूछता है। किन्तु उमा उत्तर नहीं देती। तभी वसन्त आकर अपना परिचय देता है।

वह कहता है मदन संसार का मन है, और वसन्त संसार का तन है, हम दोनो चिरकाल से साथ–साथ विचरण करते है। उमा बताती है कि मैं हिमालय की पुत्री उमा हूँ। जब मानव का मन फिसल जाता है तब योग के शिखर से वह भोग के कीचड़ में फँस जाता है। मदन और वसन्त कहते हैं कि मै ऐसा कार्य कर सकता हूँ जिससे कि योग पूरा तो जाय।

उमा की सखियाँ दोनों से प्रार्थना करती है कि यदि तुम उमा का उपकार ही करना चाहते हो तो ऐसा उपाय करो जिससे उमा शिव की प्यारी हो जाये। दोनो शंकर की योग निद्रा को भंग करने में डरते हैं। मदन कहता है–

"जब निष्काम कामना उनकी बिना दाम की चेरी

उसे स्वामिनी बना सकूं ऐसी न साधना मेरी।"[87]

रति कहती है कि तुममें इतनी शक्ति है कि यौवन की मदिरा उड़ेल दो। वह अपने से अपने का मिलन है इसे सुनकर उमा क्रोधित हो उठती है। रति कहती है कि इसमें बुरा मानने की बात नहीं है। मैं भी नारी हूँ , नारी की पीड़ा

को समझती हूँ। रति की चुनौती को अन्त में स्वीकार कर लेती है।

तृतीय दृश्य में उमा की विरह जन्म पीड़ा का चित्रण है। वह अन्तर्द्वन्द्व में फँसी निश्चय नहीं कर पाती कि योग में मन रमाये या भोग की ओर आकर्षित हो।

"क्या करुँ? कौन पथ अपनाऊँ?

मन का पथ मन के पार गया

मूर्च्छित सो है चेतना हुई

पिक कितनी बार पुकार गया।"[88]

वह सोचती है–

"मान नहीं, मनुहार नहीं

ऐसा कैसा यह प्यार।

मैं पद तल की रेणु उदासी

तुम किरणों के पार।

वह स्वयं प्रश्न करती है–

"मेरी आन्दोलित तन्मयता, किसके मुँह से है बोल रही

मेरी अर्न्तध्वनि मौन, उसे है कौन प्रतिध्वनि खोल रही।[89]

मदन और वसन्त अपना जाल फैला देते हैं। सारा वतावरण मादक हो जाता है। योगिराज शंकर का मन चंचल हो उठता है। वे आँख खोलकर देखते हैं कि मदन उमा के पास बैठा काम–बाण मार रहा है। वे क्रोधित हो उठते है और काम को भस्म कर देते है। आकाशवाणी के इन शब्दों के साथ वह गीतिनाट्य समाप्त हो जाता है।

"शीतल शाप सहा सुन्दर का शिव का ताप तरल वर सहजा।"

मदन दहन का द्वितीय दृश्य सर्वोत्तम है इसमें उमा के मन की पीड़ा, संघर्ष और वेदना को सुन्दर ढंग से चित्रित किया गया है। योग और भोग का संघर्ष

अनादि काल से चला आ रहा है। भगवान शंकर ने योग का निरादर करने पर भोग के प्रतीक मदन को भस्म कर दिया था। रति को योग को भी विराट भोग की संज्ञा देना कवि की अपनी कल्पना करना है–

"तुम जिसे योग कहते, विलास है वह भी

केवल अपने से मिलन, विराट विरह भी।"[90]

राग शुद्ध कल्याण, राग वसन्त, त्रिताल, दादरा आदि के माध्यम से शास्त्री जी ने भाव संगीत की अनुपम धारा प्रवाहित की है। 'वसन्त' में यह गीत बहुत सुन्दर बन पड़ा है–

"मंजराई अंगड़ाई, आई ऋतु सनेह–रस–सींची

फूलों से ढ़क गई डगरिया, वन की ऊँची–नीची

कनक–कमल की खुली पंखुरियाँ निकली गन्ध कुमारी

फुनगी फुनगी हिला गई है, हँसी पवन को प्यारी।[91]

काव्यत्व की दृष्टि से भी 'मदन–दहन' सुन्दर बन पड़ा है। अलंकारिक एक चित्र देखिए। पार्वती का मन कैसा हो गया है–

"अरविन्द खिल उठा मानस में, है प्राण रसाल अशोक हुए

मल्लिका बल्लरी देह हुई, दृग नील नलिन के ओक हुए।

हिम के दर्पण चमक रहे, मेरे प्रतिबिम्ब सहस्त्र अरे

गा रही रश्मियों की परियाँ, रस मेरा रूप अजस्त्र झरे।"[92]

देशकाल और वातावरण की दृष्टि से भी यह गीतिनाट्य पूर्ण सफल है। वासन्ती पृष्ठ भूमि में माया कुमारियों के गीत, केसर कुमकुम के रंग में रंगी कुसुम्बी धरती की संगीत लोध्र–कुसुम कुमकुम पराग का इन्द्रधनुषी वातावरण सहज ही नाटकीय कलेवर को आलोकित और अंलकृत कर देता है।

शब्दों के साथ 'टिवस्ट' और 'राक एन राल' करने वाले शास्त्री जी जब बसन्त

राग–

"धधक–धधक अनल–शिखा

तुझे लपेट के लपट?

कुचक्र रच चुका बहुत

निरर्थ और छल–कपट।"

वास्तव में नाटक–काव्य और संगीत की त्रिधारा में आकण्ठ डूबा 'मदन दहन' गीतिनाट्य शास्त्री जी का अभिनव प्रयोग है। भावनाओं की तीव्रता रागमयी भाषा में साकार हो गई है।

तमसा– 'तमसा' संग्रह का दूसरा गीतिनाट्य है। समस्त कथानक चार दृश्यों में बटा हुआ है। प्रारम्भ में प्रस्तावना है जिसमें पुरूष और स्त्री नैरेटरों के माध्यम से रामायण कालीन वातवरण और घटनाओं का संकेतात्मक वर्णन है। नैरेटर बहेलियों के आगन की सूचना देता है। महर्षि वाल्मीकि अपने शिष्य भारद्वाज के साथ तमसा में स्नान करने आ रहे है। वहीं बहेलियों का एक दल आता है। ये 'हो–हो–हो–हाल–हाल, कहते हुए आते है और उड़ते पक्षियों की ओर निशाना साधकर बैठ जाते हैं। शिष्य भारतद्वाज आखेटकों को देख कर दुःखी हो जाता है। वह कहता है–

" यह अकाण्ड ताण्डव मुनि वर, यह खण्ड प्रलय की छाया

हिंसा की लोलुप रसना के, रक्त रंग बरसाया"[93]

मानव में ये दोनों गुण है वह ऊँचा भी है और गहरा भी किन्तु फिर भी वह मर्यादा का पालन नहीं करता।

एक घाट पर स्नान करने दोनों रुक जाते हैं। कुररी के जोड़े को देखकर गुरु शिष्य मुग्ध हो जाते हैं। दूसरी ओर घात लगाए बहेलिया को देखकर कहते हैं कि यदि हिंसक पशु अपराध करें तो उसके पशुत्व को दोष दिया जावेगा, पर

मनुष्य तो दयावान, त्यागी, और सन्तोषी कहलाता है, यह यदि पशुता कार्य करे तो किसे दोष दिया जावेगा? महर्षि बताते हैं– कुछ ऐसे भी व्यक्ति हैं जो नर होकर भी पशु हैं–

"नर पशुओं का वर्ग प्रथक है, उसे भूल क्यों जाते

X X X

व्याघ्र सिंह जो नर भक्षी है, उन्हें नहीं नर खाता

X X X

है निरीह जो जन्म जात, तृण कंद मूल फल जीवी

करत हत्या हाय उन्हीं की, यह नर सिंह विधाता।"[94]

अन्ततः बहेलिया चकवे की हत्या कर देता है। महर्षि माँ निषाद कहते है।

द्वितीय दृश्य में महर्षि की कल्पना है। ग्रीष्म वर्षा शरद, हेमन्त, शिखिर और वसन्त से सम्बोधित करती है। महर्षि मानव की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए उसे ईश्वर से भी बड़ा निरूपित करते हैं–

"तु मनुष्य है, तू सकता है भोग लालसा त्याग

कोटि–कोटि योनियाँ श्रेष्ठतम तू मनु की सन्तान

औरों से हो सकता, तुमसे नहीं बड़ा भगवान।"[95]

तृतीय दृश्य में चकवे के हत्यारे बहेलिया का निर्वेद है। वह निर्मम हत्याओं के आत्म ग्लानि में डूब जाता है और निश्चय करता है कि वह आखेट करना छोड़ देगा और कृषि करके अपना जीवन यापन करेगा।

चतुर्थ दृश्य में जानकी के वाल्मीक आश्रम में आगमन की घटना है। सीता को देखकर महर्षि राम कथा लिखने का निश्चय करते हैं–यही कथानक है।

'तमसा' गीतनाट्य का मूल विषय मानव की प्रवृत्तियों का उद्घाटन है। मानव की महत्ता कवि ने ईश्वर से भी बड़ी निरूपित की है। राम और सीता उसी

के प्रतीक हैं। चरित्र टाइप बन कर रह गये है। दो प्रकार के पात्र है–

1. सात्विकी वृत्ति के 2. तामसी वृत्ति के। महर्षि, भारद्वाज सात्विकी तथा बहेलिया और उसके साथी तामसी वृत्ति के हैं। इन्हीं दोनों का संघर्ष है। कुछ अशरीरी पात्र है। जैसे– ऋतुएँ । कथोपकथन सुन्दर, छोटे और नाटकीय कला से परिपूर्ण हैं। यथा–

शिष्य– "तो गुरुवर उद्धार दुर्वलों का होगा फिर कैसे।"

वाल्मीक–"राहु केतु से चन्द्र सूर्य का गृहण न हो बस वैसे।"

शिष्य– "चन्द्र सूर्य भी क्या दुर्बल है।"

वाल्मीक– "ग्रहण और क्या कहता।"96

लेखक वातावरण–सृजन में पटु है। संगीत के माध्यम से सुन्दर वातावरण प्रस्तुत किया है। प्रस्तावना में 'तमसा' का वर्णन बहेलियों का गीत ऋतु वर्णन आदि में वातावरण सुन्दर हो उठता है। कहीं–कहीं सुन्दर बिम्ब प्रस्तुत किय गये हैं यथा–

"मुनिवर, वह चकवे का जोड़ा

लहक रहा सा तन से

कैसा चहक रहा है बैसुध

क्षण भंगुर जीवन से

इधर घात में है बहेलिया

सर पत के झुर मुट में।[97]

चकई के चीत्कार और तड़पन का साकार दृश्य उपस्थित हो जाता है–

"पहले चकवे को घेरा, सूँघा रक्तिम तन हेरा

अन्तिम विदा सजल स्वर से, माँगी रक्त पोंछ पर से

फिर चिर ममता त्याग गए, यहाँ वहाँ खग भाग गये

केवल चकई तड़प रही, रुधिर बहा, जलधार बही।''[98]

क्रौंच को देखकर महर्षि वाल्मीक के शब्द जहाँ हृदय की वेदना और अन्तर्द्धन्द्व का वर्णन करते हैं वहाँ काव्यानन्दन भी प्रदान करते हैं–

''ओ क्रौंच तुम्हारे उर का रुधिर गगन में

क्रौंची का क्रन्दन हन्त, दिगन्त गहन में''

X X X

''पतझर में, मधुकर मधु गानों में

जलते निदाध, गीले पावस प्राणों में

ओ क्रोच मिथुन, क्रन्दन क्रन्दन त्रिभुवन में।''99

ऋतु वर्णन में कवि की काव्य प्रतिभा दर्शनीय है। वर्षा का यह वर्णन जहाँ मन मोह लेता है–

कज्जल जलधर–धार पार कर, शरद विरद ऋतु आई

उड़ी गंध मकरंद पगी सी, झीगी लतिका लगन लगी सी

खंजन–चितवन ठगी ठगी सी, निरख रही अंगनाई।

वहीं हेमंत वर्णन की बानगी भी देखिए–

''स्वर्ण वालियाँ झुकी मेड़ पर खत धान की धानी

सन–सन पवन झकोर फुनगियों से करता मन मानी

हेमंती मनुहार, वार दो, कवि रसवती वाणी

दो उदान्त प्रतिमान भी, जीवन न हो हिमानी।''[100]

नाटकीयता भी है। यद्धपि इन नाटकों को अभी मंच पर प्रस्तुत नहीं किया जा सका किन्तु रेडियो पर इनका प्रसारण सफलता पूर्वक हो चुका है।

मुक्त पुरुष–'मुक्त–पुरुष में भगवान कृष्ण के जीवन की क्षणिक झाँकी प्रस्तुत की गई है। कृष्ण के जन्म से लेकर गोकुल त्याग तक की घटनाओं को ही

किंचत परिवर्तन के साथ 'मुक्त–पुरुष' में दुहराया गया है। इसमें कुल सात दृश्य हैं। छटवें और सातवें दृश्य अत्यन्त लघु हैं।

प्रथम दृश्य में दो साधू पुरुषों का वार्तालाप है। वे कृष्ण को 'मुक्त पुरुष' की संज्ञा देते है। वे कहते है कि 'मुक्त–पुरुष' के आने के बाद मानवता मुक्त हो जायेगी। उसके आने पर सारी कठिनाइयाँ दूर हो जायेंगी। 'दुर्लभ होगा सलभः कठिन पिघला सा दूर समीप।' कहते हुए दोनों साधु पुरुष के आने की बात ओहते हैं।

द्वितीय दृश्य में कंस के अत्याचार और देवकी के छैः पुत्रों के वध का वर्णन है। कंस का अहम् अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया है। वह कहता है–

"यह सारे भूपति, दलपति यह सारा राज समाज
आज हमारी मुट्ठी में है, हम सब के सरताज।"

लेकिन उसका मन भावी आशंका से भ्रमति है।

तृतीय दृश्य में कृष्ण का जन्म का संकेतात्मक चित्रण है। 'मुक्त पुरुष' के जन्मते ही कारागार की श्रृंखलाएँ टूट जाती है। देवकी, वसुदेव, गोपियाँ, नन्द सभी प्रसन्न है। कृष्ण नन्द भवन पहुँच गये है–गोपियाँ 'नाच रे मयूर' कह कर हर्ष प्रगट करती है, तो वसुदेव 'गौरव यह क्या कम है।' देवकी आशीर्वाद देती है कि मेरे पुण्य जियो तुम, मेरे पाप भरे संग मेरे इसके कारण पूतना शकटासुर, तृणावर्त धेनुक, प्रलम्ब की माया नहीं चली और कृष्ण ने सभी को मार दिया। शायद राम फिर से नवीन शरीर धारण कर आये हैं।

चतुर्थ दृश्य में कालिया दमन का वर्णन है। दावाग्नि मोचन का वर्णन भी इसी में है। वे इन्द्र के स्थान पर धरती को महत्व देते है। इसी के अन्त में कृष्ण से राधा के मिलन का संकेत भी है।

"नींद खुली जो आज अचानक

बोल उठे ये चित्र

जिन शिशुओं का वध कर डाला

हम है उनके मित्र।''[101]

कंस अपने आप ह्रदय की दुर्बलता का वर्णन करता हुआ कहता है–

''यह कैसी दुर्बलता मन में

कैसा तन में कम्पन

नैन फड़कता वाम

सामने तम का निर्मम निर्जन।''

इसी प्रकार कृष्ण के ब्रजभूमि की छिनती गोद, छूटता प्यार–

''यह सुर मुन हर नदी–किनारा वर पीपल की छाव

यह मिट्‌टी के हाथी घोड़े, यह गैयो का गाँव।''[102]

उनके मन में वितृष्णा जाग्रत हो जाती है–

''अब सब दुर्लभ, सुलभ एक रस, आयोजन संघर्ष

किससे प्यार, घृणा किससे, किसलिये शोक या हर्ष।''

देशकाल और वातारण की दृष्टि से भी मुक्त पुरुष में न तो कोई नवीनता है और न सुन्दरता। शास्त्री जी ने राग रागनियों का संकेत भी कम ही दिया है। हाँ–ध्वनि संकेत अवश्य दिये गये हैं। इसका मूल कारण यह हो सकता है कि लेखक को रचना करते समय रेडियो प्रसारण का ध्यान था।

पांचाली– 'पांचाली' तमसा संग्रह का चतुर्थ गीतिनाट्‌य है। इसमें द्रोपदी के स्वयंवर और इनके बाद की घटनाओं का वर्णन है। कुल तीन दृश्यों में फैली पांचाली की कथा का मूल केन्द्र बिन्दु यह है कि–द्रोपदी किस प्रकार पांच पतियों की पत्नी बनी । द्रोपदी का स्वयंवर हो रहा है। देश–देश के महीप एकत्र हैं। पांचाली वर माला लेकर रंग भूमि में पधारती है। कर्ण, दुर्योधन, शाल्व आदि

असफल लक्ष्य बेध कर चुके है। अर्जुन जो ब्राह्मण भेष में सभा में उपस्थित थे लक्ष्य बेध की अनुमति माँगते है। अनुमति मिलने पर लक्ष्य बेध करते हैं और कृष्णा ब्राह्मण वेशधारी अर्जुन के गले में वर माला डाल देती है।

द्वितीय दृश्य में अर्जुन और भीम के संवाद से पांचाली को पता चलता है कि लक्ष्य वेध कर उसे वरने वाला और कोई नहीं, महान धुनर्धारी वीर अर्जुन है वह गद्गद् हो जाती है। भीम बताते है कि हम लोगों ने पहले ही तुम्हें वरण करने का निश्चय कर लिया था हम लोगों ने सोचा था–

"धर्म लक्ष्य होता तो निश्चय, धर्मराज की जय होगी
लक्ष्य बाहुबल होगा तो, वरमाला मुझे पहनाओगी
लक्ष्य धनुष का कौशल हो, तो अर्जुन का है जोड़ नहीं
लक्ष्य रूप तो युग्म बन्धुओं से बद पाती होड़ नहीं।[103]

अर्जुन द्रोपदी के रूपगुण की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते है। देर गये रात सभी अपने निवास स्थल पर पहुँचते है। देर होने से कुन्ती चिन्तित हो जती है। अर्जुन बाहर से ही कहते हैं–

"माता लो आ गए, आज की भिक्षा तो देखो कैसी।"

और कुन्ती अन्दर से उत्तर देती है–

"देखूँ क्या? पाँचो मिल भोगो,
भिक्षा तो भिक्षा जैसी।"[104]

लेकिन जैसे ही वे बाहर आकर पांचाली को देखती है, अपने कथन पर पश्चाताप कर उठती है। वें कहती है कि मेरी चित्तवृत्ति स्थिर नहीं है। और सत्य भी नहीं है जिसके पाँच–पाचँ महान धर्नुधर वीरपुत्र वन–वन भटकते फिरे, फिर शान्ति कैसे मिल सकती है। अर्जुन निश्चय करते है कि– 'पांचाली हो पंचभर्तृ का।' किन्तु कुन्ती विरोध करती है। परन्तु पांचाली स्वयं स्वीकार कर लेती है।

तृतीय दृश्य अधिक मार्मिक है। इसमें पांचाली के हृदय की पीड़ा अधिक मार्मिक है। इसमें पांचाली के हृदय की पीड़ा प्रकट हुई है। पांचाली कोहवर मे जाकर क्रमशः पाँचों पाण्डवों की पद वन्दना करती है। पाँचों पाण्डव द्रोपदी के रूप की प्रशंसा करते है। और उसे अपने हृदय की रानी बताते हैं। पांचाली की सखी सुनन्दा द्रोपदी को अकेला छोड़ कर द्वार बन्द कर देती है। कुन्ती कहती है–

" जिसके पाँच–पाँच बेटे वन में फिरते हों मारे

धृर्म–धुरन्धर बाहुबली, बेजोड़ धनुर्धर ओ प्यारे।

उस माता की चित्त वृत्ति सन्तुलित रहेगी क्या बोलो

पागल का प्रलाप सुनकर जीवन रस से मत विष घोलो।[105]

पांचाली–माता की आज्ञा कि करुँ मैं पाँच हृदय के खण्ड।

सुनन्दा (हंसकर)– कम इससे क्या सधी सास दे नई बहू की दण्ड।

पांचाली– माता की आज्ञा कि एक ले अस्थि दूसरा चर्म।

सुनन्दा– प्राण तत्व में नारी खाये नर नारायण धर्म।

पांचाली– माता की की आज्ञा कि बनाऊँ पंच सौध आकाश।

सुनन्दा– धरती का सिर एक छिपाने का यह प्रगट प्रयास।"[106]

नारी जीवन की कितनी सुन्दर व्याख्या की गयी है–

"नारी जीवन गीला ईधन, आग घुँआती घी में

झूँक रही है साँस साँस मेरी तो पाँचो घी में।"[107]

गोपा– अन्तर्द्वन्द्व ओर संघर्ष की दृष्टि से श्रेष्ठ बन बड़ा गीतिनाट्य 'गोपा' का समबन्ध यशोधरा के जीवन से है। गौतम की विरक्ति गृह त्याग और पत्नी के प्रति उपेक्षा ने गोपा के हृदय को खण्ड–खण्ड कर दिया है। उसका मन विराट वेदना और उदासी से भर जाता है। विरहिणी मान–सम्मान की रक्षा करते हुए अपने प्रिय के दर्शन कों उत्सुक है। वह सोचती है कि क्या करण कि वह अपने

पति के हदय को पहचान नहीं सकी।

'जी........के जी की बात न जानो' कहकर वह बैचेन हो जाती है। उसकी सखी शेफाली राजकुमार सिद्धार्थ के रूप सौन्दर्य की चर्चा करके उसका मन बहलाना चाहती है। गोपा कहती है कि वे सुन्दर होते हुए भी हृदय हीन है, तो शेफाली कहती है वे भले ही हृदयहीन हो पर तू तो सरल है। क्या उनके मन को रस सिक्त नहीं कर सकती।

"शेफाली क्या राहुल भी छल कर, मुझे कहीं चल देगा। इस आंशका से यशोधरा बैचेन हो जाती है। राहुल एक दिन उससे पूछ बैठता है–

माँ तुम्हें अट्टालिका प्रसाद–

क्यों बहुत प्रिय ? छोड़ मोह प्रमाद–

मैं डुबोती जा रही दिनमान

तुम्हें कुछ कहत न सांझ विहान।[108]

पुरानी स्मृतियाँ हृद्‌तन्त्री को झकझोर देती हैं। वह सोचती है– वह कौन है जो उसके हृदय को उकसा रहा है। लेकिन उसकी–

"वेग विकल आँसू की धारा

उद्‌गम में है सूखी।"[109]

द्वितीय दृश्य में भी गोपा के विरह कातर हृदय का वर्णन है। भावुकता, स्मृति, विरह, दुख और मिलन की उत्कण्ठा उसके जीवन को बैचेन बना देती है–

"उनके उत्तरीय में उलझी परिमल की कौशय समीर

रूप दीप की स्निग्ध शिखाएँ झिलमिल करने लगी अधीर।"[110]

वह एक ऐसी सरिता है बंधनों में बधकर चलता रहता है। वह प्रश्न करती है कि यदि वह भी वन चली जाय तो कैसा रहे। जब उसकी सखी कहती है कि सीता जी भी तो वन गयी थी। तो 'गोपा' तुलना करती कहती है–

"सीता तो थीं प्रिया और मैं माता हूँ।

वह सहचरी, अरी मैं तोड़ा नाता हूँ ।"[111]

तृतीय दृश्य में गौतम के आगमन और तज्जनित परिस्थितियों का वर्णन है। गौतम कपिलवस्तु आते है। नगर में नर–नारी उनके दर्शन को उमड़ पड़ते है, परन्तु गोपा नहीं जाती। अन्त में सब चले जाते हैं। लौट कर राहुल नहीं आता। इस समाचार को सुनकर भी गोपा विचलित नहीं होती। वह कहती है–

"बात नई क्या हुई, जानती थी मैं होनी अनहोनी।"[112]

इस बीच राहुल आ जाता है और सन्देश देता है–कि 'माँ भगवान' पधार रहे है। गोपा यह सुनकर आहत स्वर में कह उठती है–

"राहुल नहीं उन्हें ले रोक

X X X

और मुझे देगा क्या ज्ञान

माया ने पाया सम्मान

हैं समाधि मे मेरे प्राण

इन्हें न छेड़ो हे! भगवान।"[113]

'गोपा' का मुख्य वर्ण्य विषय गोपा के विरह–दग्ध–हृदय का वर्णन करता रहा है। उसके हृदय की मार्मिक अभिव्यजना हुई है। गोपा की यह भावाभिव्यंजना कितनी मार्मिक है–

"शूलों का श्रृंगार सज गया, फूल लिये में खड़ी रही।

भ्रम–संभ्रम ने पर फड़काये, मर्यादा तो खड़ी रही।"[114]

शास्त्री ने छोटे वाक्यों में जीवन–दर्शन को कितने सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है, इसकी झाँकी निम्न वार्तालाप से मिल जायेगी–

गोपा– जीवन क्या है?

शेफाली—तड़ित—तुलित सावन का धन।

जो गरजे, बरसे सुख—दुख के आँसू कण।

गोपा— सुख से लिपटा लिपटा सा दुःख चलता है।

शेफाली— दुख का स्नेह भरे सुख दीपक जलता है।

X X X

गोपा— जीवन क्या है ? मरण समझ में आता है।

शेफाली— मरण गगन है, जिस पर जीवन छाता है।''[115]

संघर्ष और सामंजस्य की सहजता एक अत्यन्त जटिल आन्दोलन को क्षणिक किन्तु निश्चित और परिपूर्ण सन्तुलन देने के सीमान्त बिन्दु पर ही उभर निखर सकती है।''[116]

सामान्य विशेषताएँ—शास्त्री जी की लगभग सभी रचनाओं का रस अतीत है। 'वासन्ती' इसका अपवाद है। 'गंगावतरण', 'उर्वशी', 'पाषाणी', 'मंजरी' सभी कथा वस्तु पौराणिक है। इन सभी गीतिनाट्यों में संगीत की प्रधानता है। इसी विशेषता के कारण उन्होंनें इन गीतिनाट्यों को संगीतिका की संज्ञा दी है। राग के स्वर जिस रस की ओर इगिंत करते रहे है। मेरे गीत के शब्द उसे ही मूर्त करने के प्रयासी रहे है। गीत—संगीत पृथक पृथक दिशाएँ मुझे प्रिय नहीं।''[117]

शास्त्री जी के गीतिनाट्यों की दूसरी विशेषता उनका अन्तर्द्वन्द्व है। जीवन की मार्मिक गम्भीर घटनाओं में तीव्र मानसिक संघर्ष के दर्शन होते हैं। 'पाषाणी' तो इसी संघर्ष का प्रतीक है। शास्त्री के सभी गीतिनाट्य भावात्मक के उच्च्य धरातल पर प्रतिष्ठित है।''[118]

शास्त्री जी के गीतिनाट्यों की तीसरी विशेषता भाषा की प्रांजलता है। सर्वत्र विशुद्ध परिमार्जित भाषा का प्रयोग हुआ है। इस दृष्टि से शास्त्री जी की भाषा प्रसाद से मेल खाती है। अलंकृत भाषा शैली, काव्यात्मकता प्रभावोत्पादक

भाावव्यंजना एवं मनःस्थितियों की अनुकूलता भाषा के प्रमुख उत्पादन हैं। शास्त्री जी का विचार है कि–"भाषा की अनलंकृति स्थिति सापेक्ष है, किन्तु उन्हे सन्तोष है कि उनकी अलंकृत भाषा अधिक आवेगपूर्ण है।"[119]

शास्त्री जी के गीतनाट्यों की तीसरी विशेषता अनत्यानुप्रास युक्त छन्दों का प्रयोग है। हिन्दी के अधिकांश गीतिनाट्य मुक्त छन्द में लिखे गये है। किन्तु शास्त्री जी ने जानबूझ कर अन्त्यानुप्रासों का प्रयोग किया है। वे लिखते हैं कि– "मैंने अपनी अभी तक की नाट्य रचनाओं में संगीतिका की शाब्दिक सार्थकता को लक्ष्य करते हुए गेह पदों को ही क्यों, परिसंवादों के लिए भी अन्त्यानुप्रासों की अनिवार्यता सी स्वेच्छया स्वीकृत की है। वे लिखते है कि–अन्त्यानुप्रासों ने मेरे भाव–प्रवाह को कहीं आकुलित नहीं किया? पद्यबद्ध परिसंवादों में जैसी तीव्रता सम्भव है मेरे छन्दों में भी है।"[120] तुकानत छन्दों से दो एक स्थानों को छोड़कर सर्वत्र भावाभिव्यक्ति में कोई अन्तर नहीं आ पाया जैसे–

"बस बस तप की मत बात करें, तपते–तपते मन ऊबा है।
मेरे जीवन का फुल्ल कमल आँसू के सर में डूबा है।"[121]

X X X

हे देवि दिख रहा मुख सूखा रक्तताम, तपित ज्यों सांध्य कमल
क्या बात तुम्हारा चित चंचल? क्या बात तुम्हारे दृग छल–छल।

सिद्धनात कुमार का विचार है कि–"किसी भी छन्द में गेयता और नाट्कीयता साथ साथ नहीं चल सकती। सम्वादों की नाटकीयता में बाधक है। तुकें रहने से एक कठिनाई और होती है वह यह कि इनमें सामान्य वर्णनात्मक अंश स्पष्ट परिलक्षित हो जाते हैं, जब कि अन्त्यानुप्रासहीन मुक्त छन्द में ऐसे अंश स्पष्टताः परिलक्षित नहीं हो पाते है।"122

महाराज हो क्षमा, महारानी में क्या अवगुण है

उन्हें छोड़ क्यों रहे? हुई कैसी सवार यह धुन है?

या

मैं तुम्हारी बात हूँ कब काटती

बस किसी विधि गर्त को हू पाटती

सम्बन्ध विशेषतः गीतिनाट्य में तो काव्यनाट्य तथा संगीत का सहज सम्बन्ध दिखना चाहिए अन्त में कहा जा सकता है कि शास्त्री जी के गीतनाटयों में काव्यकला, नाट्यकला और संगीत का कला अनुतम संयोग है वस्तुगत विश्वसनीयता सहज भाषा तथा अनिव शैली के कारण ये कला गत प्रौढ़ता के अप्रितम उदाहरण है।''[123]

हंस कुमार तिवारी—कुछ आलोचकों ने हंसकुमार तिवारी रचित ''पुनरावृत्ति''[124]की रचनाओं को गीतिनाट्य की संज्ञा देकर उनकी समीक्षा, गीतिनाट्यों में की है।''[125] लेकिन ये रचनाएँ गीतिनाट्य नहीं है। इसमें 'शकुन्तला', 'मिलन यामनी', 'मेघदूत', 'कच देवयानी' और 'पुजारिन' रचनाएं है। ये सभी संगीत रूपक है। इस 'मिलन यामनी' के तो अध्किांश सम्वाद गद्यात्मक है, केवल बीच बीच में गीत आये है। इसमें 'वासवदत्ता' की गाथा अंकित है। इसी प्रकार दो रचनाएं भी गीतिनाट्य नहीं है। इसमें न तो संघर्ष है न तो तत्व। कुछ गीतों के माध्यम से कथा को आगे बढ़ाया गया है।

चिंरजीत—इसी प्रकार चिंरजीत की रचनाएं भी गीतिनाट्य न होकर संगीत रूपक ही है। स्वयं चिरंजीत ने भी यह बात स्वीकार की है।[126]

कवि पत्नी— श्री सुमित्रा कुमारी चौहान—यह एक छोटा सा गीतिनाट्य है, जिसमें एक कवि की पत्नी का हास्य एवं व्यंग्यात्मक चित्रण हुआ है कवि की पत्नी एक ओर अपनी दरिद्रता और विवशता का रोना रोती है और दूसरी ओर पड़ोसिन से कहकर चुपचाप तोड़े बनवाना चाहती है।

कवि जब प्रातःकाल उठता है तो ऊषा के सौन्दर्य पर मुग्ध हो उसकी शोभा का बखान करता हुआ कहता है कि हे मेरी गृह लक्ष्मी उठो और देखो कि रसाल मंजरियों पर पक्षी किस प्रकार कलरव कर रहे है। पवन सुरभि से मदमाती हो संसार की अलकें चूम रही हैं–

"बन तरुओं के नीडों में है

जाग पड़ा मंगल कल–कूजन

नव रसाल मंजरियों का है,

फूल रहा मधु मादक यौवन।"[127]

कवि इस कोमलकांत भावना को पत्नी अपनी कर्कश मुद्रा से चूर–चूर कर देती है। वह उपालम्भ के स्वर में कहती है कि–"मेरी तो तुम्हारे साथ तकदीर फूट गई।" महरा हड़ताल किये है इसलिये मुझ पर काम का भार पड़ गया है। गृहस्थी का सारा बोझ मेरे ऊपर पड़ा है और तुम कल्पना लोक में विचरण करते रहते हो।

पत्नी को पति के ये उपदेश नहीं सुहाते। इसी बीच बच्ची राधा जाग जाती है और उठते ही बिस्कुट की माँग करती है। पति उसे खिलाने लगता है–

"मेरी मुनियाँ लाड़ली

मुझे सुना दे काकली

कोयल सी ती बोल री

अमृत मन में घोल री।"[128]

इसी बीच पत्नी छत पर जाकर पड़ोसिन से बात करने लगती है। वह कहती है कि मैंने कुछ रुपये इकट्ठे कर लिए हैं। आप मेरे लिए तोड़े बनवा दो। उसके बदले में नथ और बाली तुड़वा दूँगी। पड़ोसिन उससे हाँ कह देती है। इसी बीच पति पत्नी को पुकारता है कि दिन चढ़ आया है कुछ काम करो। पत्नी फिर उबल पड़ती है। और कहती है कि बात करना कोई पाप है? पति समझता है कि

पहले घर का काम कर लो। स्वयं नहा धो कर सुन्दर बन जाओं और –

"ग्रह सरोवर की कमलिनी, मधुप सा मैं कान्त

दान कर मधु कोष प्यासा, मन करो यह शान्त।"

पत्नी फिर भी क्रुध और कर्कश स्वर में उत्तर देती है। कि–

"ऐसे भाग्य जले यह मेरे

कवि से पड़े हाय क्यों फेरे।"

वह पूँछता है तुमने जो घर की हालत की है उसमे मेरा क्या दोष है बताओ–

"बिखरे बर्तन, मैले कपड़े झौंके जाना

क्या नाम इसी का घर है या कूड़ा खाना।"

वह क्रोधित होकर घर छोड़कर चला जाता है।

"लो चला मैं मित्र के घर चाय है।"

सामान्य सी बात है कवि की पत्नी अपने पति को समस्त दुर्दशा के लिए उत्तरदायी ठहराती है जब कि स्वयं न तो घर का काम करना चाहती है और न उसमें रुचिरता लाना चाहती है। अर्थाभाव का रोना रोती है, पर पड़ोसिन से कह कर तोड़ा बनवाती है। कहीं–कहीं कोमलकांत पदावली सहज ही मन मोह लेती है। वास्तव में उसे गीतिनाट्य परक कविता कहना ही अधिक उपयुक्त है।

(ब) समकालीन हिन्दी गीतिनाट्य

सन्दर्भ एवं समीक्षा–समकालीन हिन्दी गीतिनाट्यों का द्वितीय चरण गुणात्मक है इस समय तक गीतिनाट्यों के सिद्धान्त पक्ष पर विवेचन प्रारम्भ हो गया था और समालोचकों ने यत्र–तत्र गीतिनाट्य को स्वतन्त्र साहित्यिक विधा मानकर उनकी समीक्षा प्रारम्भ कर दी थी। एक ओर ये गीतिनाट्य अपने युग की दाहक समस्या पर विचार करते हैं।

डा. लक्ष्मी नारायण लाल—लोकनाट्यों का प्रभाव भी इस काल की रचनाओं पर पड़ा। इस दृष्टि से लक्ष्मी नारायण लाल ने स्तुत्य प्रयास किया। इस काल में अभिनेय और रंगमंचीय गीतिनाट्य भी लिखे गये तथा पाठ्य नाट्य भी है।

सूखा सरोवर—'सूखा सरोवर' डा. लक्ष्मी नारायण लाल द्वारा रचित पूर्ण गीतिनाट्य है, जिसे लाल जी ने लोक धर्मी गाथा नाट्य की संज्ञा दी है।''[129] द्वितीय अंक पूरा अन्तराल के रूप में प्रस्तुत किया हैं।

गीतिनाट्यों को 'लोकमिथ' के माध्यम से प्रस्तुत करने वाला यह प्रथम गीति नाट्य है। प्रेम के अभाव में देश के जीवन रूपी सरोवर के सूख जाने की घटना को लोकगाथा के माध्यम से प्रस्तुत किया है। डॉ. लाल ने प्रारभ में एक गीत लिखा है—

''खिरकी बइठ राजा रोवे, तू रानी पुकारे

हो राजा मोरे बिन संतन कुल हीन, हम होवे जोगी

गति भरि निनियाँ न आवे

हंसिन बन पिहुँ कूँ

राजा चनन लगाए बड़ी दूर

महक नहीं आवैं।''[130]

यही लोक गीत 'सूखा सरोवर' कथानक का आधार है। लेखक ने उपक्रम में इस गीत से सम्बन्धित एक कहानी दी है जिसका सार यह था कि—नीलम देश वाली एक नगरी में एक राजा था। उस नगरी में एक ऐसा सरोवर था जिसमें राजहंस सदा मोती चुगा करते थे। कंचन की नाव, हीरा मोती का मस्तूल चाँद की डोर और मूँगे की डाँड़ लेकर राजा रानी उसमें विहार किया करते थे। जल—परियाँ उसका संचालन करती थी। किन्तु अचानक एक दिन सरोवर सूख गया। चारों और

आतंक फैल गया। सरोवर के देवता से प्रार्थना की गई, तब उसने बताया–''अगर कोई सतवंती नार मेरे सरोवर में मंगल घट डाले तो मैं फिर पानी दूँगा। भला रानी से बढ़कर कौन मतवंती नार हो सकती थी। रानी ने मंगल घट डाला पर सरोवर में पानी नहीं आया। क्रोधित होकर राजा ने रानी को मरवा डाला। फिर उसी रानी की एक चेरी ने मंगल घट डाला तो सरोवर में पानी आ गया। प्रशत्र होकर राजा ने उस चेरी को ही रानी बना लिया। अब पहली रानी राज–हंसिन बन गई और गाने लगी–

''रात भरि निनियाँ न आवे, हंसिन बन पिहुकूँ।''आदि

प्रथम अंक में सरोवर के सूखने से उत्पन्न भयाक्रांत स्थिति का चित्रण किया गया है। सरोवर सूखने लगता है, पंछी उसे छोड़कर उड़ जाते हैं, पर हसा हंसी नहीं उड़ते –

''पंछी उड़े अकाश, लगा सरोवर सूखने

तीर लगाए आस, हंसा हंसी न उड़े।

एक वृद्ध पुरुष आकर कहता है कि साँच ही सरोवर की मर्यादा थी, जिसे राजा ने रहने नहीं दिया। उसके कथन से क्रोध्रित होकर राजपुरोति उसे बन्दी बना लेते है। इसी बीच राज बन्दी गृह टूटने का समाचार मिलता है जिसे सुनकर पुरोहित घबरा जाता है और वृद्ध को छोड़कर चला जाता है। सरोवर के सूखने से लोग प्यासे मर उठे है। चारों और त्राहि–त्राहि मच जाती है। एक सन्यासी आकर नगरी के लोगों को सलाह देता है कि सभी मिलकर राजा से प्रार्थना करें कि वह हमें पानी दे। सभी पानी दो पानी दो करके चीख उठते है। राजा आता है। सन्यासी राजा को सरोवर के सम्मुख नत मस्तक होने की सलाह देता है। सन्यासी सहित सभी सरोवर के देवता से प्रार्थना करते हैं। अन्त में देवता प्रगट होते है और बताते है कि मैंने इस नगरी के प्रथम राजा को ये वचन दिया था कि क्षण कोई

व्यक्ति यहाँ आत्म–हत्या करेगा, उसी क्षण मैं इस सरोवर का जीवन वापस ले लूँगा।

सब अवाक रह जाते हैं। आखिर आत्म हत्या किसने की। देवता बताते है कि एक प्रेमी की प्रेमिका ने आत्म हत्या की है। यह प्रेमिका वर्तमान राजा की पुत्री राजकुमारी थी। जिसे उसके प्रेमी से विवाह नहीं करने दिया गया। राजा ने अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए राजकुमारी की शादी किसी अन्य से करने का निश्चय किया था जिससे दुखी होकर राजकुमारी सरोवर में डूबकर आत्म हत्या कर लेती है।

द्वितीय दृश्य अन्तराल के रूप में है, जिसमें आत्म हत्या से पूर्व की घटनाओं का चित्रण है। नगरी का राजा– जो प्रथम दृश्य का सन्यासी है, तथा छोटे राजा में संघर्ष होता है। छोटा राजा राज्य पर अधिकार करने हेतु राजा को मारने का प्रयत्न करता है। वह धोखे से राजा पर बार करता है, जिसे बचाकर राजा छोटे राजा को पकड़ के उठा लेता है और उसे सिंहासन पर पटक देता है। किन्तु उसका वध न कर राजा राज्य छोड़ कर सन्यासी हो जाता है। प्रजा नये राजा के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करती। राज्य के विद्रोह को दवाने के लिए छोटा राजा पुरोहित से विचार विमर्श कर यह निर्णय लेता है कि मैनापुरी के राजा से सैनिक संधि कर ली जाय, इसके बदले राजकुमारी की शादी मैनापुरी के राजकुमार के साथ कर ली जाय। राजकुमारी इसे स्वीकार नहीं करती क्योंकि वह एक अन्य युवक से प्रेम करती है। राजा छल पूर्वक उसका डोला दे देना चाहता है। परन्तु एक अनुपम पुरुष उसकी रक्षा करता है। अन्त में दुःखी होकर राजकुमारी सरोवर में डूबकर आात्म हत्या कर लेती है और सरोवर सूख जाता है।

तृतीय दृश्य में सरोवर पुनः जलावरण की कथा है राजकुमारी की भटकती आत्मा नगरी की गली–गली कूँचे–कूँचे में डोलती फिरती है। वह गाती है–

"मिलन होय एक बार

पलकन धोऊँ पग पिया

कर सोलह सिंगार

चन्दन चिता संवार के।"[131]

राजा उस युवक को वन्दी बना लेता है। सन्यासी उसकी रक्षा करता है। सरोवर का देवता कहता है कि पानी देने की एक ही शर्त है, वह है किसी प्रतिनिधि की बलि।

लोग राजा की बलि देना चाहते हैं पर वह भाग जाता है। एक पागल अपनी बलि दे देता है, पर पानी नहीं आता। इसके पश्चात सन्यासी अपनी बलि देना चाहता है किन्तु इससे पूर्व ही राजकुमारी का प्रेमी अपनी बलि दे देता है। सरोवर में पानी आ जाता है। चारों और प्रसान्नता की लहर दौड़ जाती है। सन्यासी कहता है कि नगर का वास्तविक प्रतिनिधि वही था जिसकी प्रिया हमने छीन ली थी। अन्त में सब प्रतिज्ञा करते हैं कि भविष्य में हम मर्यादा का पालन करेगें भटकती आत्मा का पुरुष की आत्मा से मिलन हो जाता है।

सरोवर क्या है? अचानक उसका सूख जाना किस घटना का सूचक है? इसका उत्तर देते हुए डा. ल़ाल लिखते है कि–"सरोवर तो हमीं है, हम में ही वह सरोवर। 'उड़ चला हंस अपने मुलुक का अब यहाँ तुम रो कोई नहीं। सरोवर, वह अन्तस जिसके नियंता और उपभोक्ता हम ही है।"[132]

सन्यासी,नगर का असली राजा है, जो छोटे राजा के षड्यन्त्रों से ऊब कर सन्यासी बन जाता है। वह निडर और जनता का हितैषी है। जनता का दुःख दूर करने के लिए उसका मार्ग दर्शन करता है। उसी के प्रयत्न से सरोवर का देवता प्रगट होकर सब कुछ बताता है। वह धर्मात्मा और आडम्बर को पसन्द नहीं करता। वह कायरता और हीनता का विरोधी है,तभी तो वह कहता हैः–

"मत बोलो दीनता के स्वर

अन्तस कलंकित होगा।"[133]

पुरोहित छोटे राजा का अन्तरंग है। उसकी चापलूसी में ही वह अपना गौरव समझता है। उसी के सहयोग से राजा अपनी कन्या को मैनापुरी के शासन को सौंपना चाहता है। एक नागरिक शब्दों में–

"धर्म के पीछे राजनीति है तू

पुरोहित नहीं राज का वाहन है तू।"

'सूखा सरोवर' के संवाद गीतिनाट्य के सर्वथा अनुकूल और प्रभावशाली है। कहीं भी लम्बे और उबा देने वाले सम्वाद नही। कथोपकथनों में गति क्षिप्रता और रंगमंचीय समस्त विशेषतायें हैं। यद्धपि लेखक ने लिखा है कि–सच मैंने कभी कविता नहीं लिखी और आज के मुक्त छन्द मुक्त वृत्त, वृत गंधी आदि को क्या जानूँ।"[134]

लक्ष्मी नारायण लाल रंगमंचीय कला से पूर्ण परिचित है। अतः रंग निर्देश, संकेतों और मंच के माध्यम से 'सूखा सरोवर' को अभिनेय बनाने का प्रयत्न किया है। स्वर के लिए करुणा से, डाँटता सा त्रस्ते होकर, समवेत, हँसता था निःश्वांस लेकर, क्रोधित होकर, श्रद्धानत आदि संकेत दिये गये हैं ताकि उसी स्वर से सम्वाद बोले जा सकें। गीतिनाट्य बिम्ब बड़े सुन्दर है। एक दृश्य देखिए–

"मै सन्यासी हूँ

मेरे माथें पर कितनी रेखाएँ

झुर्रियाँ जितनी शरीर में

जितने चिह्न, जितने दाग

ऊपर हैं मेरे

उनसे दुगने भीतर है।"[135]

पुरुष –प्रिये

"उस रात सेजा पर बाहों की छाया मिली थी मुझे

अणु अणु से कमल की गंध आ रही थी

हाथों में मेंहदी रची थी

उंगली में चंदन की वास थी

सब पर वीणा के तार थे खिंचे

मैने चूमी थी उसकी सुधि।

आत्म–ओह!

तभी आँसू थे सेजा पर

सब कुछ भोगा था भोर का

मेरी पायल

मेखला, मेरी

बैदी, कंठहार, आंचल घूँघट और सीमंत पर

अंगराग चंदन सा।

ओह! वे आँसू थे प्रिय के।

आज मैं उन्हें चूमूँगी

भर लूँगी नयन में

कस लूँगी बाहुओं में।"[136]

भावुकता का इससे सुन्दर चित्रण क्या होगा। इसी प्रकार कई चित्र सूखा सरोवर में है।[137]

भावुकता के साथ साथ काव्यात्मकता की दृष्टि से भी 'सूखा सरोवर' सुन्दर है। घटनाओं और अभिव्यक्तियों को इस प्रकार प्रकट किया है कि पाठक सहज ही द्रवीभूत हो जाता है। देखिए–सरोवर सूखने का काव्यात्मक चित्रण–

"जिस क्षण सरोवर सूख रहा था

सुना और देखा था मैंने

वह बन्द कमल रोए थे कैसे

तड़पी थी कलियाँ पत्रों पर

कुमुदिनी कुँहकी थी कमलों से

खड़ा तीर में देख रहा था।

माथ झुकाए धँसा जा रहा, धँसा जा रहा नीर देवता।"

वास्तव में दो–तीन गीतिनाट्यों को छोड़कर एसे गीतिनाट्य बहुत कम लिखे गये हैं। इसकी गिनती इस दृष्टि से सर्वप्रथम गीतिनाट्यों में की जानी चाहिए।

रामधारी सिंह दिनकर—वर्तमान युग के समर्थ कवि रामधारी सिंह दिनकर ने अपनी भाव रश्मियों से गीतिनाट्यों को भी आलोकित किया है। आपने ज्ञान पीठ पुरस्कृत 'उर्वशी' गीतिनाट्य के अतिरिक्त 'मगध महिमा8 और 'हिमालय का संदेश' नामक लघु गीतिनाट्यों की भी रचना की है। 'मगध–महिमा' में मगध के इतिहास की सुन्दर झांकी प्रस्तुत की गई है। यह गीतिनाट्य सर्वप्रथम 'कल्पना' में सन् 1951 ई. में प्रकाशित हुआ था और बाद में 'इतिहास के आँसू' संकलन में भी इसे संग्रहीत कर दिया गया। इसमें छोटे–छोटे आठ दृश्य है। कुछ दृश्य तो सुन्दर है, लेकिन कुछ दृश्यों में नाटकीय कथोपकथनों का अभाव है। दृश्य एक, दो, तीन, छै, सात और आठ में गीत ही गीत है। पाँचवें दृश्य में लम्बे–लम्बे संवादों की योजना है। इसमें इतिहास, कल्पना जैसे अमूर्त पात्रों के साथ–साथ बुद्ध, सुजाता, चन्द्रगुप्त, अशोक जैसे ऐतिहासिक पात्र भी है। इतिहास और कल्पना मगध की महिमा का गुणगान करती है। गौतम बुद्ध, चन्द्रगुप्त आदि की गाथाएँ प्रस्तुत की गई हैं। एतिहासिक घटनाओं का विस्तार से वर्णन है, लेकिन पात्रों का

चित्रांकन ठीक ढंग से नहीं हो सका। यद्यपि लेखक ने रंग निर्देश और मंचीय व्यवस्था का सुन्दर चित्रण किया है और एकाध जगह इसका सफल अभिनय भी हुआ है।[138] लेकिन फिर भी नाटक स्थान पर कवि हृदय हावी है–

"ईटों पर जिनकी लकीर

पत्थर पर जिनकी चरण निशानी

जिनकी धूल गमकती मह मह

उन फूलों की सुनो कहानी।"[139]

मगध महिमा में आन्तरिक संघर्ष और द्वन्द्व का चित्रण भी सुन्दर हुआ है। कलिंग युद्ध के पश्चात अशोक की चिन्ता और उसके हृदय का उद्वेलन देखिए–

हमने क्या किया भगवान

यह बहा किसका लहू, किसका हुआ अवसान

कौन मैं, जिसने मचाया यह विकट संहार

अब नहीं उन्माद फिर यह अब नही उत्क्रान्ति।"[140]

अपने दूसरे गीतिनाट्य 'हिमालय का संदेश' में दिनकर ने क्रान्ति और शान्ति के द्वन्द्व को दिखाते हुए शान्ति की प्राण प्रतिष्ठा की है। इसमें कवि स्वयं एक पात्र है। इस लघु गीतिनाट्य में दृश्यों का विभाजन नहीं है। एक के साथ दूसरे गीति के माध्यम से हिमालय विश्व को सन्देश देता रहता है। फलस्वरूप उत्तरार्द्ध में नाटकीयता का अभाव हो गया है। यह गीतिनाट्य रेडियों पर प्रसारित हुआ है। अतः शिल्प की दृष्टि से रेडियो के अधिक निकट है। सही अर्थो में यह गीति रूपक है–

"तर्क से तर्कों का रंग छिड़ा, विचारों से लड़ रहे विचार

ज्ञान के कोलाहल के बीच, डूबता जाता हैं संसार

बुद्धि तृष्णा की दासी हुई, मृत्यु का सेवक है विज्ञान

चेतना तब भी नहीं मनुष्य, विश्व का क्या होगा कल्याण।''[141]

कवि ने यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया है। वह आदर्श कल्पना ओर कविता के स्थान पर अन्त को महत्व देता है–

''सच तो है, रोटियाँ नहीं तो क्या ये कविता खायेगें

थाली में घर का विराट, कवियों के गीत चबायेंगे।''[142]

आज अज्ञान का अन्धकार इतना गहन हो गया है कि सत्य के दर्शन नहीं होते। अतः आवश्यकता मानव को अन्धकार से छुटकारा दिलाना है। इसके लिए श्रद्धा और धर्म की आवश्यकता है। सम्पूर्ण गीतिनाट्य में माधुर्य है। हिंसा–अहिंसा, क्रान्ति और शान्ति के द्वन्द्व को कवि ने विभिन्न स्वरों के माध्यम से व्यक्त किया है। कृति में न तो किसी पात्र के चरित्र का विकास हुआ है और न सम्वादों में चुटीला पन है। नाटकीयता का अभाव है। अतः इस दृष्टि से इसे गीतिनाट्य की कसौटी पर सफल रचना नहीं कहा जा सकता।

नरेश मेहता–नरेश मेहता के दो गीतिनाट्य प्रकाशित हुए है–'अग्नि देवता' और 'संशय की एक रात'। 'अग्नि देवता' में इतिहास की प्रमुख घटनाओं का चित्रण है और विषय वस्तु तथा शिल्प की दृष्टि से यह रेडियो फीचर के अधिक निकट है। दोनों पर अलग–अलग विचार किया जाय।

1– अग्नि देवता– 'अग्नि देवता' रेडियों के लिये लिखा गया है। अतः उसके रंग संकेत रेडियो गीतिनाट्यों जैसे ही हैं। इसमें प्रलय से लेकर आज तक के सम्पूर्ण ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक विरासत को एक साथ प्रस्तुत किया गया है। किन भीषण परिथितियों, युद्ध विभीषिकाओं में होता हुआ मानव आज की स्थिति में आया है, यही इसका मूल विषय है। इतिहास की घटनाएं एक–एक कर हमारे सामने आती हैं।

कथानक का प्रारम्भ महाप्रलय से होता है। प्रलय से समस्त सभ्यता नष्ट

हो जाती है। सब कुछ चला जाता है। प्रसाद की कामायनी की भाँति सृष्टि का पुनः निर्माण होता है। एक पुरुष और एक नारी जो महाप्रलय से बच गए थे, सृष्टि के नियामक बनते है। आवश्यकता हेतु दोनों 'अगिन देवता' का आह्वान करते है, जिसकी सहायता से सभ्यता का विकास होता है। समय बदलता रहता है। ऋृषि मुनियों के आश्रम फैल जाते हैं और फिर होता है देवासुर संग्राम। इसमें अग्नि देव की कृपा से देव विजयी होते हैं। एक युग बीता दूसरा आया–'भगवान राम का युग। आतंक को मिटाने के लिए राम को फिर युद्ध करना पड़ता है किन्तु इसके परिणाम स्वरूप सीता को अग्नि परीक्षा देनी पड़ती है।

युग फिर बदलता है–द्वापर युग। यमुना के किनारे गोपियों के सहगान गूँजने लगते है। फिर एक युद्ध होता है। इस प्रकार

"युद्ध और संघर्ष

विकासोम्मुख मानव की महाप्रगति के अग्निचरण ये

काल पृष्ट पर

चलते रहते ध्वंस सार्थ से।"[143]

महाभारत के बाद इतिहास क्रम आगे बढ़ता है। 'बुद्धं शरणं गच्छामि' के शान्ति–स्वर गूँजने लगते हैं। उसके बाद गुप्त काल का स्वर्ण युग आ जाता है। ऐतिहासिक घटनाओं के साथ–साथ लेखक ने हमारी सांस्कृतिक विरासत का भी चित्रण किया है। तक्षशिला और नालन्दा की संस्कृति और कालिदास, भवभूति, अश्वघोष का उल्लेख करता हुआ लेखक विद्यापति के गीत गा उठता है। इसी के साथ सूर के गीत गूँजते हैं।

किन्तु यह संस्कृति भी नष्ट हो जाती है। यवन और गौरांग प्रभुओं का शासन होता है जिनके साथ–साथ आता है विज्ञान का युग।

धातु युग और अन्य युग के चीर कर तम तोम

वाष्प केशी यन्त्र युग है आज का नव व्योम

अग्नियाँ पचांनना हो है हमारे साथ।"[144]

गीतिनाट्य का अन्तिम चरण गाँधी जी की प्रशास्ति के साथ समाप्त होता है। वह अग्नि देवता से प्रार्थना है कि–

"उद्योगों की लौह भुजाओं को तुम नव–नव शक्ति दान दो

अग्नि नृत्य को किरण गान दो

शान्ति पुत्र तुम अग्नि देवता

प्रगति पुत्र तुम अग्नि देवता।"[145]

'अग्नि देवता' युद्ध और विकास की कहानी है। पात्र एक के बाद एक आते जाते है। उद्घोषक स्वर और राक्षसों का गर्जन एक सुनाई देता है। जहाँ तक और 'बुद्धं शरणं गच्छामि' की मधुर ध्वनि गूँजती है वहीं दूसरी ओर जयदेव का स्वर– 'मधुकर निकर करम्बित कोकिल कूजत कुंज कुटोरे' भी सुनाई देता है। गोपियों के रास रंग और प्रलय के चित्रण एक साथ प्रस्तुत हुए हैं। भाषा, दृश्य और कथा वस्तु के अनुसार बदलती रही है। प्रलय के समय उसमे ओज गुण और करुणा वृत्ति देखने को मिलती है। यथा–

"सब खण्ड–खण्ड

गृह भवन कलश मन्दिर तोरण

वे कमल लाल, महरावें, इन्द्रधनुष

त्रस्त स्तुप रंग मंच।"

अथवा

"अग्नि शैल हुंकारे अपने ताम्र मुकुट से

पृथ्वी उसने दौड़ी, अग्नि तप्त वे ताल

हो क्षिप्र पंखिनी

नाग पाश सी लावा बाहें।"[146]

दूसरी और मधुर गीत का सृजन भी देखिए–

"यमुना तट वेणु बजी, लीलामय व्रन्दावन

यौवन के अंग छाँह

नटवर की रंग बाँह

नयनों में इन्द्र फूल गन्ध भरे गोपीजन।"[147]

चूँकी गीतिनाट्य घटना प्रधान है, अतः इसमें चरित्र–चित्रण का लेखक को कोइ अवसर नहीं मिला। इतिहास के विभिन्न पात्रों के माध्यम से तथा वाचकों के सहारे एक के बाद एक घटना घटित हुई है।

2 संशय की एक रात (1962)–नरेश मेहता कृत 'संशय की एक रात' एक महत्वपूर्ण बहुचर्चित गीतिनाट्य है। इसे आधुनिक युग की गीता कहा गया है। जिस प्रकार अर्जुन के संशय ग्रस्त होने पर भगवान कृष्ण निष्काम कर्म का उपदेश देते हुए अर्जुन को युद्ध करने की प्रेरणा देते है, उसी प्रकार दशरथ और जटायू की प्रेतात्माएँ राम को कर्म का उपदेश देती हैं–

"पुत्र मेरे!

संशय या शंका नही

कर्म ही उत्तर है

यश जिसकी छाया है

तुम कर्म को करो।"[148]

और भी–

"उस महा नियम के निकट

हम केवल कर्म के क्षण है।"

तभी तो दशरथ की प्रेतात्मा राम को पुरुषार्थ के बल पर परिस्थितियों की

धेनु को दुहने का उपदेश देती है–

"परिस्थितियाँ धेनु है

दुहो इनको। निठुर उगलियों से दुहो इनको।"[149]

गीता के समान ही यहाँ भी वे कहते हैं–

"यहाँ सब कर्त्तव्य है

जया जय

धर्मा धर्म कुछ भी नहीं।"[150]

महाकवि निराला ने सर्वप्रथम 'राम की शक्ति पूजा' में राम के मन में उठने वाले द्वन्द्व और दुर्बलताओं का चित्रण किया है। उन्हें एक मानव के धरातल पर प्रस्तुत किया गया है। नरेश मेहता उससे भी आगे बढ़ गये है। 'राम की शक्ति पूजा' में राम ओज पूर्ण ओर अनुभूति प्रवण है। उनके मन में शंकाओं और उच्छवासों की वह समन्वित धुँध है जिसमें सत्यासत्य के बीच सेतु बन्धु का निर्माण दुष्कर प्रतीत होता है।"[151]

'राम की शक्ति पूजा' के अतिरिक्त लेखक को 'हेमलेट' से भी प्रेरणा मिली है। कवि ने द्वितीय संग में शैक्सपियर के 'हेमलेट' की शैली का अनुशरण किया है। बहुत कुछ हेमलेट की विचारधारा को अपनाया गया है।

'संशय की एक रात' का मूल विषय युद्ध है। रामेश्वरम् में जब कि युद्ध की पूरी तैयारी हो चुकी है, राम के मन में संशय का तूफान उठ खड़ा होता है। क्या युद्ध अनिवार्य है? यही प्रश्न उसके मन को अकुल कर देता है। कवि ने युद्ध को जीवन की अनिवर्यता स्वीकार किया है। युद्ध हर पीढ़ी का दायित्व है जिसे निभाना पड़ता है। वह अन्याय और न्याय का निर्णय है, जिसमें इतिहास बदलता है। युद्ध मात्र मन्त्रणा नहीं अपितु जीवन का दर्शन है। स्वत्व और अधिकार प्राप्ति का वह अन्तिम मार्ग है। वही युग अन्तिम सत्य ओर दर्शन हुआ है–

"युद्ध

मन्त्रणा नहीं

एक दर्शन है राम

अन्तिम मार्ग है।"[152]

युद्ध इतिहास का निर्माण करता है, हमारे शुभाशुभ कर्मों का निबटारा करता है। जब स्वत्व और परिस्थितियों पर हमारा अधिकार नहीं रहता, तब युद्ध अनिवार्य हो जाता है। क्या युद्ध नियति है। हमारे शुभा शुभ कर्म को?" यही प्रश्न है जिसका उत्तर लेखक ने चाहा है, पर उसे उत्तर नहीं मिला। द्वापर की शंका त्रेता के राम में घर कर लेती है। सेतु बन्धु का निर्माण होता है राम की सेनाएँ युद्ध को सन्नद्ध हैं। किन्तु स्वयं राम संशय के वात्था चक्र में तापित हो उठते है। प्रश्नों के मध्य वे घिर जाते है। क्या युद्ध समस्याओं का अन्तिम हल है? क्या बिना युद्ध के सत्य नहीं मिल सकता? न्याय नहीं मिल सकता? क्या बन्धुत्व मानवीय एकता और धर्म स्थापना युद्ध के बिना सम्भव नहीं है? ओर फिर यह क्या अनिवार्य है कि युद्ध के बाद स्थायी शान्ति मिल सकेगी–

"युद्ध के उपरान्त

होगी शान्ति

इसका तो नहीं विश्वास

यह युद्ध सम्भव है अनागत युद्ध का कारण बने

फिर संघर्ष फिर संहार

इस चक्र का कोई नहीं है अन्त।"[153]

इसलिये राम युद्ध से बचना चाहते है। वे युद्ध से डरते नहीं किन्तु उससे प्रेम भी नहीं करते। इतिहास के शिकार हो जाने की अपेक्षा वे स्वयं अँधेरों में खो जाना चाहते हैं–

"इतिहास के हाथों

बाण बनने से अधिक अच्छा है

स्वयं हम,

अंधेरो में यात्रा करते हुए

खो जाय।"[154]

राम व्यक्तिगत कारणों से रावण से युद्ध करना उचित नहीं मानते। वे सोचते है कि सभी अनर्थ मेरे व्यक्तिगत कारणों से हो रहे है। पिता की मृत्यु हुई, माताएँ विधवा हुई, जटायू की मृत्यु हुई, अंगद पितृहीन हुए, उर्मिला विरही बनी, भरत को निर्वासी जीवन व्यतीत करना पड़ा और जब मेरे व्यक्तिगत कारण से युद्ध होगा जिसमे न जाने कितने निरीह प्राणी मौत के घाट उतार दिये जायेंगे इन प्रश्नों के वात्या चक्र में घिरे राम कहते है–

"यदि मै मात्र कर्म हूँ

तो यह कर्म का संशय है

यदि मैं मात्र क्षण हूँ

तो यह क्षण संशय है।

यदि मैं मात्र घटना हूँ

तो यह घटना का संशय है

पर यह संशय है,

संशय है, संशय है।"[155]

राम के इस संशय का समाधान करती है दशरथ और जटायू की आत्माएँ। दशरथ का विचार है कि यह युद्ध व्यक्तिगत स्तर पर नहीं लड़ा जा रहा। यह तो असत्य से लड़ा जा रहा है, अन्याय से लड़ा जा रहा है। जटायु कृष्ण की भाँति उपदेश देते हैं कि–

''यहाँ कुछ नहीं समाप्त हुआ

क्योंकि कभी भी

कुछ नही आरम्भ हुआ।''[156]

वे कहते हैं–

''तुम्हें लड़ना युद्ध

अपने से नहीं

अनास्था से नहीं

संशयी व्यक्ति से भी नहीं

केवल असत्य से।''[157]

यही बात तृतीय सर्ग में हनुमान जी ने कही है। वे कहते है कि ये जो बानर आज युद्ध के लिए सन्नद्ध है आपके व्यक्तिगत हित के लिए नहीं अपितु विराट कारणों से है। रावण ने इनकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का एक प्रकार से अपहरण कर लिया है। हमारा यह सुन्दर प्रदेश किसी अन्य का उपनिवेश हो, यह हमे स्वीकार नहीं। आज मात्र सीता माता का ही अपहरण नहीं हुआ। वे तो प्रतीक है हम कोटि–कोटि जनता की स्वतन्त्रता की। रावण के अशोक वन की सीता हम साधारण जनों की अपहृत स्तवन्त्रता है।

''सीता माता

भले ही राम पत्नी हों

किसी की बधू

किसी की दुहिता हो

पर

हम कोटि–कोटि जनो की तो केवल

प्रतीक है–

रावण अशोक वन की सीता

हम साधारण जन की अपहृत स्वतन्त्रता।"[156]

वास्तव में रावण ने दक्षिण प्रदेश के सामन्तों के प्रदेश का अपहरण कर पहले ही युद्ध के बीज बो दिये थे। विभीषण का भी यही मत हैं कि यद्यपि इस युद्ध में उसके ही बन्धु बाँधवों का संहार होगा, उसी का नगर ध्वस्त होगा, लेकिन अन्याय के उन्मूलन के लिए, जिसका प्रतीक रावण है युद्ध करना ही होगा।

निराश राम बहुमत की बात स्वीकार कर लेते है। चतुर्थ सर्ग में राम का संदिग्ध मन युद्ध का संकलप लेता है। राम के इन शब्दों में मानवता के लिए आकांक्षित आलोक है–

"ओ मेरी अपारमिता

अपने पाथर को आकाश करो

वही सूर्योदय है

वैश्वानर है।"[159]

कथा–संगटन की दृष्टि से 'संशय की एक रात' सफल गीतिनाट्य है। अतः ब्राह्य संघर्ष के स्थान पर आन्तरिक संघर्ष तीव्र है। आदि से अन्त तक राम का शंकाल हृदय युद्ध के प्रश्न से आल्होड़ित विलोड़ित होता रहता है। अन्तर्द्वन्द्व से पीड़ित राम सो नहीं पाते। युद्ध किया जाय या न किया जाय यही द्विधा राम के अन्तर्मन में बार–बार उठती है। बार–बार कहते हैं–

"दो सत्य

दो संकल्प

दो आस्थाएँ

व्यक्ति में ही अप्रमाणित व्यक्ति पैदा हो रहा है।"[160]

वास्तव में अन्तःसंघर्ष और मानसिक द्विधा इस नाटक का मूल आकर्षण है।

सारा कथानक वहीं से प्रारम्भ होता है और वहीं समाप्त हो जाता है।

चरित्र–चित्रण–चरित्र–चित्रण की दृष्टि से यहाँ राम का चरित्र परम्पराओं से बँधा होते हुए भी परम्परा से मुक्त है। वाल्मीकि से लेकर निराला तक के राम–रावण वध में आश्वस्त, युद्ध के लिए कटिबद्ध है। निराला के राम प्रथम बार शक्ति के तेज से भयभीत हो उठते है। विजय में शंका कर उठते है। नरेश मेहता के राम कायर पुरुष नहीं है, न युद्ध से कुंठित हैं वे तो उससे मात्र बचना चाहते है। वे शंकित तो इससे है कि युद्ध के बाद भी क्या शान्ति सम्भव हो सकेगी। इसी मिथ्या तत्व और मरीचिका से वे त्रस्त है। 'संशय की एक रात' के राम प्रज्ञा और तर्क के धनी है। बहुमत का सम्मान करना वे जानते है। सीता का प्रेम उन्हें पागल सा बना देता है। बालू तट पर वे नित्य सीता मुख बनाते है। वे सत्य के अनवेणी हैं और उन्हीं की खोज में चिन्तित हैं। लक्ष्मण का चरित्र परम्परागत है। वे साहसी, ओजस्वी और वाक्पटु है। राम को युद्ध से अन्य मनस्क देख कर वे कह उठते है–

"आप रुकें रामेश्वर
जायगा लक्ष्मण ले अभी यान
यदि नितांत एकाकी भी जाना पड़े
जाऊँगा
सीता को लाऊँगा
अपने पुरुषार्थ से।"[161]

यहाँ लक्ष्मण की निष्ठा जन–निष्ठा है। जो रावण को पराजित करने का विश्वास रखती है। हनुमान का चरित्र अवश्य नवीनता लिए हुए है। यहाँ सेवक के साथ प्रजा का प्रनिधित्व भी करते है। नवीनता विभीषण के चरित्र में भी देखने को मिलती है। युद्ध का निर्णय होते समय राम की तरह वे भी शंकित और भयभीत हो उठते है। वे जानते है कि लोग उन्हें देश द्रोही कहेंगे। उन्हीं के कारण लंका

का विनाश होगा। वे इस द्वन्द्व में फँसकर भी युद्ध के पक्ष में है।

कथोप कथन—कथोपकथन की दृष्टि से भी 'संशय की एक रात' अति उत्तम है। उनमें गति और नाट्कीयता दोनों है। कहीं—कहीं अतिशयता, भावुकता, अथवा हृदय के आन्तरिक मंथन के फलस्वरूप सम्वाद लम्बे भी हो गये है लेकिन कहीं—कहीं क्षिप्रता, तीव्रता भी है।''[162]

नरेश मेहता हिन्दी की नई कविता के समर्थ एवं प्रतिष्ठित कवि है। अपनी अन्य काव्य रचनाओं में उन्हें पहले ही पर्याप्त ख्याति प्राप्त हो चुकी थी। 'संशय की एक रात' में उसी का प्रांजल रूप देखने को मिलता है। आपने कहीं—कहीं सुन्दर सूक्तियों का प्रयोग भी किया है। यथा—

1— युद्ध सम्भव है प्रथम हो

किन्तु अन्तिम नहीं है।

2— युद्ध केवल फेन ही नहीं

निर्णय है

जिसमें इतिहास बना करता है।

3— यहाँ कुछ नहीं समाप्त हुआ

क्योंकि कभी भी

कुछ नहीं प्रारम्भ हुआ।

मुक्तक छन्द में रचित यह गीतिनाट्य काव्यत्व की दृष्टि से भी अनूठा है। कहीं—कहीं मानसिक उद्वेलन के बीच सुन्दर कल्पानाओं के दर्शन हो जाते है।

प्रतीक विधान—प्रतीक विधान की दृष्टि से भी यह गीतिनाट्य सुन्दर है। पात्र घटनाएँ, सर्ग, शीर्षक सभी प्रतीकात्मक हैं। प्रथम सर्ग है साँझ का विस्तार और बालू तट' यहाँ बालू तट जीवन की शुष्कता, नीरवता और अर्थहीनता का प्रतीक है। राम युद्ध जनित परिणामों से संशय ग्रस्त हो जाते हैं, उनका जीवन रस

सूख जाता है। मध्य रात्रि को मंत्रणा और निर्णय शीर्षक यह ध्वन्ति करता है। कि राम के मन का संशय मात्र संशय नहीं अपितु गम्भीर जीवन प्रक्रिया है। मध्य रात्रि गम्भीरता का प्रतीक है। इसी प्रकार 'संदिग्ध मन का संकल्प' इस बात का प्रतीक है कि मन्त्रणा का निर्णय केवल सामूहिक समाधान है। 'सवेरा' शीर्षक राम के नये संकल्प का प्रतीक है। प्रातः की मधुरिम बेला मानव के मन में नवीन चेतना का संचालन करती है। और मानव को कर्म क्षेत्र की ओर इंगित करती है। उसी प्रकार राम 'सवेरा' में युद्ध को तत्पर हो जाते हैं।

इस गीतिनाट्य के पात्र भी प्रतीकात्मक है। राम आधुनिक प्रज्ञा के प्रतीक है। मेहता के ही अनुसार– राम आधुनिक प्रजा का प्रतिनिधित्व करते हैं। युद्ध आज की प्रमुख समस्या है। सम्भवतः सभी युग की इसी विभीषिका को सामाजिक और वैयक्तिक धरातल पर सभी युगों को भोगा जा रहा है। राम को भी ऐसा ही एकत्व देकर प्रश्न उठाये गये है। जिस प्रकार कुछ सनातन प्रश्न होते हैं उसी प्रकार कुछ प्रज्ञा पुरूष भी सनातन प्रतीत होते हैं। राम ऐसी ही प्रज्ञा के प्रतीकहैं।''[163] इसी प्रकार लक्ष्मण, हनुमान, विभीषण और सुग्रीव आदि वर्तमान समाज के प्रतीक है। उनका प्रतीकत्व जहाँ आधुनिक है, वही परम्परा से भी जुड़ा हुआ है। वे वीर और युद्ध प्रिय है। दशरथ और जटायू की छायाएँ कवि मन के विचारों का प्रतीक है। सीता स्वतन्त्रता का प्रतीक है। राम की सभा वर्तमान संसद और सूर्य को सत्य का प्रतीक कहा जा सकता है। वास्तव में प्रतीकात्मक परिवेश में प्रस्तुत गीतिनाट्य सुन्दर बन पड़ा है। प्रकृति राम के अन्तर्मन का प्रतिनिधित्व करती है।

'संशय की एक रात' में तीन प्रश्न उठाये गये है–एक युद्ध वैयक्तिक है या सामाजिक, दो– जीवन में व्यक्ति के निर्णय सत्य है या समूह के और तीन– युद्ध अनिवार्य है या नहीं? कवि ने वैयक्तिक भावनाओं को समाज को सौंप दिया । फिर

भी संशय बना रहा है। युद्ध का निर्णय हो जाने के बाद भी इन प्रश्नों का उत्तर नहीं मिलता कि युद्ध अनिवार्य है या नहीं?

'संशय की एक रात' की दूसरी विशेषता लेखक की प्रजातान्त्रिक पहुँच (एप्रोच) है। पार्षदों की सभा वर्तमान संसद का प्रतिनिधित्व करती है। युद्ध का निर्णय बहुमत के आधार पर होता है।

अभिनय की दृष्टि से प्रस्तुत कृति सराहनीय नहीं कही जा सकती। क्योंकि प्रेतात्माओं के वार्तालाप को प्रस्तुत करने में निर्देशकों को कठिनाई हो सकती है और आत्माओं का वार्तालाप आज के युग में उचित नहीं लगता।''[164] मानवोचित भावों को व्यक्त करने के लिए प्रकृति का सहारा लिया गया है। उसके माध्यम से राम के अन्तर्मन का सुन्दर वर्णन हुआ है। यथा–

''कहीं चारो ओर

हल्का शोर

हा हा कार

शंख, सीपी उगलते

ये क्रुद्ध फन वृहदाकार

बेलनों से रोंदते अन्तर स्वयं का

आ रहे किस गर्व से।''[165]

यहाँ राम के हृदय की भावनाओं का बिम्ब सा बन गया है। अन्त में आवरण पर छपे प्रकाशक के इस निर्णय से पूर्ण सहमति व्यक्त की जा सकती है कि– नरेश मेहता ने इस कृति में गरिमापूर्ण भाव सम्पदाओं, प्रतीक योजनाओं, बिम्ब रूपों तथा शिल्प संयम का परिचय दिया है।''

रमेश कुन्तल मेघ–'यमुना और गंगा की लहरें'– (1961)–रमेश कुन्तल मेघ का एकमात्र गीतिनाट्य 'यमुना ओर गंगा की लहरें' साम्प्रादायिक समस्याको

लेकर लिखा गया है। इसमें शैक्सपियररीय शैली में चरित्रों के द्वन्दों को प्रकट करने की कोशिश की गयी है।''[166]

इसमें दो दृश्य है। प्रथम दृश्य में जगन्नाथ ओर मुल्लाओं का संघर्ष चित्रित है, तो दूसरे में जगन्नाथ और पण्डितों का। पण्डित राज जगन्नाथ के माध्यम से हिन्दू–मुस्लिम एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। पण्डित राज जगन्नाथ ने मुगल कन्या लवंगी से व्याह रचाया था, जिसके कारण हिन्दू और मुसलमान दोनो ही उनसे जलते थे। पण्डित राज ने किस प्रकार उनके कुचक्रों को दूर कर अपनी पवित्रता का परिचय दिया, यही इस गीतिनाट्य का मेरुदण्ड है।

कथानक का प्रारम्भ पण्डित राज जगन्नाथ और उनकी मुगल पत्नी के वार्तालाप से होता है। दोनों अपने वार्तालाप जीवन से प्रसन्न हैं। एक गोपीजन बल्लभ कृष्ण का भक्त है, तो दूसरी शेख के मजार से दुआएँ माँगती है। धर्म उनके मार्ग में बाधा नहीं। जगन्नाथ उलेमा से कहते है–

''लवंगी का धर्म मुझे बाधा नहीं देता है

मेरा गोपाल भी उसे बहुत प्यारा है

एक ही यमुना में अंजलि हम भरते है।''[167]

उलेमाओं को दोनों का प्यार नहीं भाया। एक दिन जब लवंगी शेख की मजार पर दुआएँ माँगने जाती है, तो वे उसकी हत्या कर देते है। बेचारे जगन्नाथ प्रिया के वियोग में अर्द्ध–क्षिप्त से हो जाते है। वे जगन्नाथ जिन्होंने 'पण्डितराज' की उपाधि पाई थी, जिन्होंने 'आसफ विलास', 'भामिनी विलास', 'जगदा मरण' की रचना की थी उन्मादवश प्रलाप सा कर उठते हैं और अन्त में दिल्ली छोड़कर काशी चले आते हैं।

द्वितीय दृश्य का सम्बन्ध काशी से है। दिल्ली में जहाँ उलेमा उनसे जलते थे, वहाँ काशी में अव्यय दीक्षित और भट्टोजि पण्डितराज की विद्वता से ईर्ष्या करते

हैं। वे उन्हें नास्तिक, दूषित, और रसिक आदि कहते है, और काशी की जनता को उसके विरुद्ध भड़काते है। अव्यय दीक्षित और भट्टोजि उनके यश को नष्ट करना चाहते है। जिस प्रकार दिल्ली में मुल्ला मिलकर उनके साथ विश्वासघात करते है, उसी प्रकार काशी के पण्डित मित्रता के नाम पर महाकाल का प्रसाद देते हैं, जिसमें मधु से लिपटे कनक बीज है ताकि पण्डित राज पागल हो जाय।

पहले काशी के पण्डित पण्डितराज से उनकी पवित्रता का सबूत माँगते हैं। पण्डितराज कहते हैं कि ठीक है यदि मैं पवित्र हूँ तो गंगा स्वयं मेरा स्पर्श करेंगी और यदि नहीं तो भगवती गंगा मेरा उद्धार नहीं करेंगी।

परीक्षा प्रारम्भ हाती है। गंगा की स्तुति करते हुए पण्डित राज सीढ़ियों से उतरने लगते है। गंगा उनका स्पर्श करने को आगे बढ़ने लगती है। चौवनबीं सीढ़ी पर गंगा उनको ग्रहण कर लेती है। भीड़ कहती है–

"लौटो अब, लौटो अब

डूबे सब जाते हैं।"

यही कहानी का अन्त है गीतनाट्य में भावों और अन्तःसंघर्ष का चित्रण बहुत सुन्दर ढंग से हुआ है। विरह में उन्मत्त जगन्नाथ के अन्तर्द्वन्द्व को मेघ जी ने सुन्दर ढंग से वयक्त किया है। जगन्नाथ कहते हैं–

"तपता हूँ घोर विरह ज्वाला में

सुनते हो! सुनते हो! राधा बल्लभ ओ

राधा अधरों का मधुपान कर्ता ओ!

प्रेम में जाता पांत कहीं मानी

क्या जाती है? लवंगी कुरंगी वह

कहाँ गई?"[168]

चरित्रि चित्रण की दृष्टि से गीतिनाट्य में कुछ छः पात्र है। इसके अतिरिक्त

कुछ भीड़ के व्यक्ति काजी मुल्ले हैं। पात्र वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करते है। वे टाइप बन गये है। जगन्नाथ उस वर्ग के प्रतीक है जो हिन्दू मुस्लिम एकता के पक्ष पाती हैं और मानव मात्र का अपना बन्धु मानते है। वे मित्र के नाते ही मुल्ला और पण्डितों के धोखे में आ जाते हैं। वे कहते हैं–

"प्रतीत मित्रता का, मानवता का, धर्म का

गरल भी हो यदि, तो सहर्ष ग्रहण करुँगा

सहोदर से।"[169]

काजी मुल्ला उस वर्ग के प्रतिनिधि हैं जो धर्म के नाम पर साम्प्रदायिकता फैलाते है। मानव की हत्या करने से भी नहीं चूकते। ऐसे लोगों को गंगा भी क्षमा नहीं करती। अभिनेयत्व की दृष्टि से 'यमुना और गंगा की लहरें' अच्छा कहा जा सकता है। संवाद क्षिप्र, लघु और भावानुकूल हैं। जैसे–

मीरा सांभा– कवि राज, संग हम लाये हैं

मालिक लवंग..................

दरोगा– स्वागत हमारा? नहीं

इतना तुम करो अभी.............वक्त

बहुत थोड़ा है।

पण्डित राज (विह्वल)– लवंगी, प्रिय हाय

नीली तुम यमुना में नहाई हो

पूजा में मुग्ध क्यों? नेत्रों को बन्द क्यों किये हो?

मीरा सांभा– वक्त बहुत थोड़ा है

अन्तिम यह बेला है।"[170]

काव्यत्व की दृष्टि से भी 'गंगा यमुना की लहरें' सफल हैं। कवि को हृदय गत भावों को व्यक्त करने में पूर्ण सफलता मिली है। लवंगलता से प्यार प्रकट

करते हुए पण्डितराज कहते हैं–

"चाहता नहीं गजों की पक्तियाँ कभी

वैभव विलास नहीं, नहीं अश्व पक्तियाँ

केवल तुम्हें मैं

करने को आलिंगन व्याकुल था

तुमने जो

मादक बनाये ये दिगन्त

तैर तैर जाते थे छवियों के स्वर्ण शिखर।"[171]

हिन्दु–मुस्लिम एकत्व को प्रदर्शित करने के लिए रमेश कुन्तल मेघ कहते हैं–

"सभी में आत्मा है, लाल रुधिर सभी

का प्यारा है– सभी तो रहते हैं

रहते हैं, कपोत मिथुन से अनुरागी।"

कुल मिलाकर 'यमुना और गंगा की लहरें' एक सफल गीतिनाट्य है, जिसमें भाव कल्पना और नाटकीयता का सुन्दर समन्वय हुआ है।

दुष्यंत कुमार :–एक कंठ विषपायी–दुष्यंत कुमार वर्तमान पीढ़ी के उस सशक्त लेखनीकारों में से है जिन्होंने साहित्य को नया मोड़ दिया है। 'एक कंठ विषपायी' उनका बहुचर्चित गीतिनाट्य है। आलोचकों ने इसे अंधायुग के बाद हिन्दी की अनुपम रचना माना है। अनेक गोष्ठियों के माध्यम से सुधी समीक्षक समय समय पर अपने विचार प्रगट करते है। यह गीतिनाट्य सितम्बर 1963 में 'लोक भारती प्रकाशन' द्वारा प्रकाशित किया गया। इसके साथ ही कल्पना के अक्टूबर तथा नवम्बर 1963 के अंकों में भी यह धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ। दोनों के उपसंहार में अन्तर है। जहाँ पुस्तक में उद्घोषक की इस घोषणा के साथ–

"सीमा पर रक्तपात नहीं हुआ

युद्ध हो गया समाप्त

सुने सब प्रजा यह समाचार सुने।"[172]

गीतिनाट्य समाप्त हो जाता है, वहाँ 'कल्पना' में एक दूसरा स्थूल निश्चयात्मक अंत भी दिया है। जिसमें भगवान शंकर स्वयं पधारते है और ब्रह्मा कहते है–

"फिर संक्रमण काल का विष पी लिया उन्होंने

जिनके कारण फिर नूतन मूल्य को स्थापना हुई है।"[173]

लेखक को 'एक कंठ विषपायी' लिखने की प्रेरणा अनंत मराल शास्त्री से प्राप्त हुई । इसमें नवी और प्राचीन मान्यताओं का द्वन्द्व चित्रित है। कथावस्तु का आधार दक्ष यज्ञ का वह आख्यान है, जहाँ भगवान शिव का अपमान होता देख सती ने आत्मदाह किया था और शंकर के गणों यज्ञ विध्वंस पर उनके अपमान का बदला लिया था। हर नई पीढ़ी पुरानी पीढ़ी की मान्यता और विचारों के प्रति विद्रोह करती है। पुराने मूल्यों के समाप्त होते देख पिछली पीढ़ी नवीन मूल्यों पर प्रहार करने लगती है। लेकिन धीरे–धीरे वे नये विचारों को अपना लेते है। पुरानी मान्यताओं और विचारों की लाशें ढ़ोने वाले लोग स्वयं या तो मर मिटते है। या नये विचार अपना कर नई मान्यताओं का काल कूट विष पीकर विषपायी बन जाते हैं–

" हर परम्परा मरने पर थोड़े दिन तक

सारा वातावरण शून्य से भर जाता है

लेकिन उसके बावजूद फिर

शून्य की उसकी भूमि पर, कोई नया रूपधर

नन्हा अंकुर एक उभर आता है।"[174]

कथानक का प्रारम्भ वीरिणी और दक्ष के वार्तालाप से होता है। दक्ष ने अपने जामात्र शिव को छोड़कर यज्ञ में सभी देवताओं और लोक प्रतिनिधियों को आमंत्रित किया है। वारिणी इसे लोक मर्यादा के विरुद्ध मानती है। इसी समय सामाचार मिलता है कि दक्ष सुता सती शिव के गणों के साथ यज्ञ मण्डप में पहुँच गई है और सभी अतिथियों को अपशब्द कह रही हैं। अनाहूत होने के कारण वे महल में भी नहीं आना चाहती। वारिणी की आत्महत्या की धमकी से दक्ष पहले तो सती का सम्मान करना चाहते है, लेकिन जब सर्वहत कहता है कि सती किसी व्यवस्था को नहीं मान रही तो दक्ष सती को भी यज्ञ में स्थान न देने का निश्चय करता है। थोड़ी देर बाद ही सूचना मिलती है कि सती ने अग्नि में आत्मदाह कर लिया है और महादेव का नन्दी क्रोध में चला गया है।

द्वितीय दृश्य में युद्ध का भीषण चित्र अंकित किया गया है। शिव गण दक्ष नगरी का विध्वंश कर देते हैं। नगर का सारा परिवेश छिन्न भिन्न हो गया है। युद्ध की मनोवृत्ति का शिकार सर्वहत कहता है–

"सारे नगर में ताजा

जमा हुआ रक्त है

और सड़ी हुई लाशें हैं

क्षत विक्षत तन है

और उन पर भिन्नाते हुए

चीलों गिद्धों के झुंड

और मक्खियाँ हैं।"[175]

सर्वहत दक्ष नगरी के रक्त पात का एक मात्र साक्ष्य है। शिव की प्रति हिंसा का मूर्तिमान रुप। स्वयं शिव प्रतिहिंसा की मूर्ति बन जाते हैं। वे सती के मृत शरीर को लादे देवों से प्रतिशोध लेने का निश्चय करते है।

तृतीय दृश्य में शिव के मानसिक द्वन्द्व का सुन्दर चित्रण किया गया है। सती के विरह में शिव सामान्य जन की तरह प्रलाप करते हैं वरुण और कुवेर शिव से सधिं करना चाहते है, लेकन शिव को सिवाय युद्ध के और कुछ नहीं सूझता। वे कहते है कि यदि संध्या तक सती में चेतना न आई तो पूरा ब्रह्मण्ड भस्म कर दूँगा।

इन्द्र, वरुण, कुवेर शिव के साथ युद्ध करने का निश्चय करते है किन्तु ब्रह्मा उनका साथ नहीं देते। इन्द्र प्रजा की रक्षा के लिए युद्ध चाहते हैं, लेकिन ब्रह्मा इसे आत्म घात मानते है। वे शिव की सेना को बढ़ते हुए देखकर भी उत्तेजित नहीं होते वे शिव की सेना को और निकट आने देने का आदेश देते हैं– इन्द्र पुनः आत्म रक्षा के नाम पर युद्ध की आज्ञा चाहते है। ब्रह्मा कहते है–

"मै आज्ञा दूँ?

लेकिन मैं तो आत्म घात को

आत्म सुरक्षा नहीं समझता।"[176]

उनके विचार से युद्ध समस्या का समाधान नहीं है। भीड़ के उत्तेजित नारों और दबाब के बावजूद वे युद्ध की आज्ञा नहीं देते हैं। उनके अनुसार यदि दूसरा पक्ष अन्धा हो जाय तो तुम भी उसी तरह क्रोधान्ध हो जाओगे? क्या युद्ध स्वयं में कोई उपलब्धि है। इन्द्र का विचार है कि जहाँ न्याय की हत्या हो रही हो, जहाँ आसुरी शक्तियाँ सर उठाएँ, वहाँ धैर्य का दुर्ग अन्ततः ढह जाता है। तब एक मात्र उपाय युद्ध ही रह जाता है। ब्रह्मा इसे सामूहिक आत्मघात' की संज्ञा देते है। इसी समय सर्वहत प्रवेशकर इन्द्र से युद्ध की अनिवार्यता पर व्यंग करता है। वह कहता है युद्ध चाहने वाले वास्तव में अपने उत्तरदायित्व से बचना चाहते हैं। तुम न्याय के नाम पर जो युद्ध चाहते हो वह भी नये मूल्यों से कतराना है–

"युद्ध एक व्यस्तता का नाटक है,

तुमने भी न्याय के नाम पर

यह नाटक रचना चाहा था

नये सत्य की सृजन व्यथा से

कतराना बचना चाहा था।"[177]

विष्णु शिव के पास प्रणाम बाण छोड़ते हैं। थोड़ी देर बाद सूचना मिलती है कि शिव की सेनाये वापस लौट गई हैं,, युद्ध समाप्त हो गया हैं।

'एक कंठ विषपायी' में दो विरोधी विचारधाराओं और पात्रों का संघर्ष है। एक ओर दक्षहै जो जान बूझकर शिव का अपमानित करने की योजना बनाते हैं, तो दूसरी और उनकी पत्नी वीरिणी है जो समझौता करके मामले को टालना चाहती है। एक ओर विषपायी शिव है जो प्रतिशोध की ज्वाला में जलकर युद्ध को उतारु है और तीसरी ओर इन्द्रादि देवता है जो युद्ध का जबाब युद्ध से देकर सामूहिक आत्महत्या की बात करते हैं। नाटक का द्वन्द्व एक साथ दो स्तरों पर चलता है। एक युद्ध की विभीषिका के स्तर पर और दूसरा परम्परा के बोझ के स्तर पर। युद्ध करना चाहिए या नहीं। यह प्रश्न द्वन्द्व का कारण है। पुरानी पीढ़ी और नवीन पीढ़ी का संघर्ष भी दृष्टव्य है। व्यक्तिगत मानसिक संघर्ष वीरिणी और सर्वहत के माध्यम से व्यक्त हुआ है। वारिणी का संघर्ष भावी आशंका और वात्सलय से पूरित है। चरित्रांकन की दृष्टि से एक कंठ विषपायी के लगभग सभी पात्र टाइप बन गये है। सर्वहत युद्ध पीड़ित जनता का और शासन त्रस्त जनता का प्रतीक है। शंकर पुरातन व्यवस्था के, इन्द्र युद्ध प्रिय शासकों के और ब्रह्मा शान्ति प्रिय शासक के प्रतीक है। इसी प्रकार दक्ष प्रजापति उद्धत राजा, वरुण, कुबेर अपनी ही रक्षा से भीत देव और विष्णु व्यवहारिक व्यक्ति के रूप में हमारे सम्मुख आये हैं।

सर्वहत 'एक कंठ विषपायी' का सबसे अधिक जींवत पात्र है। वह सभी

घटनाओं का साक्षी और जनता का प्रतीक है। प्रारम्भ में वह एक आज्ञाकारी सेवक के रूप में दिखाई देता है, लेकन दक्ष यज्ञ के विध्वंश के बाद वह विक्षिप्त सा हो जाता है। व्यंग्य उसके जीवन का अंग बन जाता है। वह कटु सत्य बोलने वाला पात्र है। उसके प्रश्नों का उत्तर किसी के पास नहीं।

ब्रह्मा देवों के नायक दूरदर्शी चतुर और समझदार है। क्षणिक घटनाएं उन्हें उत्तेजित नहीं करती। गम्भीरता उनका भूषण है। इन्द्र के बार बार उकसाने पर भी वे युद्ध की आज्ञा नहीं देते। वास्तव में उन व्यक्तियों से युद्ध को चाहे वह किसी हेतु लड़ा जाय बुरा समझते हैं। इन्द्र आधुनिक युद्ध पिपाशु शासकों के प्रतीक है। वे मर्यादा और मान के नाम पर युद्ध लड़ना चाहते है। आत्म सुरक्षा, संरक्षण और न्याय के नाम पर युद्ध करने वाले लोगों का तर्क है कि–''हानि लाभ के सन्दर्भों में मान और मर्यादा के प्रश्न नहीं परखे जाते।'' इन्द्र में अहंम, उग्रता, क्रोध और अधीर स्वभाव के चित्रित किये गये हैं।

शिव क्रोधी हैं, किन्तु उनका क्रोध परिस्थिति जन्य है। वे अपमान का बदला क्रूरता से लेते हैं। वे अनुदारवादी हैं। वे परम्पराओं से चिपके रहना चाहते है। लेकिन जब परिवर्तन है तो उसमें उत्पन्न विषम स्थितियों का जहर भी वे ही पी लेते हैं। वे सच्चे प्रेमी के रूप में दिखाये गये हैं।

वीरिणी में रानी सुलभ उदारता, ममता और दया है। सामाजिक बन्धनों का पालन करना वह कर्तव्य समझती है। यहाँ उसका मातृ रूप ही अधिक व्यक्त हुआ, पति रूप नहीं। दक्ष हठी, क्रोधी हृदय है। अनाहूत आई पुत्री को सामान्य दर्शक की तरह यज्ञ देखने की बात कठोर हृदय पिताजी ही कर सकते हैं।

चरित्रांकन की दृष्टि से 'एक कण्ठ विषपायी' सफल रचना है। फिर एक कण्ठ विषपायी के चरित्रों में कुछ विसंगतियां देखने को मिलती है जिनका निवारण नहीं हो पाता। विषपायी शिव तो परम्परा द्रोही रहे हैं वे सदैव सामाजिक परम्परा

से हटकर चले है, फिर भी परम्परा ग्रस्त कैसे हो गये। शिव और दक्ष के चरित्र में भी समानता है। दक्ष ने अपने अपमान का बदला लेने के लिये शिव से प्रतिशोध लिया और शिव ने भी अपना बदला लेने के लिए दक्ष से प्रतिशोध लिया। वास्तव में शिव के तीन रूप है– उनका एक रूप परम्परा भंजक का है, दूसरा स्वरूप मानवीय संवेदनाओं से मुक्त देवता का है और तीसरा रुप परम्परा ग्रस्त व्यक्ति का है। वास्तव में हर नई पीढ़ी पिछली पीढ़ी के प्रति विद्रोह करती है। पुराने उससे चिपके रहते हैं। जब हम स्वयं पुराने हो जाते हैं तो हमे नये विचारों और सिद्धान्तों से जूझना पड़ता है। विद्रोह–आस्था–विद्रोह यही तो क्रम है जो युगों से चला आ रहा है। शिव क्या समझते थे कि वे जिस समस्या को लेकर दक्ष से युद्ध कर रहे हैं वही समस्या उनके सामने आ खड़ी होगी?

'एक कण्ठ विषपायी में कवि का हृदय मानवीय मूल्यों के प्रति ही अधिक संवेदनशील रहा है। कहीं–कहीं वैचारिक पृष्ठभूमि पर आकर कवि सूक्तिकार बन गया है, यथा–

"दुर्दिन जब आते हैं
तो पहले,
व्यक्ति का स्वतन्त्र बोध चिन्तन
और प्रज्ञा कर लेते हैं।"[178]

यहाँ तुलसी की वही नीति वाणी दुहराई गई है–

'जाको प्रभु दारुण दुःख देंही, ताकी मति पहिलेहि हरि लेंही।'

एक कण्ठ विषपायी की भाषा सहज सरल और सामान्य है नन्द दुलारे बाजपेयी के विचारों में–'एक़ कण्ठ विषपायी की भाषा' गद्य की सरिण पर चली गयी है। परन्तु गद्य का रुखा प्रभाव या नकलीपन उसमें नहीं है।[179]

वास्तव में प्रस्तुत गीतिनाट्य पढ़ने पर कहीं–कही बिल्कुल गद्य जैसा प्रतीत

होता है। ऐसा लगता है जैसे गद्य के ही टुकडे करे पद्य का आकार दिया गया है। उदाहरणार्थ वीरिणी का प्रारम्भ का कथन देखिये–

"स्वामी

हमको इच्छा के विरुद्ध भी

ऐसे बहुत से कार्य करने पड़ते हैं

जिनसे आलौकिक मर्यादा का पालन होता है।"[180]

इसी कथन को इस प्रकार भ कहा जा सकता है– 'स्वामी! हमको इच्छा के विरुद्ध भी ऐसे कार्य करने पड़ते हैं, जिनसे लौकिक मर्यादाओं का पालन होता है।" स्पष्ट है कि 'एक कण्ठ विषपायी' की भाषा गद्य के अधिक निकट है।

प्रस्तुत गीतिनाट्य की अभिनेयता के सम्बन्ध में भी अलग–अलग मत हैं। एक वर्ग हो इसमें सजग नाटक प्रतिभा के दर्शन नहीं होते। तनाव और नाटकीयता का अभास देने के लिए रेटरिक का सहारा लिया है। इसके समस्त कार्य व्यापार और भाव व्यापार गति का बोध नहीं कराते और उसमें सच्ची नाटकीयता स्थापित नहीं हो पाती।[181]

दूसरी ओर कुछ समीक्षक इसमें पूर्ण नाट्यकीयता के तत्व देखते है। बाजपेयी के अनुसार यह–'काव्यनाटक शिल्प की दृष्टि से और नाटकीय उपकरणों की दृष्टि से काफी समृद्ध है। उसकी कथा नाटकोचित विकास क्रम से समन्वित है।'[182] वास्तव में उक्त दोनों ही मत अतिवादी है। 'एक कण्ठ विषपायी' में नाटकीय स्थितियों का ध्यान तो रखा गया है लेकिन पर काव्य हावी है। कहीं–कहीं अतिशय भावुकता ने नाटकीय स्थिति को दबाने का प्रयत्न किया है। फिर भी उसका रंगमंच पर सफल अभिनय किया जा सकता है।

वातावरण सृष्टि में भी लेखक को विशेष सफलता मिली है। ऐसा प्रतीत होता है। जैसे युद्धोत्तर स्थिति का बिम्ब हमारे सामने आ खड़ा हो विष्णु दक्ष नगरी

का वर्णन करते हुए कहते हैं–

"जन संकुल राज मार्गः नीरव

जन हीन नगर

चिड़ियों के चुने हुए पंखो से

सारे घर

सारा घर छिन्न भिन्न

पूरा परिवेश भग्न।"

वास्तव में शब्द बिम्ब प्रस्तुत करने में दुष्यन्त कुमार जी को विशेष सफलता मिली है। चित्रात्मकता, बिम्ब और प्रतीक सभी दृष्टियों से यह गीतिनाट्य सुन्दर है।

सामान्यतः 'एक कण्ठ विषपायी' की तुलना अन्धायुग से की जाती है। लेकिन दोनों के विषय में और शिल्प में अन्तर है। अन्धायुग की मूल समस्या दिशाहीन संस्कृति है, जिसमें विकृति, कुरुपता और कुण्ठा आद्योपांत भरे है। वहाँ अर्धसत्यों के विरुद्ध प्रतिकार की लड़ाई है। लेकिन 'एक कण्ठ विषपायी' में नई और पुरानी पीढ़ी का संघर्ष है। 'अन्धायुग' में युद्धोपरान्त की विकृति है, एक कण्ठ विषपायी में युद्ध के पूर्व और बाद दोनों का विवेचन है। युद्ध की विभत्सता दिखाने के बाद भी इन्द्र पुनः युद्ध को तत्पर है। जिस प्रकार एक महायुद्ध के भीषण परिणामों को देखकर भी द्वितीय हुआ। यदि चाहते तो युद्ध टाला जा सकता था था लेकिन हिटलर को ब्रह्मा नहीं मिले। कुल मिलाकर 'एक कण्ठ विषपायी' एक सशक्त रचना है। जिसमें गीतिनाट्य के लगभग सभी तत्वों का सम्मिलन है।

ज्ञान कुमारी अजीत– ज्ञान कुमारी अजीत ने बच्चों के लिए छोटे–छोटे नाटकों की रचना की है। इनमें नृत्य नाट्य, संगीत नाट्य, नृत्य रूपक, संगीत फीचर और गीतिनाट्य है। रंगमंच में इन सभी प्रकार के नाटकों को एक साथ

संग्रहीत किया है।

'उद्धव व्रज में''–[183] इनका एकांकी गीतिनाट्य है जिसमें पाँच दृश्य है। इसमें उद्धव के व्रज जाने का चित्रण है। प्रथम दृश्य में उद्धव कृष्ण के कहने पर व्रज जाते है। द्वितीय दृश्य में राधा के क्षीण अन्तर्द्वन्द्व की झाँकी है तृतीय दृश्य में उद्धव गोपियों को ज्ञान का उपदेश देते है। लेकिन उसका कोई प्रभाव नहीं होता। अन्त में कृष्ण के पास जाकर उद्धव गोपियों का सन्देश कहते हैं।

गीतिनाट्य के शिल्प पर यह खरा नहीं उतरता। न तो इसमें संघर्ष है न भावाभिव्यंजना। सूरदास के पदों को जोड़–जोड़ कर कथानक को आगे बढ़ाया है। दूसरे लेखिका ने सूरदास के गीतों को मूक अभिनय के साथ जोड़ दिया है। यद्धपि इस गीतिनाट्य का प्रदर्शन 1961 तथा 64 में रंगमंच पर हो चुका है। लेकिन साहित्यिक दृष्टि से इस गीतिनाट्य में कुछ भी नहीं है। काव्यत्व के दर्शन कभी भी नहीं होते। चरित्रांकन संघर्ष, भाषा शैली आदि सभी दृष्टियों से यह गीतिनाट्य असफल है। शायद लेखिका का उद्देश्य मात्र प्रदर्शन और बालकों का मनोरंजन करना ही रहा है। इस दृष्टि से वे सफल है।

अज्ञेय– प्रयोगवादी कविता के कर्णधार और साहित्य में अनेक नये प्रयोग करने वाले अज्ञेय का नाम अधुनातन साहित्य में अग्रणी है। गीतिनाट्य की सम्प्रेषणीयता से प्रभावित होकर आपने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित गीतिनाट्य ''उत्तर प्रियदर्शी'' की रचना की है। इसकी प्रेरणा फाह्यान और ह्यु–एन–त्सांग के वर्णनों से प्राप्त हुई हैं। फाह्यान ने लिखा है कि एक बार सम्राट अशोक ने सोचा कि प्रेत राज भी दुष्टों को दण्ड देने के लिए नरक बना सकता है। तो मैं नरकेश्वर क्यों नहीं बन सकता। उसने तत्काल एक नरक बनाने का आदेश दिया, जिसका अधिपति एक क्रूर व्यक्ति बनाया गया। इसमें किसी की भी मुक्ति नहीं थी, राजा की भी नहीं। किन्तु एक बौद्ध भिक्षु पर उसकी यन्त्रणा का कोई प्रभााव नहीं पड़ा।

राजा समाचार सुनकर स्वयं भिक्षु के पास गया और उसके उपदेशों से प्रभावित होकर नरक को तुड़वा दिया।[184] नरक बनाने की पुष्टि ह्यु–एन–त्सांग ने भी की है।'[185] इसकी प्रेरणा का दूसरा स्रोत जापानी आपेरा मोह भी है।[186] इस कथा को आधार बनाकर ''उत्तर प्रियदर्शी'' की रचना की गई है।

कथानक इस प्रकार है– एक बार भ्रमण करते हुए महाश्रमण गौतम बुद्ध एक बालक के पास रुके और भिक्षा माँगी। बालक ने मुदित मन एक मुठ्ठी धूल उठाकर उन्हें दे दी । यही बालक अगले जन्म में अशोक हुआ और इसी दान के फलस्वरूप वह जम्बूद्वीप का राजा बना। यह कथा प्रारम्भ में स्मरण करो कहकर सम्पादकों के माध्यम से बताई जाती है। इसके पश्चात कलिंग विजयी अशोक के अहं का चित्रण है वह कहता है–

''राज राज राजेश्वर
परमेश्वर प्रियदर्शी
आ समुद्र आ क्षितिज
जहाँ जो दीख रहा है–
मेरा देवानां प्रिय का–शासित है।''[187]

वह मंत्री से पूँछता है कि बताओ मेरा 'शासित नरक कहाँ है?' राजा की इच्छा से नरक बनता है। घोर उसका अधिपति बनाया जाता है। वह अपना दमन चक्र प्रारम्भ करता है। एक भिक्षु भिक्षा माँगता हुआ नरक द्वार में प्रवेश कर जाता है और उसे पकड़ कर खोलते कढ़ाह में डाल देता है। लेकिन वह देखता है कि आग की लपटे ठण्डी हो गई हैं भिक्षु पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। समाचार सुनकर स्वयं सम्राट वहाँ पहुँचते है। भिक्षु बताता है कि नरक तुम्हारे भीतर है। अंहकार ही वह नरक है। जब हृदय में पारमिता करुणा जाग्रत होती है। तो अंहकार समाप्त हो जाता है, नरक गल जाता है–

"जहाँ तुम्हारे अंहकार का

यम की सत्ता

स्वंय तुम्ही ने दी उनको

तुम हुए प्रतिश्रुत

एक समान अकरुणा के बन्धन में

नरक तुम्हारे भीतर है वह । वहीं

जहाँ से निसृत पारमितता करुणा में

उसका और धुलता है—स्वयं नरक ही गला जाता है।"[188]

भिक्षु के उपदेश से अशोक के ज्ञान चक्षु खुल जाते है। वह नरक तुडवा देता है उसके दर्प का। विजय लाभ पर पहले अंहकार ध्वस्त होने पर नये मूल्य का बोध, नई दृष्टि का उन्मेष यही मनोवैज्ञानिक क्रम है। उत्तर प्रियदर्शी अशोक की तरह आज का मानव भी भाँति और दुलार का अकांक्षी है। दूसरी ओर युग का यमराज उन्हें भयंकर यातना देना चाहता है। करुणा द्वारा नरक की मुक्ति हमारे अन्दर के अहं की समाप्ति है नरक का आयोजन अपने तन के प्रेत–शत्रुओं को दण्ड देने के लिए ही है। गहरे धरातल पर मानवीय मूल्यों की खोज इस गीतिनाट्य मे की गई। मोहान्ध हुआ मानव बिना पारमिता करुणा के नरक की यातना सहता रहेगा। वास्तव में मानव का सदैव सद् और असद् से संषर्ष चलता रहता है। कभी वह एक ओर झुकता है कभी दूसरी ओर। 'उत्तर प्रियदर्शी' में भी इसी सद् असद् का संघर्ष है मनुष्य ने असद् के मार्ग पर चल कर जिस नरक का निर्माण किया है, उससे प्रेम और करुणा द्वारा ही मुक्ति मिल सकती है।[189]

अशोक मन का असद् अन्ततः पराजित होकर करुणा के समक्ष आत्म–समर्पण कर देता है। चरित्रांकन की दृष्टि से इस गीतिनाट्य में दो ही प्रधान पात्र है—अशोक और घोर । अशोक में अहमं और क्रूरता है जो कालान्तर में बदल जाती

है। घोर जनरल हास्पिटल बनता है और इसके निर्माण के साथ ही शहर के वह चित्र प्रारम्भ हो जाते है जिसे सभ्यता कहा जाता है। वर्ग–विस्फोट, तोड़ फोड़ शहर की भीड.भाड़ में व्यक्ति का अस्तित्व खो जाता है–

"बूँद बूँद से भरा समुद्र बूँद खो गई
व्यक्ति खो गया आत्म अभिव्यक्ति खो गई
युग की अजेय शक्ति आज है समूह में
आज विश्व कर रहा समूह बाद का निपात।"[190]

यूनियनें बनी, संघ बने। लोग शहर की ओर भागने लगे। गाँव के गाँव औद्योगिक बस्ती की ओर दौड़ पड़े उसका वर्णन अच्छा हुआ है–

"गाँव चले
गाँव के किसान
घरवार हल बैल जर जमीन बेच खूँच चले।
पगडंडी भाती नहीं सड़क चले
फेंक फाँक धोती को
पतलून में कसे कड़क चलें
बासी हुए चेतावर कजरी बारहमासे
भाते हुए सिने गीत बहक चलें
शहर चलें शहर चलें शहर चलें।"[191]

प्राचीन परम्पराएं ढह गई, नवीनता की लहर आई। युग की मान्यताएँ बदल गई परिभाषाएँ बदल गई। मानव दिशाहीन होकर आवारा कुत्ते सा झूँठी पत्तलें चाटने लगा।

यह द्वितीय दृश्य का वर्णन है। इसी सभ्यता का आगे का चित्रण प्रथम व्रत्त में है जिसमें पुलिस गोली काण्ड में मरे प्रेतात्माओं और चरुआ का वार्तालाप है।

इसमें वर्तमान सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक परिवेश का सुन्दर चत्रिण है। हाशिम की प्रेतात्मा कहती है कि आज का धर्म अवसरवादी हो गया है। छः दिन पाप के बाद 'सनडे' को क्रास बाँधकर भगवान से मनोतियाँ मनाता है। पाप करके तीरथ नहाता था—

"तीरथ नहाएगाा धोलेगा पाप को

खो देगा जीवन के सारे संताप को

घोड़ा एक चर्रक खरीदेगा नमाज में

राम नाम जप लेगा खुजली और खाज में।"[192]

आज का राजनीतिज्ञ दलबन्दी, गुटबन्दी, भाषणबाजी,, लफ्फाजी में पटु हो गया है। सत्य और अहिंसा के नाम पर वह भले बुरे सब काम करता है। 'आग्रह अहिंसा का हिंसा की धोकियाँ उसका धर्म बन गया है।

"दलबंदी गुटबंदी जोड़दार सम्भाषण

मुँह फेरी मनफेरी, तुम्बा फेरी का जसन।"[193]

चरुआ कहता है कि आज के साहित्यक भी नकल करने लगे है। अगर आज समाज की नकाब उलट दी जाय तो सब नकटे दिखेगें—

"कहो क्या कवियों के नकली स्वर आते हैं

भाड़े पर रोते है, भाड़े पर गाते हैं

कोइ नहीं आज जो नकलियत समेट ले

और इस जहान को असलियत भेंट दे।"[194]

मानव साम्प्रदायिकता की आग में जल रहा है। मानव मानव से घृणा करता है।

तृतीय वृत्त में वर्तमान नारी की पिपाशा का चित्रण हंस और हरिणी के रूप में हुआ है। मानव बहेलिये की तरह हरिणी नारी के पीछे पड़ा है, अपनी प्यास

बुझाने के लिए। हरिणी भागती है और चरुआ के अन्तर्मन का सहारा लेती है। किन्तु वहाँ उसे सन्तोष नहीं मिलता। यह सोचती है–

"एक को मन दूँ दूसरे को तन

नारी के जीवन की नियति यही

रोज उसे ओढ़ता है नया रंग।"[195]

इसी लिप्सा मे हरिणी भागकर बहेलिये के पीछे हो लेती है और फिर वह हिरणा बन हँसिनी किसी की लिखी हुई किसी की लैला। यह नारी का ही वर्णन है–

"गोरा गोरा तन खुली बाहों में फैला

किसी ने आह कहा, कहा किसी ने वाह

किसी की प्यास मिटी, किसी की भूख।"[196]

लेकिन हंसिनी ही प्यास नहीं मिटी वह सोचती है–

"मन की नियति को किस तरह लांघू मैं

किस तरह अपनाऊ तन का व्यापार।"

अपनी लिप्सा और प्यास बुझाने वह गोरों के देश में जाती है, जहाँ नाइट क्लबों में नग्न नृत्य होता है। लेकिन उसकी प्यास वहाँ भी नहीं बुझती। अन्त में वह हनी हग्न (अत्याधुनिक उभरते हुए वर्ग का उन्मुक्त और उच्छृखल प्रदर्शन) का आनन्द लेने ब्रह्माणी नदी के पास जाती है। किन्तु शान्ति वहाँ भी नहीं मिलती। क्योंकि शान्ति वासना में नहीं त्याग में है। अतः वह शान्ति की खोज में इधर उधर दौड़ती है वह कहती है–

"लिप्सा की बाहों का फैलाव अन्तहीन

कौन पा सकेगा पार।"[197]

चतुर्थ वृत्त में मानव की उच्च आकांक्षा का चित्रण है मानव विभिन्न धार्मिक

मत–मतान्तरों में फँसकर अपने को भूल बैठा है। देवता चरुआ की अन्तरचेतना को वापस भूमि पर भेज देता है ताकि वह धरती की जाकर सेवा कर सके, उसे संवार सजा सके। वह उसे पौरुष का 'सलीव' देकर विदा कर देता है। यही इसका कथानक है।

सम्पूर्ण गीतिनाट्य वाचिक क्रिया से पूर्ण है। वर्तमान को सन्दर्भित करते हुए अवचेतन की जिन धुँधुली तस्वीरों को लेखक ने उभाड़ा है हमारी इसी प्रत्यक्ष की नगरी की हैं। कहीं–कहीं लेखक की अनुभूति इतनी प्रखर हो गई है कि वह अशिव को प्रस्तुत करने में भी नहीं हिचकिचाया अवचेतन पूर्ण नग्न होकर उतरा है। तृतीय वृत्त में तो पिपाशा का सुन्दर चित्रण हुआ है–

गोरे गोरे हंस और हंसिनियाँ
चा चा चा में जोड़े रहे झूम
सिर को सूँघते, और रहे चूम
खुला खुला खेल यह, खुला खुला प्यार
खुला प्रेम विनियम, तन का व्यापार।''[198]

आज के जमाने क़े प्यार का धरातल ठोस
ओंठों का संघषर्ण आलिंगन परिरम्भण।''[199]

गीतिनाटक का अधिचेतन की अवस्था में हुआ है जिसके कारण उसमें रहस्यवाद जैसी दुरुहता आ जाती है। किन्तु उसके पीछे आशावादिता और नव निर्माण की प्रेरणा छिपी है।

इस गीतिनाट्य की मुख्य विशेषता मानव के वर्तमान परिवेश को प्रस्तुत करना रहा है जिसमें लेखक को पूर्ण सफलता मिली है। चरित्र चित्रण की दृष्टि से इसमें सफलता नहीं मिली। चरुआ ही एक मात्र है जो चारो वृत्तों में है। इसके

अतिरिक्त प्रथम वृत्त में हाशिम की प्रेतात्मा तृतीय दृश्य में हंसनी हिरणा और अतिंम वृत्त में देवता है। क्रियात्मकता इन पात्रों में बिल्कुल नहीं है प्रायः दो पात्र ही आपस में वर्तमान समाज की स्थितियों की व्याख्या सी करते रहते हैं। सभी पात्र निष्क्रिय हैं स्त्री की प्रतीक हंसनी अवश्य सुख और शान्ति की खोज में इधर–उधर भटकती है,, किन्तु उसे शान्ति नहीं मिलती।

मानसिक द्वन्द्व अवश्य आदि से अन्त तक देखने को मिलता है। घटनाओं का विवरण नरेशन के माध्यम से किया गया है। यथा–राउरकेला और औद्योगिक बस्ती के पूर्व पुलिस के प्रत्याचारों का वर्णन। संवादों की दृष्टि से 'यक्ष की नगरी: प्रत्यक्ष की नगरी' सुन्दर है। वृत्तगंधी कथोपकथनों के माध्यम से कवि जो कुछ भी कहना चाहता था उसने कहा है। भाषा में सशक्तता है किन्तु कहीं–कहीं ऐसे शब्दों का प्रयोग हुआ है। जिनका सामान्य प्रयोग नहीं होता। यथा–हनी–हग्न, घोड़ा एक चर्रक आदि। वर्तमान परिवेष से सम्बन्धित अंग्रेजी शब्दों का भी बाहुल्य है। यथा– फेयर, शोप, चैंज और एक्चचेंज, एनेस्थेशिया शावर आदि। कहीं–कहीं कहावतों और मुहावरों का भी प्रयोग हुआ है। कहीं–कहीं साले, सियार आदि शब्दों का प्रयोग वातावरण सृजन में सहायक हुआ है।

यत्र–तत्र काव्यात्मक चित्र भी प्रस्तुत हुए है। कहीं–कहीं कवि भावुक होकर क्रान्ति की बात कर उठता है–

"नोंचे दें पंख हम भराल का
और दें दबोच सिर मराल का
सुख भाग सम भाग हम करें
दुःख भाग सौंप दें मराल को।"[200]

प्रकृति के दो एक चित्र सुन्दर बन पड़े है लेकिन उसके प्रतीक आधुनिक हैं–

"औंधा आकाश का तिलिस्मी कटोरा

शीर्षस्थ चन्द्रमा पुनो के निशीष्य का

डाल रहा गुमसुम जादुई डोरा

सम्मोहन छा रहा सारे निसर्ग पर

अखिल आत्मा चराचर

थके–थके, रुके–रुके

ठगे–ठगे बिके बिके।"[201]

एक और बिम्ब देखिए–

"रूहर कला

रूप कला

हर तरफ रूप ही ढलक रहा

मोरम की धूप में एक लोह फूल खिला

भरकती पहाड़ियाँ गर्बीली

पहन हरित साड़िया घँघरीली

झूम–झूम

कोयल के सरस अधर चूम–चूम बलखाती

सुबह शाम दुलराती

चिर क्वारी घाटी की गोद में

किलक रहे, हेम कांत शिशु को।"[202]

इस गीतिनाट्य को मंच पर प्रस्तुत करना सहज सम्भव नहीं। बार–बार बदलते दृश्य, यायाबरी हंसिनी और हरिणा का चित्रण, विभिन्न बैले नृत्यों का आयोजन इतनी शीघ्रता से सम्भव नहीं हैं। हाँ रेडियो पर ध्वनियों के द्वारा इसका प्रस्तुतीकरण पूर्ण सम्भव है। वैसे रंग संकेत लेखन ने दिये हैं। ध्वनि संकेत भी दिये

हैं। नाटकीयता भी है।

इसे भी लेखक ने काव्य रूपक और ईहामृग कहा है। लेकिन यह ईहामृग को कसौटियों पर खरा नहीं उतरता।

कुँअर चन्द्र प्रकाश सिंह–"अपराजिता"[203]– कुँअर चन्द्र प्रकाश सिंह का ध्वनि रूपक है। जिसमें भगवती जगदम्बा द्वारा शुंभ–निशुंभ राक्षसों का बध वर्णित है। प्रारम्भ में शुंभ–निशुंभ के पराक्रम का चित्रण है जिससे त्रस्त होकर देवता लोग भगवती अपराजिता से प्रार्थना करते हैं। पार्वती प्रसन्न होरक जगदम्बा का रूप धारण कर शुंभ–निशुंभ के बध का निश्चय करती है।वे अद्‌रूप धारण करती है जिसकी ख्याति शुंभ–निशुंभ तक पहुँचती है। वे सुग्रीव को दूत बनाकर भगवती के पास भेजते है और कहते हे भगवती हम दोनों भाइयों में से किसी एक का वरण करे। भगवती शर्त रखती है कि जो उन्हें युद्ध में पराजित करेगा वे उसी के साथ वरण करेंगी।

शुंभ–निशुंभ सर्वप्रथम सेनापति धूमलोचन को भेजते हैं जो जगदम्बा के द्वारा भस्म कर दिया जाता है। इसके बाद चंड, मुंड को भेजा जाता है। जगदम्बे का साहित्वक क्रोध काली (चामुण्डा) का रूप धारण कर इन दोनों का बध करता है। रक्त बीज की यह विशेषता थी कि जहाँ भी उसका रक्त गिरता था वहीं अन्य रक्त बीज पैदा हो जाते थे। शुंभ–निशुंभ का सामना करने के लिए दुर्गा, ब्रह्मणी, माहेश्वरी वैष्णवी, कौमारी, एन्द्री, बाराही गरसिंही सभी एक हो जाती हैं। रक्तबीज से लड़ाई होती है। चामुण्डा रक्त बीज का समस्त खून पी जाती है। जिसके बाद उसका बध होता हैं। अन्त में शुंभ–निशुंभ से युद्ध होता है। अन्त में जगदम्बा उनका भी संहार करती है। देवगण उनका गुणगान करते हैं।

अपराजिता की कथा घटना प्रधान है। उसमें कहीं भी आन्तरिक संघर्ष के दर्शन नहीं होते। समान्य रूप से कथानक आगे बढ़ता रहता है। बाह्य संघर्ष भी

बहुत तीव्र नहीं है। बीच बीच में बाचक का कथन कुछ खलता है।

सही माने में इसे गीतिनाट्य नहीं कहा जा सकता। क्योंकि भाव सबलता अन्तर्द्वन्द और संघर्ष इसमें है ही नहीं जो कि गीतिनाट्य का प्राण होता है। सम्वाद अवश्य ही तीखे, सुन्दर और सुरुचिपूर्ण है। जगदम्बा द्वारा 'योग्य क्षेम वहाम्यह्म' कहकर सभी को अभय करती है। वास्तव में न तो इसमें कल्पना की प्रधानता है और न कोई नवीन उद्भावना है। मात्र धार्मिक भावना से प्रेरित होकर लिखा गया है।

रामेश्वर सिंह काश्यप— रामेश्वर सिंह काश्यप सांप्रतिक युग के श्रेष्ठतम गीतिनाट्यकारों में से हैं। आपके गीतिनाट्य रंगमंच पर अभिनीत भी हुए है और रेडियों से प्रसारित भी हुए है। इस दृष्टि से आपकी रचनाएँ शैली, शिल्प, काव्य और नाटकीयता सभी दृष्टियों से सुन्दर हैं। आपकी दो रचनाएँ हैं—(1) नीलकण्ठ निराला और (2) समाधान।

''नीलकण्ठ निराला''— वस्तुतः काव्य रूपक है, जिसमें निराला के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का अंकन किया गया है। इसे 'डाक्यूमेण्टरी' नाटक भी कह सकते हैं। इसमें मानसिक द्वन्द्व का आभाव है। विविध व्यक्तिओं के माध्यम से महाकवि के जीवन की घटनाओं का चित्रण किया गया है।[204]

पूरा नाटक एक ही दृश्य बंध पर समाप्त होता है—निराला के कमरे में। इस नाटक को विहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन पटना की नाटृय—परिषद् की ओर से दिनांक 8.11.59. को सफलता पूर्वक प्रदर्शित किया गया है, जिसमें स्वयं लेखक ने निराला की भूमिका निभाई। इसमें निराला की दानशीलता, अक्खड़पन, व्यंग्य—विनोद हार्दिक पीड़ा आदि को प्रस्तुत किया गया है।

'समाधान' श्रेष्ठतम गीतिनाट्यों में से है। इसकी रचना प्रारम्भ में 'माँ मेरी शक्ति' के नाम से हुई है। बाद में यही 'समाधान' के नाम से आकशवाणी से

प्रसारित हुआ। इसका प्रधान विषय वर्तमान राष्ट्रीय जीवन की समस्याओं से सम्बन्धित है। आज कुछ समाज सुधारक राष्ट्रीय–समस्याओं को सुलझाने में संलग्न है वहीं दूसरी ओर कुछ ऐसी शक्तियाँ हैं जो देश में विप्लव कराके स्वयं को स्वार्थ सिद्ध करना चाहती है। समाज सुधारक और ईमानदार गगन की हत्या कराके लेखक प्रश्न करता है कि बताइए इस समस्या का समाधान क्या है? लेखक का विचार है कि ''जब तक वर्तमान जीवन के मूल्यों में आमूल परिवर्तन नहीं होता, केव सतही समाधान प्रस्तुत करना एकांगी और निरर्थक है। राष्ट्र की भावात्मक एकता की समस्या केवल अनतर्जातीय विवाह को प्रोत्साहन देने से, अन्य धर्मों अथवा प्रान्त के निवासियों के साथ एक ही टेबुल पर चाय पीने या खाना खाने से अथवा तमिलवासियों के हिन्दी और हिन्दी क्षेत्र के वासियों के तमिल पढ़ लेने से हल नहीं हो जायेगी।''[205]

'समाधान' पाँच अंको का गीतिनाट्य है। इसमें एक ऐसे युवक की कहानी है, जो असामाजिक तत्वों के विरुद्ध डटकर मोर्चा लेता है और राष्ट्रीय हित में अपने प्राणों की आहुति दे देता है। गगन एक पत्रकार है, जिसका राज्य लक्ष्मी की पुत्री गोदावरी के साथ रागात्मक सम्बन्ध है। राज्य लक्ष्मी भारतीय नारी के उस वर्ग का प्रतीक है जो अन्ध–विश्वास और धर्मान्धता के कारण अनजाने ही राष्ट्रीय एकता की भावना का विरोध करने वाली शक्तियों की सहायता करती है। स्वामी चरण धर्म के नाम पर जनता की साम्प्रादायिक भावना को भड़का कर अपनी कलुषित भावनाओं को पूरा करता हैं। प्रथम अंक में स्वामी चरण और राज्य लक्ष्मी का वार्तालाप है। वे दोनों गगन से नाराज है। पुराने जमींदार महीप भी उससे अप्रसन्न है। महीप राज्य लक्ष्मी को फुसलाकर उसकी बेटी गोदाबरी की शादी अपने आवारा बच्चे विक्रम से करना चाहते है। लेकिन इसी बीच विक्रम आकर अपनी मूर्खता का परिचय दे देता है और साथ ही महीप के छद्मवेश की पोल

खोल देता है। उसके व्यंग्य बड़े तीखे और मार्मिक है। वह कहता है–

"पैसों के अलावा कोई और सम्बन्ध

नहीं होता पिता पुत्र में

कम से कम आज के जमाने में।"[206]

अथवा

"जवान कहाँ होता है, कोई भी आज इस देश में

अज्ञानी शिशु से अचानक हम

चिन्ताग्रस्त बूढ़े बन जाते है।"[207]

राज्य लक्ष्मी की पुत्री गोदावरी गगन की ओर आकर्षित है। राज्यलक्ष्मी उसे गगन से मिलने से मना करती है लेकिन गोदावरी इसे स्वीकार नहीं करती।

द्वितीय अंक में गगन गोदावरी का प्रेम–प्रसंग वर्णित है। विक्रम भी गोदावरी से प्रणय निवेदन करता है, जिसे गोदावरी ठुकरा देती है। उद्योगपति ढुंढिराज महीप और लीलाधर गगन को फुसलाकर अपने विरुद्ध न लिखने को राजी करना चाहते है, जिसे गगन अस्वीकार कर देता है। वह तीनों मिलकर साम्प्रदायिक दंगे कर देते है। जिनमें गोदावरी, गगन का आश्रय दाता राम शरण आदि को अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ती है। गगन के विरुद्ध षड़यन्त्र चलता रहता है। विक्रम भी अनेक व्यक्तियों की हत्या कर देता है, जिसमें उसके पिता महीप भी है। स्वामीचरण राज्यलक्ष्मी की सम्पति हड़प लेता है। ढुंढ़िराज आदि मिलकर अन्त में मातृ मन्दिर में गगन की हत्या कर देते हैं। यही नहीं अन्त में स्वयं गगन का स्मारक बनवाकर अपने को देश–प्रेमी प्रदर्शित करने की बात करते है। गगन कहता है–

"हाय रे दुर्भाग्य

यह कैसा निठुर व्यंग्य है

मृत्यु के दलाल मेरी लाश को भी बेचेंगे

मेरा नाम चढ़ेगा नीलाम पर, बाजार में

अपने छुरे को ये धोकर गंगाजल में

अपने स्वार्थ हेतु मेरी मृत्यु

मेरे नाम को भुनायेंगे।"

'समाधान' के पात्र दो प्रकार के हैं। यह संघर्ष बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार का है। दो विरोधी विचारों की टकराहट सद् और असद् का संघर्ष अंधकार और प्रकाश का द्वन्द्व सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। गगन की मृत्यु के समय उठने वाला मानसिक संघर्ष हमारे मस्तिष्क को आल्होड़ित विलोड़ित कर देता है। स्वामी चरण के हृदय में उठने वाला स्वार्थ का संघर्ष और गोदावरी के हृदय में उठने वाला प्रेम संघर्ष को लेखक ने सभी पहलुओं से चित्रित किया है। बाह्य संघर्ष में अन्त में उन लोगो की विजय होती है जो समाज विरोधी है। लेखक ने यथार्थवादी दृष्टिकोण अपना कर हमारे सामने एक प्रश्न चिह्न लगा दिया है कि क्या यही हमारा न्याय है? क्या सत्य की इसी प्रकार हत्या होती रहेगी? क्या अन्याय के समक्ष न्याय और सत्य इसी प्रकार मरते रहेगे ? वास्तव में 'समाधान' आदि से अन्त तक संघर्ष पूरित है।

'समाधान' के पात्र प्रतीकात्मक हैं। वे व्यक्ति और प्रतीक दोनों ही है। गगन, गोदावरी, रामशरण न्याय के दुर्बल पक्ष और उन शक्तियों का प्रतिनिधित्व करतें है, जो राष्ट्र के विघटनकारी तत्व का विरोध करतें है। दूसरी ओर राजलक्ष्मी, स्वामी चरण, तान्त्रिक, महीप ढुंढ़िराज, और लीलाधर राष्ट्रीय एकता को नष्ट करने वाली शक्तियों, अन्ध विश्वास, धर्म की आड़ में शिकार खेलने वाली प्रवृत्ति, जातिवाद एकाधिपत्य की भावना पर आधारित व्यवसाय और स्वार्थ के लिए बौद्धिकता का दुरुपयोग करने की भावना के प्रतीक है।"[208]

खण्डित नगर की प्रजाएँ वर्तमान भारत की जनता का प्रतीक है लेकिन इसके पात्र केवल प्रतीक ही नहीं व्यक्ति भी है। उनमें मानवीय विकास उसी प्रकार उपस्थित है जिस प्रकार एक व्यक्ति में होते हैं। लेखक ने पात्रों की प्रतीकात्मकता को पात्र–परिचय में विस्तार से प्रकाश डाला है।

'समाधान' के संवाद वृत्तगन्धी है। उनमें न तो अत्यधिक विस्तार है और न अस्वाभाविकता। उनमें सर्वत्र नाटकीयता और प्रेषणीयता है। गीतिनाट्य में युगाभिव्यक्ति सुन्दर हुई है। गगन आज की समस्या पर विचार प्रकट करते हुए कहता है–

"यह गुण्डागर्दी केवल विक्रम तक सीमित नहीं
यह सारे देश की समस्या है।
जीवन के सभ ऊँचे
मूल्यों के प्रति गहरी
व्याप्त जो अनास्था है
उसके लिए जुम्मेदार कौन है।"[209]

भाषा और शैली की दृष्टि से भी 'समाधान' सुन्दर कृति है। इसमें मुक्त छन्द का प्रयोग किया गया है, लेकिन कहीं–कहीं तुकांत छन्दों का प्रयोग भी हुआ है। भाषा विशुद्ध साहित्यिक है और विदेशी भाषा के शब्दों का प्रयोग नगण्य के बराबर है।

'समाधान' पूर्ण रंगमंचीय नाटक है। लेखक ने विस्तृत रंग–निर्देश दिये है। मंचीय व्यवस्था, पात्रों की वेष भूषा, स्वभाव प्रकाश व्यवस्था आदि के विस्तृत निर्देश है। पूरा नाटक एक ही दृश्य बंध पर खेला जा सकता है। पाँचों अंको की घटनाएँ एक ही स्थान पर घटित होती हैं अतः बार बार दृश्य परिवर्तन नहीं करना पडेगा। यह नाटक रेडियो पर भी प्रसारित हुआ है अतः ध्वनि संकेतों का भी आभाव नहीं

हैं। लेखक ने यत्र–तत्र संगीत सम्बन्धी निर्देश भी दिये है। संगीत नाटक अनुकूल वातावरण को परस्तुत करने में पूर्ण सक्षम है।

'समाधान' काव्य तत्व की दृष्टि से भी सफल है। कहीं–कहीं लेखक ने सुन्दर कल्पना का परिचय दिया है। विशेष रुप से गोदावरी–गगन के प्रकरण में सुन्दर काव्य–प्रतिभा का परिचय मिलता है। यथा–

"ऐसे क्रूर लोगों के बीच गोदावरी

अंधेरे के बीच जैसे संध्या की किरण हो,

मरु में ज्यों निर्झरिणी

लपटों के बीच जैसे हँसता कमल हो।"[210]

इसी प्रकार के काव्यात्मक कथोपकथन कई स्थान पर देखने को मिलते है।[211] "वास्तव में समाधान उन गिने–चुने गीतिनाट्यों में से है, जो रंग–मंच और ध्वनि दोनों ही दृष्टियों से सुन्दर है। इस दृष्टि से इसकी गिनती 'सूखा सरोवर', 'अंधायुग', 'एक कण्ठ विषपायी', 'उत्तर प्रियदर्शी' की परम्परा में की जाती है।

(स) समकालीन हिन्दी गीति–नाट्यों का गवेषणापरक परिशीलन

समकालीन गीति–नाट्य–समकालीन गीतिनाट्य शैली शिल्प और विषय वस्तु की दृष्टि से पूर्व के सभी गीतिनाट्यों से सुन्दर हैं। मानव मन के राग विरागों, भावनाओं और आवेगों को व्यक्त करने में ये गीतिनाट्य अद्वितीय है। भगवतीचरण वर्मा ने मनोविश्लेषणात्मक शैली के माध्यम से हृदय के द्वन्द्व को प्रस्तुत किया है। मानव मन सदैव कर्तव्य और अकर्तव्य के मध्य झूलता रहता है। पाप–पुण्य की गुत्थी उसकी समझ में नहीं आती। ऐसी स्थिति में वह द्विधाग्रस्त हो जाता है। इन गुत्थियों को सुलझाना इस युग के गीतनाट्यों की प्रधान विशेषता रही है।

इस प्रकार के गीतिनाट्यकारों पर फ्रायड के सिद्धान्तों का विशेष प्रभाव पड़ा है। इसका प्रधान कारण वर्तमान युग में फ्रायड का बढ़ता हुआ प्रभाव और

छाया वाद की सूक्ष्मता से स्थूलता की, तीसरे यथार्थवादी लेखक असुन्दर है, आत्म हंतायी कुठाओं और मनो दौर्बलय का वर्णन कर रहे थे। उनका भी कुछ प्रभाव इस काल में पड़ा। उदयशंकर भट्ट ने अपने गीतिनाट्यों में मानव मन के अहं और नैतिकाहं का सुन्दर विश्लेषण किया है। मानव मन की मूल भावना प्रेम और वासना वृत्ति है। विश्वामित्र, यतचगंधा, राधा सभी में उसी की प्रधानता है। लेकिन जब उसका उदान्तीकरण हो जाता है तो यह वासना और प्रेम जनहितैषिणी बन जाती है।

इस काल में गीतिनाट्यों की दूसरी विशेषता भावाभिव्यंजना के आधिक्य की है। हृदय की कोमल वृत्तियों का सुन्दर चित्रण हुआ है। हृदय की इस अत्यधिक भाव व्यंजना के कारण ही इस काल के कुछ गीतिनाट्यों को भाव नाट्य की संज्ञा दी गई है।

इस काल के गीतिनाट्यों की अन्य विशेषता प्रकृति के साथ मानव का तादाम्य स्थापित करना है। प्रकृति पुरुष की सहचरी के रुप में प्रस्तुत की गई है। मत्स्यगंधा आदि गीतिनाट्य में प्रकृति मानव के मनोविकारों को प्रस्तुत करने में भी सहायक हुई है। वास्तव में जहाँ सहृदयता होती है, वहीं मानव का प्रकृति प्रेम अनन्यता प्राप्त कर लेता है।

इस काल के कुछ गीतिनाट्यों पर रेडियो शिल्प का भी प्रभाव पड़ा है। आरसी प्रसाद सिंह की रचनायें इसी प्रकार की है। मानसिक संघर्ष का चित्रण जितने सुन्दर ढ़ंग से इस काल के गीतिनाट्यों में किया गया है उतना सुन्दर अन्य युग के गीतिनाटयों में नहीं मिलता। द्वन्दात्मक–घात–प्रतिघात के माध्यम से ही कथानक आगे बढ़ता है।

अब अनुसधित्सु समकालीन प्रख्यता गीतिनाट्यों का गवेषणापरक परिशीलन करने का उपक्रम कर रहा है।

तारा:— (भगवती चरण वर्मा)—तारा की गिनती सर्वश्रेष्ठ गीतिनाट्यों में की जाती है। इसका आधार तारा और चन्द्रमा का प्रख्यात प्रेमाख्यान है, जिसे मनोवैज्ञानिक भाव भूमि पर प्रस्तुत किया गया है। इससे पूव इसी समस्या को वर्मा जी ने चित्रलेखा में तर्क की कसौटी पर कसा था।किन्त ह्रदय का उद्वेलन और द्वन्द्व उसमें नहीं था।

तारा उद्दाम यौवन और मादकता से परिपूर्ण युवती है जिसे बूढ़े ऋृषि से तृप्ति नहीं मिलती। उसका अतृप्त यौवन विद्रोह कर उठता है। वह मन को संयत करने का प्रयत्न करती है, लेकिन 'रस की चाह' करने वाली मुग्धा को शान्ति कहाँ। उसके पति ब्रहस्पति उसके प्रेमी पति नहीं अपितु श्रद्धेय जान पड़ते हैं—

"वे मेरे पति नहीं, नहीं भूल है, भूल है

ये हैं गुरु, गुरुजन पूजा के पात्र है।"[212]

तारा के मन में वासना और कर्तव्य के मध्य संघर्ष छिड़ जाता है, ऋषि सब समझ जाता है। वे वासना को दमित करने का उपदेश देते हैं क्योंकि वासना "जीवन के इस अधःपतन का मूल है"। तारा अपने मन की चंचलता के लिए क्षमा माँग लेती है। किन्तु स्वयं ऋषि का मन द्वन्द्व में फँस जाता है वे 'रसमय' पाप और शुष्क पुण्य के बारे में विचारते रह जाते है।

द्वितीय दृश्य में पाप—पुण्य की व्याख्या की गई है। चन्द्रमा पूँछता है कि पाप क्या है, पुण्य क्या है? ऋषि बताते है कि समाज के नियमों की अवहेलना पाप है और उनका पालन करना पुण्य है। गुरु आगे बताते है कि विश्व में प्रकृति प्रधान है, उसके समक्ष पाप पुण्य कुछ भी नहीं है—प्रकृति स्वयं है, पाप पुण्य कुछ भी नहीं। गुरु की दृष्टि में वासना प्रकृति का ही एक अंग है। चन्द्रमा प्रश्न करता है कि फिर वासना का विरोध क्यों नहीं किया जाता है? ऋषि बताते है कि वासना में उचित अनुचित का ध्यान नहीं रहता, अतः वह अभिशाप है। लेकिन ऋषि की

यह बात कि वास्तविक सत्ता प्रकृति की है, पाप–पुण्य कुछ भी नहीं चन्द्रमा के मन में जम जाती है।

इसी समय तारा प्रवेश करती है। चन्द्रमा को देखकर वह सहज की उसकी ओर आकर्षित हो जाती है। उसे यौवन का भार असह्य प्रतीत होता है। किन्तु मर्यादा भावना को जगा देती है। जब चन्द्रमा तारा को माता कहकर सम्बोधित करता है, तो यह सम्बोधन इसे खटकता है। ऋषि कुछ दिन के लिए आश्रम से बाहर जाना चाहते है। आश्रम का भार चन्द्रमा पर छोड़ दियां जाता है। तारा को देखकर चन्द्रमा भी उसकी ओर आकर्षित होता है। उभय पक्षीय भावना भड़क उठती है।

तृतीय दृश्य में तारा और चन्द्रमा के ह्रदय के संघर्ष को चित्रित किया गया है। तारा चन्द्रमा को देखकर कह उठती है–''रुप राशि की मादकता विकराल'' है और चन्द्रमा पाप –पुण्य की गुत्थी सुलझाने में व्यस्त है। तारा कहती है–

''विकसित यौवन की मैं दबी उमंग हूँ
रुप राशि हूँ, रुप राशि की चाह है।''

तो चन्द्रमा कहता है–

''तुम हो झंझावात भयानक क्रान्ति की
मैं अशान्ति का उदधि गहन गम्भीर हूँ
आओ मिलकर आज विश्व को उलट दें।''[213]

चन्द्रमा के प्रस्ताव से तारा का मन धर्म और कर्तव्य के ऊहापोह में फँस जाता है। चन्द्रमा कहता है कि धर्म कुछ नहीं जहाँ प्रेम है वही हर्ष है शान्ति है''। तारा को यह तर्क पसन्द आता है। वह कहती है कि यदि पाप में ही सुख है तो चलो हम दोनों पाप बनकर ही रहें। यही कर्तव्य वासना के समक्ष आत्म समर्पण कर देता है।

चतुर्थ दृश्य में ऋषि का शाप वर्णित है। लौटकर आते ही ऋषि सब कुछ समझ जाते हैं। वे शाप देते हैं–

"देता हूँ मैं शाप नित्य धुल धुल मरो

फिर जीवित हो शनै शनै आकाश में

पतिता दुराचरिणी तारा तुम चलो

चूर चूर होकर बिखरो आकाश में

निज प्रेमी के साथ सदा घूमा करो।"[214]

यदि चतुर्थ दृश्य न होता है तो भी गीतिनाट्य के सौन्दर्य में कोई अन्तर नहीं आता।

तारा गीतिनाट्य की समस्त कसौटियों पर खरा उतरता है। उसका कथानक मनोवैज्ञानिक आधार पर विकसित हुआ है। वासनात्मक कुंठा जब उद्दाम वेग धारण कर लेती है, तब वह उचति अनुचित का ध्यान नहीं करती। तारा में इंदम और नैतिक मन का संघर्ष है। गुरु ब्रहस्पति सामाजिक अहं और नैतिकाहं की दुहाइ देकर संघर्ष को शान्त करना चाहते है, किन्तु उनकी एक भी नहीं चलती। तृतीय दृश्य में ही इन्हीं इद्रम और नैतिकाहं हैं का संघर्ष है। सामाजिक अहं और नैतिकाहं के समक्ष काम की विजय होती है।' [215]

संघर्ष– की दृष्टि से 'तारा' पूर्ण सफल है। वासना का कर्तव्य और धर्म से संघर्ष होता है। यह संघर्ष अतृप्ति और आत्मसंयम का संघर्ष है वासना का मर्यादा और नैतिक सिद्धान्तों के साथ संघर्ष है। यह संघर्ष समस्त पात्रों के अन्तमन में विद्यमान है। तारा और चन्द्रमा तो वासना पीड़ित है ही स्वयं ऋषि भी द्वन्द्व में फँस जाते है। इन सभी का संघर्ष विचारों का नही भावनाओं का है। मानव के समस्त क्रिया कलापों की कसौटी सुख और दुख होते हैं। वह वही करता है जो सुख प्रद होता है तारा इसी से आत्म समर्पण करती है।

चरित्र–चित्रण– की दृष्टि से से भी तारा पूर्ण सफल है, न तो पात्रों की भर मार है और न अनावश्यक हस्तक्षेप कुल तीन ही पात्र हैं। गुरु ब्रहस्पति ज्ञानी है। वासना को वे ज्ञान के माध्यम से शान्त करना चाहते है। नैतिकता ही उनका लक्ष्य है। वे वास्तव में दया के पात्र है। तारा और चन्द्रमा दोनों के चरित्र समान है। दोनों सुन्दर है, जवान है, तार्किक है। दोनों में वासना का वेग है। ऋषि की दृष्टि में वे दोनों पापी हैं, किन्तु उन्हें इस पाप में ही सुख है। और पाप बनकर ही रहना चाहते है।

'तारा' के सम्वाद सशक्त ओर हृदयाकर्षक हैं। उनमें कहीं शिथिलता नीरसता और निर्जीवता के दर्शन नहीं होते। उनमें गति है और अन्तर्मन के भावों को अभिव्यति करने की क्षमता है और दर्शन के अभिव्यक्तिकरण की शक्ति है। स्वगत कथन बहुत सुन्दर बन पड़े है। उनके माध्यम से मन की अन्तरचेतना का उद्घाटन हुआ है। उसमें पूर्ण नाटकीयता है।

भाषा सशक्त और भावों को व्यक्त करने में पूर्ण समक्ष है। न तो उसमें गुप्त जी (मैथलीशरण गुप्त) जैसी शीलता है और न उदयशंकर भट्ट जैसी संस्कृत–निश्ठता। भावानुकूल भाषा का प्रवाह सहज ही भावों को आत्मसात करने में सहायक है। 'काव्यत्व' और 'नाट्यत्व' दोनों दृष्टियो से 'तारा' सफल है। उसमें रंग संकेतों का अभाव है। फिर भी अभिनय में कोई कठिनाई नहीं आ सकती । कहीं भी लम्बे, दुरुह और असम्भावित कथन नहीं हैं। उसमें कार्य, काल और स्थान की एकता है। न तो घटना बाहुल्य है और न क्षणिक दृश्य परिवर्तन। अतुकान्त छन्दों के प्रयोग के कारण तुकों की नीरसता भी नहीं आने पाई।

काव्यत्व की दृष्टि से वर्मा जी का कवि मन भाव व्यक्त करने में पीछे नहीं रहा। सम्पूर्ण नाटक गीतिमय है। तारा के आत्म परिचय में कवि की भावुकता देखिये–

"नहीं जानती हाय स्वयं मैं कौन हूँ

अरे कौन हूँ ? केवल भ्रम हूँ भूल हूँ

अपने को ही चुभने वाला शूल हूँ

भ्रमर नहीं हैं जहाँ उसी एकातं में

खिले हुए कुसमों का मधुर पराग हूँ।"[216]

बिम्ब और प्रतीक योजना की दृष्टि से भी तारा पीछे नहीं। कुल मिलाकर वर्मा जी का गीतिनाट्य 'तारा' एक सुन्दर रचना है।

महाकालः– (भगवती चरण वर्मा)–'महाकाल' वर्मा जी के अन्य गीतिनाट्यकारों से भिन्न है। इसमें चिन्तन की प्रधानता है जब कि तारा में भावुकता की। 'मकाकाल' में लेखक ने सृष्टि निर्माण की प्रक्रिया का वैज्ञानिक विश्लेषण किया है। महाकाल उस असीम शक्ति का प्रतीक है जिसमें समस्त ब्रह्माण्ड समाया हुआ है। वर्मा जी लिखते हैं कि–वैज्ञानिकों ने शक्ति की कल्पना गति से की है और गति को काल या समय में सीमित कर दिया है। मैनें भी असीम की कल्पना ब्रह्म से की है। महाकाल ही परमब्रह्म है। ब्रह्म माया को जन्म देता है। माया से ही सृष्टि की रचना होती है। यही सृष्टि बाद में प्रलय होने पर पुनः ब्रह्म में लीन हो जाती है।"[217]

इस प्रकार एक क्रम चलता रहता है–

ब्रह्म–माया –सृष्टि–विनाश–ब्रह्म वैज्ञानिकों ने भी इसी प्रक्रिया को स्वीकार किया है। भौतिक शस्त्रियों का कहना है कि ब्रह्माण्ड केवल शक्ति का पुंज है। इस शक्ति की दो क्रियाएँ हैं जो एक निर्धारित अवधि के साथ होती है– एक संकुचन क्रिया और दूसरी विस्तारण क्रिया। जब शक्ति पुंज संकुचित होता है। तब सृष्टि का निर्माण होता है, कण पदार्थ बदल जाते है– ग्रहों और नक्षत्रों का निर्माण होता है और जब विस्तारण होता है तो पदार्थ टूटकर कण फिर अणु और अणु से शक्ति

बनती है। इसकी प्रक्रिया इस प्रकार है शक्ति–अणु–कण–पदार्थ–सृष्टि –कण–अणु– शक्ति लेखक ने 'महाकाल' में इसी प्रक्रिया को अपनाया है। महाशक्ति में चेतना जागृत होती है। चेतना महाकाल की शक्ति के माध्यम से सृष्टि का निर्माण करती है। क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर से मानव का निर्माण होता है। शक्ति (प्राण) पुंज से सृष्टि बनता है और वह प्राण शरीर नष्ट होने पर पुनः महाकाल में लीन हो जाता है–

"महाकाल–चेतना–सृष्टि–शरीर–महाकाल" इसी तथ्य पर 'महाकाल' का निर्माण हुआ है। महाकाल अचेतन अवस्था में पड़ा है। उसी समय उसकी चेतना जाग्रत होती है। वह महाकाल की शक्ति का आह्वान करती है।

द्वितीय दृश्य में शक्ति और चेतना सृष्टि का निर्माण करते हैं। क्रमशः आकाश पवन, पृथ्वी, जल और अग्नि का निर्माण होता है। प्रकृति के ये तत्व निष्प्राण हैं। अतः प्रकृति को प्राणवान करने के लिए प्राणी का निर्माण होता है। पंचतत्व निर्मित शरीर में चेतना स्वयं प्राण बनती है। महाकाल इस रचना की कमियों पर प्रकाश डालते हुए कहते है कि जहां तुमने मानव में ज्ञान दिया है, वही भ्रम भी। प्रेम के साथ धृणा, भक्ति, त्याग, वलिदान, दया और श्रद्धा के साथ लोभ, मोह, काम, क्रोध और मत्सर भी दिये है। इसलिए जहाँ इसके द्वारा सृष्टि का निर्माण होगा, वहीं यह प्रलय का भी नियामक होगा।

तृतीय दृश्य में मानव और प्रकृति का द्वन्द्व लक्षित है। प्रकृति कहती है कि मैं सृजन करती हूँ लेकिन मानव उसे नष्ट करने पर तुला है। मानव की विध्वंसात्मक कार्यों के फलस्वरूप अन्त में सृष्टि नष्ट हो जाती है। चेतना अपनी हार स्वीकार कर अन्त में स्वयं महाकाल में लीन हो जाती है। महाकाल कहता है कि रचना और विनाश के तत्व उसी में विद्यमान है। महाकाल की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि भी है। मानव मस्तिष्क तीन प्रकार का होता है–चेतन, अन्तरचेतन और

अचेतन। महाकाल अचेतन शक्ति है। जब उससी चेतना शक्ति जाग्रत होती है, तब सृष्टि का सृजन होता है। मानव का मस्तिष्क की नये अविष्कारों में संलग्न हो जाता है। यही चेतना उसमें अहं को जन्म देती है। मानव की सफलता के साथ –साथ अहम् बढ़ता है। अन्त में वह इतना बढ़ जाता है कि प्रलय का रुप ले लेता है। उस समय मानव की चेतना थक जाती है और वह महाकाल में (अचेतन में) लीन हो जाती है। यही सुसुप्तावस्था है। यही क्रम सृष्टि और प्रलय के बीच चलता रहता है। चेतना का जाग्रत होना–सृष्टि के निर्माण में सहायक होगा। अहम का उदय–अहम् की चरम सीमा–विनाश –चेतना का सुसुप्त होना–फिर जाग्रत होना उक्त चक्रों को निम्न प्रकार से दर्शाया जा सकता है– महाकाल की रचना सीमित स्तर पर तीन दृश्यों मे हुई है। कथानक द्रुतगति से आगे बढ़ा है। कथा संगठन में कहीं भी शिथिलता नहीं आने पाई। उसमें घनत्व है।

महाकाल के समस्त पात्र अशरीरी है। इस दृष्टि से हम इसकी तुलना केदार नाथ मिश्र प्रभात के 'सवर्त' से कर सकते है। महाकाल परमब्रह्म का प्रतीक है। चेतना और शक्ति उसी के दो अंग है। चेतना शक्ति के सहारे सृष्टि का निर्माण करती है, किन्तु मानव का अहम उसे नष्ट कर देता है। यही विवरण है। चरित्रों का पूर्ण विकास नहीं हुआ।

'महाकाल' का संघर्ष चेतना और अहम् का संघर्ष है। चेतना मानव का प्रकृति के साथ अनादिकाल से संघर्ष चलता रहा है। पंच तत्व निर्मित मानव पंच तत्वों पर ही शासन करता है। प्रकृति की शक्ति को वह अपने वश में करना चाहता है, किन्तु अन्त में वह प्रकृति के समक्ष पराजित हो जाता है। प्रकृति कहती है–

"मै हूँ प्रकृति और तुम मानव

प्राकृति के लिए वरदान सृजन का

और नाश की छाया से तुम

तुम में है अभिशाप हनन् का।"[218]

यह संघर्ष केवल प्रकृति के तत्वों तक ही सीमित नहीं है। वह आगे चलता है। क्रिया –प्रतिक्रिया का संघर्ष निरन्तर चलता रहता है अतः यह संघर्ष अनादि है, जो कभी समाप्त नहीं होता। यह मानव के अहंम् का संघर्ष है, अन्तः करण का संघर्ष है। 'महाकाल' में कहीं–कहीं निराशावाद के दर्शन होते है। जिस प्रकार द्रोपदी में कवि ने नियतिवाद को स्वीकारा है। चेतना का यह कथन निराशा का ही परिणाम है–

"चेतना पराजित मैं थकी सी हूँ

ज्ञान में तमिस्त्रा क्यों ?आज में भ्रमित सी हूँ।"[219]

काव्यात्मकता की दृष्टि से महाकाल सुन्दर है–दर्शन और वैज्ञानिक चित्रण के बीच कहीं–कहीं सुरम्य कल्पना के दर्शन होते है। ऐसा लगता है जैसे कल्पना यथार्थ की डोरी पर झूल रही हो। शक्ति प्रकृति की सुन्दरता का वर्णन करती हुई कहती है–

"नभ में बिखरे है नक्षत्रों के मुक्ता

है सुरभिसार से झुक–झुक रहा समीरन

मंगल गायन कर रहे अनेकों निर्झर

उठ पड़े भूमि पर हरे हरे वन उपवन

है ऊषा सुनहरी और रुपहली रजनी

इन रंगविरंगे पुष्पों में सम्मोहन

कलिका में रस का ताप और तन्मयता

भ्रमरों में पागलपन का गुन गुन गुंजन।"[220]

कहीं–कहीं मानव की प्रवृत्तियों का भी सुन्दर चित्रण हुआ है। महाकाल कहता है–

"तुमने जब सुन्दर ज्ञान रचा मानव में

तब एक भयानक भ्रम तुमने रच डाला

तुमने जब पावन प्रेम भरा मानव में

तब घोर घृणा को तुमने उसमें पाला।"[221]

महाकाल की शिल्प विधा रेडियो जैसी है इसमें यत्र–तत्र स्वर निर्देश दिये गये हैं मंचीय रंग संकेतों का आभाव है। किन्तु ध्वनि प्रभाव के संकेत सर्वत्र दिये गये हैं। "कवि ने अपने विराट आवाक् कल्पना चित्रों नाद गांभीर्य में मूर्त करने का अत्यन्त सफल प्रयत्न किया।"[222]

किन्तु इसके प्रस्तुतीकरण मंच पर कठिनाई होगी। क्योकिं पंच तत्वों का निर्माण मंच पर सम्भव नहीं। अशरीरी पात्रों का रुप सज्जा देना कठिन कार्य है। अतः महाकाल ध्वनि गीतिनाट्य की श्रेणी में रखा जा सकता है। इसे रेडियो गीतिनाट्य कहा जा सकता है।

द्रोपदीः— (भगवती चरण वर्मा)— 'द्रोपदी' गीतिनाट्य की कथावस्तु भी महाभारत कालीन है, जिसे मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर प्रस्तुत किया गया है। द्रोपदी महाभारत की सर्वप्रसिद्ध नारी थी। वह महाभारत का कारण थी महाभारत का पूर्ण दायित्व लेखक के अनुसार सम्पूर्ण रुप से द्रोपदी पर पड़ता है।[223]

महाभारत की नींव उसी दिन पड़ गई थी जिस दिन द्रोपदी ने 'अन्धे का सुत है अन्धा' कह कर सुयोधन का अपमान किया था। द्रोपदी द्वारा सुयोधन का यह अपमान आकस्मिक नहीं था वरन युग प्रवृत्ति से पोषित सर्वभक्षी प्रतिहिंसा का परिणाम था। द्रोपदी का जीवन निराशा, कुंठा और प्रतिहिंसा के वातावरण में बीता था। पितृगृह से पतिगृह तक की समस्त घटनाएँ मानो उसके जीवन के अत्याचार की गाथा हो। लेखक ने द्रोपदी के मन में पलने वाली कुंठाओं का चित्रण किया है। उसका स्वयंवर उसकी इच्छा से नहीं हुआ था। वह नारी थी और उसके मन

में भी निजी भावनाएँ थी। उसके अन्दर भी प्रेम था किन्तु उसकी समस्त भावना पिता की प्रतिहिंसा और बैर की प्रतिक्रियात्मक भावना को अर्पित कर दी गई। वह अपने को विक्रय हुआ सा मानती है–

"मै ही वह स्वयंवरा जिसके विक्रय को ही
पूज्य पिता मेरे न रचा एक महापर्व।"[224]

द्रोपदी का वरण हुआ एक ब्राह्मण के साथ (यह तो उसका भाग्य था कि वह अर्जुन थे।) लेकिन उसकी दुःख गाथा वहीं समाप्त नहीं हो गई। पतिगृह में वह पाँच पतियों की पत्नी। गुरुद्रोण और उनके आश्रय दाता कौरवों से उसकी पुरानी बैमनस्यता थी। इसकी आग द्रोपदी के मन में जल रही थी। भरी सभा में द्रोपदी का अपमान उसके जीवन की सबसे दुःखप्रद घटना थी। इन सब कारणों ने द्रोपदी को प्रतिहिंसा की मूर्ति बना दिया था। यही कारण महाभारत के कारण थे। राजकन्या होने का दर्प अभिमान उसमें था। कर्ण का तिरस्कार इसी का प्रतिफल था। वास्तव में उसके आहत दर्प ने अन्तरचेतना में प्रतिहिंसा का रुप ले लिया था। इसी मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर द्रोपदी गीतिनाट्य की कथा वस्तु निर्मित है। द्रोपदी का कथानक इस दृश्यों में विभक्त है। प्रथम दृश्य में युग की हिंसात्मक प्रवृत्ति का वर्णन समवेत गान में किया गया है। द्वितीय दृश्य में द्रोपदी को स्वयंवर जनित निराशा से त्रस्त दिखाया गया। वह स्वयंवर को पसन्द नहीं करती। कारण–
"जिसके इंगित पर महाप्रलय हो सकत द्रोपदी बनेगी बरबस उसकी दासी।"
क्योंकि वही लक्ष्य भेद कर सकता है जो महान धनुर्धर होगा।

तृतीय दृश्य में लक्ष्य भेद का दृश्य और कर्ण तिरस्कार का अंकन है। चतुर्थ दृश्य में कुंती के उस आशीर्वाद का वर्णन है जिसके कारण द्रोपदी को पाँच पतियों की भार्या बनना पड़ा। पंचम दृश्य में युधिष्ठिर के राजसूय और छठे में पाँचाली द्वारा सुयोधन को अपमानित करने की घटना है। सप्तम और अष्टम दृश्यों में द्युत

क्रीड़ा और तज्जनित परिणामों का उल्लेख किया गया है। अष्टम दृश्य में द्रोपदी के अपमान और कृष्ण द्वारा उसकी रक्षा का वर्णन है। नवें दृश्य में महाभारत युद्ध को समवेत गान रूप में प्रस्तुत किया गया है। अन्तिम दृश्य में महाभारत युद्ध के परिणाम और पाण्डवों तथा द्रोपदी के पश्चाताप का वर्णन है। द्रोपदी में सम्पूर्ण महाभारत समाहित हो गया है, लगता है जैसे द्रोपदी ही महाभारत है। कथा संगठन की दृष्टि से गीतिनाट्य श्रेष्ठ नहीं है। प्रथम और नवम दृश्य में न तो कोइ कथोपकथन है और न क्रियाशीलता। समवेत गान के रूप में तत्कालीन परिस्थितियों का विवरण दिया गया है। गीतिनाट्य के शिल्प की दृष्टि से यह अच्छा नहीं है। बिना दृश्य परिवर्तन के ही वाचक सूत्रधार या किसी पात्र के द्वारा इसका वर्णन किया जा सकता था। अन्तिम दृश्य में लेखक नियतिवादी हो गया है। स्वयं श्री वर्मा जी के शब्दों में–मैंने गौड़ रूप से नियतिवाद का प्रतिपादन किया है–यह मैं मानता हूँ। लेकिन मैं विवश हूँ, क्योंकि मैं स्वय नियतिवाद हूँ। मैं गीता को भी तो नियतिवाद का प्रतिपादन मानता हूँ। जहाँ कि निराशावाद से भरी अकर्मण्यता के स्थान पर आशावाद युक्त कर्म मार्ग को नियतिवाद का रुप माना गया है।''[225]
द्रोपदी भी नियतिवाद का प्रतिवादन करती हुई करती है–

''साधन थी नियति की, समर्पित मैं उसको हूँ

नत हूँ श्री चरणों पर, मेरे शत–शत प्रणाम।''[226]

और भी–

''यही भाग्य का खेल यहाँ मानव का जीवन

इसी भाग्य का रुप यहाँ पर पुलकन क्रन्दन।''[227]

'कर्ण' की भाँति 'द्रोपदी' भी चरित्र प्रधान गीतिनाट्य है। 'द्रोपदी' अनुपम सुन्दरी है। सुकोमल है सब कहते है रति की सुन्दरी सुकोमल है। ''राज परिवार की होन के कारण उसमें दर्प और अभिमान है। पाँच पतियों की पत्नी होते हुए भी

धर्म और मर्यादा से उसका नाता नहीं टूटा। पतियों के सुख में ही उसे सुख मिलता है। तभी वो कुन्ती से कहती है–

"माता मुझको अपना आशीर्वाद दो

जिससे दृढ़ रह सकूँ सदा मैं धर्म पर।"[228]

उसमें कष्ट सहने की क्षमता है–

"मै नहीं हूँ कोमल मेरा अंग पर

प्राणों में है कुलिश समान कठोरता।"[229]

उसकी यह कठोरता परिस्थिति जन्य है। कठोर वनवास के समय में भी वह धैर्य नहीं खोती। धैर्य! आर्य में असह्य धैर्य की मूर्ति हूँ। कह कर वह अपना परिचय देती है। प्रतिशोध की भावना उसमें कूट कूटकर भरी हुई है। दुःशासन के केश खींचने का बदला वह उन्हें उसी के रक्त से सींचकर करना चाहती है। उसकी वेणी चाणक्य की चोटी की भाँति खुल जाती है। एक तरह से वह घ्रणा और हिंसा की प्रतिमूर्ति बन जाती है। सुयोधन को देखकर वह कहती है–

"है दर्प भरी हिंसा की, पाँचाली एक कहानी"

फिर भी उसके मन के एक कोने में कोमलता का निवास है। महाभारत के युद्ध के बाद वह भीषण नर संहार पर पश्चाताप कर उठती है। युद्ध के लिए वह अपने को उत्तरदायी मानती है–

"मेरे अभिमान और मेरी प्रतिहिंसा में"

पृथ्वी को विवश पड़ा करना है रक्त स्नान।"[230]

वास्तव में द्रोपदी युग की परिस्थितियों का शिकार बनी थी। अन्यथा धर्मराज युधिष्ठिर के शब्दों में–

"तुम हो निष्पाप, निष्कलंक और दोष रहित"

पावन हो पूज्य हो, सुयश का तुममें प्रकाश।"[231]

द्रोपदी स्वयं उस युग का प्रतीक है। वह युग हिंसा का केन्द्र बिन्दु है–

"आरक्त नेत्र, अनबद्ध केश

अधरों पर दर्प भरी तृष्णा

युग की हिंसा का केन्दु बिन्दु

द्रोपदी पाण्डवों की कृष्णा।"[232]

देशकाल और वातावरण की अभिव्यक्ति द्रोपदी में बहुत सुन्दर हुई है। महाभारत का युग हिंसा, प्रतिहिंसा का युग है, वह मान अपमान का युग है, वह अहमन्यता और घृणा का युग है। महाभारत का कोई चरित्र ऐसा नहीं (युधिष्ठिर को छोड़कर) जो हिंसा से बचा हो।[233]

इन सभी युग परिस्थितियों का चित्रण द्रोपदी में हुआ है। 'मानापमान की प्रतिहिंसा बस उस युग का का था एक मर्म' जिससे न कृष्ण बचे न भीष्म। कृष्ण की गीता भी हिंसा का प्रतीक है–

"युग की हिंसा है भारत में परिणीता

युग की हिंसा में निहित कृष्ण की गीता।"[234]

जुआ की प्रवृत्ति, नारी की विवशता और नियतिवाद पर लेखक ने सुन्दर चित्रण किया है। नाट्कीयता और काव्यत्व दोनों दृष्टियों से गीतिनाट्य सुरुचि सम्पन्न है। यद्यपि लेखक ने रंग संकेत नहीं दिये फिर भी उनमें नाटकीयता है। जहाँ गीतिनाट्य श्रव्य है वहीं मंची विधान से ही हीन नहीं। कही– कहीं कवि की भावुकता झलक पड़ी है। प्रतीकात्मक दृष्टि से द्रोपदी स्वयं द्वापर युग की प्रतीक है। उसमें युग साकार हो उठा है। 'द्रोपदी' में वेयक्तिकता की पृष्ठभूमि पर सामाजिक क्रियाकलापों को वाणीं दी गई है। व्यक्तिगत कारण युद्ध का हेतु बनें इससे बड़ी बिडम्बना क्या होगी। महाभारत इसी विडम्बना का प्रतिफल है।

मत्स्य गन्था:– (उदय शंकर भट्ट)– 'मत्सयगन्धा' भट्ट जी का सर्वश्रेष्ठ

गीतिनाट्य है, जो 1936 में प्रकाशित हुआ था। पौराणिक आख्यान पर आधारित यह एक प्रतीकात्मक रुपक है, जिसमें यौवन संसार और वासना को मत्स्यगन्धा और पराशर के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। मत्स्यगंधा यौवन की प्रतीक है, पराशर यौवन और मनुष्य की कमजोरी के तथा शान्तुन संसार के प्रतीक है।

मत्स्यगंधा इतिहास में सत्यवती के नाम से जानी जाती है। मत्स्यगंधा का कथानक सत्यवती के जीवन से सम्बन्धि है। सत्यवती जैसे ही युवावस्था में प्रवेश करती है, वैसे ही सारे वातावरण में उसे सौन्दर्य ही सौन्दर्य दिखाई देता है। यौवन की मरोर से उसका तन और मन दोनों झनझना उठते है। अंग अंग में तरंग फैल जाता है।''[235]

वह अज्ञात यौवना नायका हैं। उसे पता नहीं कौन प्रकृति की ओर देखने को बाध्य कर देता है। वह यह भी नहीं जानती कि यौवन की मरोर कैसी होती है। बस वह तो कुछ अजीब सा महसूस करती है–

''जाने कैसा हो रहा है, कैसा यह हो रहा है

मेरी सब इच्छा की सीमाएँ बिखरती हैं

जैसे मैं अनन्त मद, किनतु, हुई मदहीन।''[236]

ऐसे वातावरण में अनंग प्रवेश करता है। उसे देखकर मत्स्यगंधा के प्राणों में नव वासनायें हिलोरें ले उठती है। किन्तु दूसरे ही क्षण में उसे अपनी सीमा याद हो आती है। मल्लाह की बेटी भला यौवन का उपभोग कैसे करेगी? वह अनंग से अपने को छोड़ने की प्रार्थना करती है किन्तु अनंग उसे यौवनदान देकर चला जाता है। मत्स्यगंधा यौवन के भार से दब जाती है। यौवन के साथ ही वासना आती है। उसके मन में सिहरज हो उठती है–

''यौवन की छाया एक सिहरन भर गया

भर गया रोम रोम अंग अंग प्राण शत

शत–शत मद नद, शत–शत हा हा कार।"[237]

अनंग के यौवन दान के साथ ही प्रथम दृश्य समाप्त हो जाता है। द्वितीय दृश्य में मत्स्यगंधा और पराशर का लघु वार्तालाप है। परासर मत्स्यगंधा से नदी के पार पहुँचाने का आग्रह करते है। तृतीय दृश्य में मत्स्यगंधा परासर को पार उतारती दिखाई गई है। पराशर मत्स्यगंन्धा से सम्भोग का अनुरोध करते है। मत्स्यगन्धा इसे अनय मानती है। दूसरे वह हीन जाति की कन्या, तीसरे समाज का भय है। पराशर समाज के बन्धनों को तोड़ने की बात करते है, क्योंकि कि समाज का विधान जो मनुज कृत है। पुनः मत्स्यगन्धा धर्म अधर्म की बात उठाती है तो ऋषि कहते है कि धर्म के मर्म को तुम नहीं समझ पाओगी क्योकि–

"सृष्टि मूल धर्म है, प्रकृति मूल कर्म सदा।

श्रद्धामूल भक्ति है, समाज फूल भूल है।"[238]

रहा प्रश्न ऊँच नीच का तो–

"ऊँच नीच कोई नहीं पाप पुण्य कहीं–कहीं

कर्मा कर्म कुछ नहीं, ओ अनंग रंजने।"[239]

जब मत्स्यगन्धा क्षणभंगुरता की बात कहती है तो ऋषि वरदान देते है, 'अनंत सुखराशि युत, देता वरदान तुम्हें।' चिर यौवन का वरदान प्राप्त कर मत्स्यगन्धा आत्मसर्मपण कर देती है। चतुर्थ अंक आत्मसमर्पण के बाद का है। मत्स्यगन्धा मिलन के क्षणों को अभिव्यक्ति इन शब्दों में करती है–

"क्या हुआ कैसा यह याद पड़ता न कुछ

रोम–रोम बहा नव चेतन अनन्द मधु।"[240]

इस दृश्य में कोई सम्वाद नहीं है। पंचम दृश्य में सत्यवती (पूर्व की मत्स्यगन्धा) जो अब शान्तुन की बधू है, सारे संसार में आल्हाद का अनुभव करती हैं। इसी बीच सूचना मिलती है कि महाराज शान्तुन शेर की शिंकार से माहत हो

गये हैं। सत्यवती उन्हें देखने जाती है, लेकिन महाराज नहीं बच पाते। पंचम दृश्य में विधवा सत्यवती का पश्चाताप व्यक्त है। जिस चिर यौवन का वरदान उसने पराशर से माँगा था, वह अब उसके लिए अभिशाप बन जाता है। वह यौवन के अन्तहीन वेग को वहन करने में अपने को असमर्थ पाती है। वह पराशर से अपने वरदान को वापस [illegible]रने का अनुरोध करती है–

"ले लो यह वरदान (ले लो यह अभिशाप)

लौटाओ अनंग यह वेदना समुद्र सी।"[241]

भट्ट जी के अनुसार "किसी भी इच्छा से यौवन भला कब आया और कब गया हैं काम भावना कब उठी है, कब समाप्त हुई है। परिस्थितियाँ अनुकूल हुई तो यौवन और अनंग वरदान है, अन्यथा अभिशाप।[242]

मत्स्यगन्धा का कथानक सुन्दर होते हुए भी कार्य व्यापार धीमा है। नाटकीयता और घटना क्रममन्द है। चतुर्थ दृश्य में मात्र मत्स्यगन्धा का स्वगत ही है, और दृश्य चार पाँच को मिला दिया जाता तो ठीक रहता –छब्बीस पक्ति के इस अन्तर्द्वद्व को अलग रुप देने का कोइ औचित्य नहीं। दृश्य परिवर्तन हो और फिर एक ही पात्र छब्बीस लाइनें बोलकर चला जाय, नाटकीयता की दृष्टि से उचित नहीं।

पाँचवें दृश्य में भी एक खटकने वाली बात है। मत्स्यगन्धा बहुत उत्तम है। शैशव के अवसान पर यौवन का आगमन, काम पिपाशा की वृद्धि, समागम फिर वितृष्णा यही मनोविकारों का क्रम है।

प्रतीक योजना– मत्स्यगन्धा एक प्रतीकात्मक नाटक है। भारतीय पौराणिक साहित्य में मत्स्यगन्धा ही चिरयौवन का प्रतीक है। यौवन में काम संगीत गाता है। शान्तुन संसार है, जिसने उसे भरमालिया है। पराशर मानव यौवन की कमजोरी है। यौवन वह ऊँचाई है जहाँ मत्स्यगन्धा ने आत्म–समर्पण किया है।[243]

यह संसार का नियम है कि जब यौवन तृप्ति चाहता है, तो संसार उसके मार्ग में बाधक बन जाता है। यहाँ शान्तुन का निधन वासना पूर्ति के साधनों की समाप्ति का द्योतक है। पिपाशा पूर्ति न होने पर जो मानसिक छटपटाहट होती है, वही मत्स्यगन्धा की छटपटाहट है। अतृप्त यौवन में ऊषा संध्या प्राणों के तारों को खींचती है और रात्रि दर्द को साकार कर देती है।"[244]

कथानक के प्रतीक क्रम को बताते हुए भट्ट जी लिखते है कि—"शैशव के अवसान पर यौवन का उदय प्राणों की सासों में काम का संगीत, यौवन के खुमार में संसार का रंग जाना, जीवन यौवन की शाश्वतता की इच्छा वासना का उदय, वासना पूर्ति के लिए पुरुष समागम तज्जन्य आनन्द एक क्रम है। फिर यदि यौवन का मार्ग अवरूद्ध हो जाय तो मानस में जो हलचल होती है, जो अशान्ति का संघर्ष मचता है। वही इसमें प्रतीक रुप में चित्रित है।"[245] अनंग मत्स्यगन्ध के अन्दर की उमंग का प्रतीक है।

संघर्ष— 'मत्स्यगन्धा' में आन्तरिक संघर्ष की अभिव्यक्ति सुन्दर ढंग से हुई है। इसमें चिर यौवन और उसकी अतृप्ति के मध्य संघर्ष होता है। यौवन कभी तृप्त नहीं होता। पाराशर के समक्ष समर्पण से पूर्व उठने वाले संघर्ष को भट्ट जी ने ध्वनि के माध्यम से कुशलता पूर्वक प्रदर्शित किया है। सत्यवती के ह्रदय की भावनाओं को व्यक्त करने के लिये चतुर्थ सर्ग का निर्माण हुआ है। मन की हलचल और द्विविधात्मक स्थिति का चित्रण मत्स्यगन्धा में सुन्दर हुआ है।

चरित्राकंन— चरित्र चित्रण की दृष्टि से मत्स्यगन्धा उच्चकोटि का गीतिनाट्य है। इसमें प्रधान पात्र मत्स्यगन्धा और पराशर ही है। अन्य पात्रों का प्रयोग सहायक के रूप में हुआ है।

'मत्स्यगन्धा धीवर की बालिका है जो राजा शान्तुन के साथ विवाह हो जाने पर सत्यवती कहलती है। वह अधीर ओर चंचल बालिका है। यौवन के प्रारम्भ

होते ही वह अधीर हो जाती है। उसका मन यौवन की झंकार से थपेड़े खा उठता है।[246]

उसमें जीवन का आनन्द लेने की अदम्य लालसा है, तभी तो वह अक्षय यौवन का वरदान माँगती है। गीतिनाट्य के उत्तरार्द्ध में उसका गम्भीर रूप देखने को मिलता है। वह निराशा, अशान्ति और अतृप्ति की प्रतिमूर्ति बन जाती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषण करने पर मत्स्यगन्धा में प्रकृति काम का दुर्दान्त इर्द विद्यमान है। उसके समक्ष सामाजिक अहं और नैतिकाह पराजित हो जाते हैं काम अपने मूल रुप से उपस्थित हुआ है।

पराशर महर्षि हैं। वे सौन्दर्य को देखकर मोहित हो जाते है। वे सामाजिक बन्धनों की चिन्ता नहीं करते वासनापूर्ति के लिए वे स्वयं के सिद्धान्तों का गठन करते है। नाटक में प्रकृति काम छाया पात्र बन कर आया है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह छाया पात्र काम प्रवृत्ति का मूर्तमान रुप है। इसी के कारण मत्स्यगन्धा को मनोविकृति वश सहबोधावस्था के दर्शन होते है।"[247] शुभ्र–एक वाचाल सखी है, जो बातचीत में महाराज की घातक चोट का समाचार देना भी भूल लाती है।

कथोपकथन– कथोपकथनों की दृष्टि से मत्स्यगन्धा अच्छा है। उसके सम्वाद छोटे–छोटे और अर्थपूर्ण है। यत्र तत्र बड़े–बड़े सम्वाद भी देखने को मिलते है, किन्तु उनमें अस्वाभाविकता नहीं आने पाई। कहीं कहीं सांकेतिक संवादों का भी सृजन हुआ है, यथा–

"एक आवाज–नाथ यह कन्यकात्व?

दूसरी आवाज– यह भी कलंकहीन।

पहली आवाज– मानवीय होगा क्या?

दूसरी आवाज– री प्रभू है सदा अदोष

पहली आवाज–प्रिय रहता है नाथ वही इष्ट मुझे

दूसरी आवाज– एवमस्तु एवमस्तु

पहली आवाज– एवमस्तु प्रियतम।''[248]

इसी प्रकार के लघु सम्वादों ने कथानक को गति प्रदान की है। कहीं–कहीं स्वगत कथनों का भी प्रयोग हुआ है। इनके कारण जहाँ नाटकीयता में बाधा पड़ी है वहीं रसनिष्पत्ति में।

काव्यत्व की दृष्टि से मत्स्यगन्धा सन्तुलित है। समस्त वातावरण भावुकता और काव्यमयता से ओत प्रोत है। पात्रों का व्यक्तित्व भी काव्यमय है। सभी में समावेश स्पष्ट परिलक्षित होता है। मत्स्यगन्धा के उर में उठ रहे यौवन के गुलाबी नशे को भट्ट जी ने सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है। उसका यौवन वातावरण में रंग घोल रहा है जिससे–

''रंग रही स्वर्ण की सिन्दूर से दिशाएँ सब

रंग रही सागर की सुन्दरी की नीली माँग

कुन्तलों से खेलती जो छाया डाल प्रेमी की।[249]

भट्ट जी ने कहीं–कहीं सुन्दर चित्र–विधान किया है। ये चित्र केवल प्रत्यक्ष की ही नहीं अपितु रस, स्पर्श, गन्ध समन्वित है। ध्वन्यात्मक चित्र बड़े सुन्दर है। जैसे–

''यौवन में तृप्तिहीन तृष्णा, प्रलोह रोम

सैकड़ो वसन्त हास

शत–शत उद्‌गार रात रात हा हा कार।

यहाँ शत शत हा हा कार में ध्वनि–चित्री ही है। इसके द्वारा काम की मूर्ति प्रतिष्ठा की सफल चेष्टा हुई है। इस प्रकार 'मृत्स्यगन्धा' एक सफल रचना है।

विश्वामित्रः– (उदय शंकर भट्ट)–'विश्वामित्र भट्ट जी का द्वितीय गीतिनाट्य है, जो सर्वप्रथम 1936 में प्रकाशित हुआ था। इसका कथानक विश्वामित्र और

मेकना के प्रसिद्ध पौराणिक आख्यान पर आधारित है, जिसमें महर्षि विश्वामित्र के कठोर तप और मनेका के साथ उनके वासनात्मक प्रेम की पृष्ठिभूमि पर नारी और पुरुष के संघर्ष और पुरुष के अहं की पराजय का बड़ा ही हृदयग्राही चित्रण हुआ है। विश्वामित्र पुरुष के प्रतीक है जिनमें अहं अपनी पराकाष्ठा पर है। उनका अहंकार क्रोध की सीमा तक जा पहुँचता है। जैसे ही उन्हें यह अनुभव होता है कि उनकी तपस्या का तेज अनवरत बढ़ता जा रहा है– उन्हें गर्व होने लगता है। वे सोचने लगते है–

''बुझ सकते रवि मेरे भृकुटि निपात से

फट सकता ब्रह्माण्ड एक संकेत पा।

X X X

चाहूँ तो संसार चरण पर आ गिरे

और नये संसार बनें नव काल हो

नहीं मुझे अब कुछ भी अज्ञेय जग

ज्ञेय तथा अति गूढ़ गिरा अभिसार सा।''[250]

यह अहंकार है, जो विशेष अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अपनी शक्ति का जब यह ज्ञान होता है कि ''मै यह हूँ'' अहंकार कहलाता है। किन्त जब यह भावना घर कर लेती है कि ''मै अमुक मे ऊँचा हूँ'' तब वह 'दम्भ' बन जाती है। जब दम्भ में घृणा और क्रोध का योग हो जाय तो वह तामसी वृत्ति की चरम सीमा पर पहुँच जाता है। विश्वामित्र इसी दम्भ के प्रतीक हैं उनका अहं तप से और अधिक तीव्र हो जाता है। दूसरी ओर मेनका और उर्वशी जैसी रूपवती नारियाँ है, जिनमें प्रेम, कोमलता नम्रता और भाव प्रवलता है, किन्तु उनमें मानव के दम्भ और शक्ति से टक्कर लेने की क्षमता भी है। उर्वशी मेनका नारी के दो रूपों का प्रतिनिधित्व करती है। दर्वशी मनुष्य के प्रतिनारीत्व के घृणा की प्रतीक है। जो पुरुष के बन्ध

ान में विवशता का अनुभव करती है। उसका विचार है कि मनुष्य ने नारी को सुख का साधन बना कर चैन की सांस ले रहा है। वह एक लोहा है जो सहज ही पिघलता नहीं और यदि पिघल भी जाय तो थोड़ी ही देर में फिर कठोर हो जाता है। इसलिए वह पुरुष से घृणा करती है–

"मैं करती हूँ घृणा मनुज से इसलिए

जग में साधन हमें बना सुख ले रहा।"[252]

किन्तु इसके विपरीत मेनका स्वस्य नारीत्व का प्रतीक है बच्चन सिंह के शब्दों में –उसके सौरभोच्छवास से तपोवन में वसन्त छा जाता है। मादकता भर जाती है।"[253] वह अपने को पुरुष का प्रतिद्वन्द्वी नहीं मानती और न उससे घृणा ही करती है। वह उन नारियों का प्रती है जो पुरुष के जीवन को अपने स्नेह, प्रेम और सौन्दर्य से शान्ति प्रदान करती है। अतः वह उर्वशी को उत्तर देती हुई कहती है–

"मैं न घृणा करती हूँ नर से हे सखी,

वह तो मेरे रुप हृदय की प्यास है।"[254]

उर्वशी मानव को जहाँ स्वार्थी बताती है वहीं नारी को पखरा और सुखहीना निरुपित करती है। वह ऐसी मदिरा है जिसे स्वयं नशा नहीं आता। नारी तो–

"औरों के ही लिए हृदय है, बुद्धि है

मन है प्राण शरीर कर्म है, धर्म है।"[255]

किन्तु मेनका नारी को जग की कल्पना बताती है जो मानव की निराशा में ज्योति का कार्य करती है। वह पुरुष पर नारी की सत्ता स्थापित करना चहती है उसे नर की कमियों का ज्ञान हैं वह विश्वामित्र जैसे दम्भी और क्रोधी ऋषि को वश में करने को तत्पर हो जाती है। वह कहती है–

"आज नचाऊँ छुद्र जीव को नाच मैं

और दिखा दूँ नर में क्या कमजोरियाँ।

X X X

किन्तु मेनका केवल इस ऋषि को यही

वश कर दिखला देगी नारी कौन है।"[256]

इसी पृष्ठिभूमि और विशेषताओं के प्रकाश में कवि–नाट्यकार ने विश्वामित्र और मेनका के आख्यान का गीतिनाट्य का रूप दिया है। ऋषि को आकर्षित करने हेतु मेनका वसन्त का आह्वान करती है। सम्पूर्ण प्रकृति मादक हो जाती है ऐसे वातावरण में वह हृदय को उद्वेलित करने वाला गाना छेड़ देती है–मैं प्रणय की हूँ पहेली।' ऋषि का ध्यान भंग होता है। वे आँखे खोल देते है। मेनका को देखकर ऋषि सहज ही उसकी ओर आकर्षित होते है। मेनका अनजान बनी सी विश्वामित्र को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करती है। ऋषि जैसे जैसे आकर्षित होते जाते हैं। मेनका जैसे ही वैसे उनकी अपेक्षा करती जाती है। ऋषि उससे अपने तेज, तप और शक्ति की बात करते है मेनका मिट्टी का ढेर कह कर उनका उदाहरण करती है–

"जटा विलासी, मैं जानती समझती

एक ढेर से मिट्टी के तुम कौन हो।"[257]

सुनते ही ऋषि का क्रोध उबल पड़ता है। वे शक्ति का बखान करते हुए कहते है। क्या तू मुझे नहीं जानती–

"मैं हूँ विश्वामित्र, प्रतापी महामुनि

मैं चाहूँ तो क्षण में ही नव सृष्टि कर

तुझ जैसी उत्पन्न करूँ शत नारिया।"[258]

किन्तु मेनका पर उनके क्रोध का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जिसके कारण उनका क्रोध और भड़क जाता है। क्रोधित होकर वे मेनका को निर्लज्ज, साहसिके

मन्दानिले, कह उठते है, किन्तु इसके साथ ही मानव की कमजोरी प्रकट होने लगती है। ऋषि के मन में कुछ–कुछ होने लगता है। जैसे–जैसे पुरुष के हृदय में कमजोरी उत्पन्न होती है वैसे वैसे दंभ और क्रोध दबते जाते हैं।ऋषि समाधि लेना चाहते है तब तक वासना अपना रंग जमा लेती है। दस स्थल पर लेखक ने मानव हृदय में उठने वाले भावों के संघर्ष का चित्रण वड़ी ही भावमयी भाषा में किया है। महर्षि तप की प्रेम से तुलना करते है। उन्हें प्रतीत होता है जप, तप और समाधि से बढ़कर तो नारी की मुस्कान, है जो प्राणों में रोमांच भर देती है। इस पर तो "कई सृष्टियाँ कई योग तप न्योछावर किये जा सकते है।" फलतः वे प्रेम को याचना कर उठते है–

"तप का क्या अस्तित्व, स्वर्ग का भी नहीं
जिसके हेतु समग्र पुण्य करता जगत
मुझ तृषार्त का भर दो निज मद से हृदय
पीऊँ शत–शत जीवन यह सौन्दर्य मधु।"[259]

काम की तीव्रता के बिन्दु पर छोड़कर मेनका अन्तर्ध्यान हो जाती है। ऋषि उसके वियोग में पागल जैसा प्रलाप कर उठते है। प्रेम में असफल हो जाने पर वे शिलाखण्ड से गिरकर आत्म हत्या करने लगते है। तभी मेनका प्रगट होकर हाथ पकड़ लेती है। यह नारी की पुरुष के अहंकार पर विजय है। 'अहं' के हटते ही नारी आत्म समर्पण कर देती है–"प्रिय वियोग से सभी अहं मल धुल गया" कह कर वह प्रेम का दम्ब पिलाने के लिए आत्म समर्पण कर देती है।

नारी और पुरुष –विश्वामित्र और मेनका एकाकार हो जाते है पुरुष को पछतावा था कि वह नारी को कैसे भूल गया। नारी को पुरुष "मद की प्यास सा" लगता है। यहीं दोनों का संघर्ष समाप्त हो जाता है। बारह वर्ष बाद मेनका माता के रुप में प्रकट होती है। यही नारी की महिमा की चरम परिणति है। इस बीच

विश्वामित्र की वासना का आवेग कम हो जाता है। वे सोचने लगते है कि–गरल अमृत के धोखे में मैं पी गया।"

यही बात उर्वशी मेनका से कहती है–गरल अमृत के धोखे मैं तू पी गई । वह याद दिलाती हैं कि तूने तो मानव को वश में करने की बात बताई थी, किन्तु मैं देख रही हूँ कि तू बालिका के मोह में फँसकर अपना प्रण भूल गई हैं। मेनका अब सचेत होती है कि उसने जो कुछ किया था वह भ्रान्ति थी। फलतः वह बालिका को छोड़कर चली जाती है। विश्वामित्र को भी अपने पर ग्लानि होती है। वे कहते हैं कि–"जीवन मेरा भूला अपने ध्येय को। "ऋषि फिर आन्तरिक संघर्ष में फँस जाते है। एक ओर वात्सल्य पूरति बालिका और दूसरी ओर उनकी साधना है। अन्त में वे बिलखती बालिका छोड़कर चले जाते है और यही गीतिनाट्य समाप्त हो जाता है। विश्वामित्र का कथानक सात छोटे–छोटे दृश्यों में विभक्त है। प्रथम खण्ड में विश्वामित्र के अहं का चित्रण है। और मेनका तथा उर्वशी के वार्तालाप हैं। जिसमें मनेका पुरुष को वशीभूत करने के लिए बसन्त यौवन का आह्वान करती है। द्वितीय खण्ड में अनंग की महिमा का वर्णन हैं जिसे मेनका गीत के रूप में प्रस्तुत करती है। तीसरे दृश्य में मेनका ऋषि को आकर्षित करने के लिए हाव भावों का प्रदर्शन करती है, जिसमें वह सफल हो जाती है। चौथे दृश्य में विश्वामित्र की उन्मत अवस्था का वर्णन है। इसमें मानव के हृदय में उठने वाले द्वन्द्व का सुन्दर मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इसका अन्त मेनका के आत्म–समर्पण के साथ होता है। पंचम दृश्य चतुर्थ दृश्य के बारह वर्ष बाद से प्रारम्भ होता हैं। इसमें नारी के मातृत्व का बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन है। छठे खण्ड में मेनका को अपनी भूल का आभास होता है। वहीं सप्तम दृश्य में विश्वामित्र को। विश्वामित्र में मानव के मनोविकारों और संचारी भावों का वर्णन पटुता से किया है। लेखक के स्वयं के शब्दों में "मानव में अंहकार उसका धीरे–धीरे कम होना प्रेम का

उदय होना, प्रेम की परिणति, विजय का बाद विलास का होना, तदनन्तर मानव में फिर पुराने संस्कार जाग्रता होना, यही क्रम है। मानव के यही संचारी भाव प्रतीक रुप में इस भावनाट्य में उपस्थिति हुए है।''[260]

मानव में संचारी भावों का यही क्रम कुछ कुछ कामायनी में भी देखने को मिलता है। श्रद्धा का प्रेम, फिर वासना, विलास और फिर पुत्र प्राप्ति के बाद मनु का निर्विकार होकर भाग जाना ऐसी ही घटनाएँ है। मानवीय भावनाओं का चित्रण विश्वामित्र की उन्मतावस्था में बहुत अच्छा हुआ है। हृदय के अन्तर्द्वन्द्व का एक चित्रण देखिए–

''अरे क्या हुआ, अणु अणु क्यों बेचैन है

हृदय काँपता, धड़कन उड़ती जा रही।

श्वासों के संग नभ में पंख समेट कर

अन्धकार है लहर–लहर सा झूमता

X X X

आशाएँ जल उठी, जले हैं रोम भी

कुछ सी कोई नहीं विरह है आग है।''[261]

मानव भावनाओं के साथ ही प्रकृति वर्णन सुन्दर वन पड़ा है। कथानक का सम्बन्ध हिमालय की सुरम्यघाटी से है, जिसमें प्रकृति स्वच्छन्द विचरती है। मेनका द्वारा वसन्त के आह्वान के समय प्रकृति वर्णन मन मोहक है।

कथानक का सम्बन्ध हिमालय की सुरम्यघाटी से है, जिसमें प्रकृति स्वच्छन्द थिरकती प्रतीत होती है। लेखक ने रंग संकेतों में प्रकृति की पृष्ठ भूमि का सुन्दर वर्णन किया है– ''वृक्ष पौधें लताएँ लहरा उठे है, फूल हसने लगे हैं, सुरभि से सारा वन प्रदेश महक उठा है, दिन और रात का भेद भूलकर भौरें झुण्ड के झुण्ड पुष्पों पर टूट पड़ते है। पृथ्वी अपने वैभव को चूमने के लिए हरी घास के द्वारा

रोमाचिंत हो रही है। चन्द्रमा किरणों द्वारा नीचे की ओर झुका पड़ता है।"[262]

प्रकृति का आलंबन और उद्दीपन दोनों ही रुप में वर्णन हुआ है। एक आलंबन का वर्णन देखिए–

"मंद मारुत मलय मद ले, निशा का मुख चूमता है।

साथ पहलू में छिपाये चन्द मद में झूमता है।"

कुसुम चपकों में किरण रस भर धरा मद पी रही है।

उड़ रहा जग श्वास के रथ, आस आँसू सी आ रही है।"[263]

प्रकृतिभावों और परिस्थितियों के अनुसार बदली हुई उन्हें उद्दोप्त करने में भी सहायक हुई है। विश्वामित्र को प्रकृति के कण कण में प्रियतमा ही दिखाई देती है–

"देख रहे हैं, देख रहे है प्राण शत

तरु में, किसलय में, सुपुष्प मकरंद में

अतिगुंजन मे, पवन प्रसर में, ओस में

धवल चन्द्र में तारक दल के हास्त्र में

तुम्हें, तुम्हे, एक तुम्हें अभिसारिके।"[264]

अन्तर्द्वन्द्व– गीतिनाट्य में मानसिक संघर्ष अपनी चरम सीमा पर प्रस्तुत किया जाता है। भट्ट जी के गीतिनाट्यों में मानसिक एवं भावात्मक अन्तर्द्वन्द्व की अभिव्यक्ति प्रचुर मात्रा में हुई है। "विश्वामित्र" में पुरुष और नारी का संघर्ष है। नारी और पुरुष का यह संघर्ष सनातन है। अहं के परित्याग में ही दोनों का एकत्व निर्भर हैरू। विश्वामित्र के हृदय में उठने वाले काम और तपस्या का संघर्ष भी उल्लेखनीय है। काम की जाग्रति के साथ विश्वामित्र का मन का मानसिक संघर्ष बढ़ जाता है। हृदय में प्रगट होने वाले भावों को 5 पृष्ठों में प्रस्तुत किया गया है। सही अर्थों में विश्वामित्र संघर्षों की ही कहानी है– नारी और पुरुष के संघर्ष की,

अहं और भावना के संघर्ष की। घृणा और ममता के संघर्ष की। यहा अहंकार और क्रोध का काम से संघर्ष होता है सात्विक विचारों का राजसी विचारों से संघर्ष होता है और आतृप्ति का तृप्ति से संघर्ष होता है। स्वस्थ नारीत्व और उग्र पुरुषत्व के संघर्ष में नारीत्व की विजय होती है और पुरुषत्व झटका खा कर बिखर जाता है। किन्तु अन्त में नारी और पुरुष पुनः उसी संघर्ष में फँस जाते है। अर्थात जहाँ से चले हम वहीं पहुँच जाते है। मेनका और विश्वामित्र दोनों बालिका को छोड़कर चले जाते है। अहं पर भावना की और घृणा पर ममता की विजय तो होती है, किन्तु अनादि संघर्ष समाप्त नहीं होता। भाव शबलता की दृष्टि से भी 'विश्वामित्र' सुन्दर नाट्य है। आन्तरिक भावों को अभिव्यक्ति विश्वामित्र के कथनों में पर्याप्त मात्रा में हुई है। प्रेम और काम का रंग जैसे चढ़ता जाता है, तपस्वी के हृदय की धड़कने बढ़ती जाती है। लगता है जैसे अणु–अणु बैचेन हो रहा है–

"है यह कैसा हुआ, हृदय यह क्या हुआ
अरु क्या हुआ अणु–अणु क्यों बैचेन है
हृदय काँपता, धड़कन उड़ती जा रही है।"[265]

उनका रोम रोम अपनी प्रिया को पुकारने लगता है उनकी तृष्णा बढ़ जाती है, सारी प्रकृति ही अनुरागमयी परिलक्षित होती है–

"आज हमारे रोम–रोम वाणी हुए
ओ पुकारते ढूढ़े है विश्रूव में
रोम रोम में जाग उठी है प्यास सी।"[266]

चरित्रांकनः– विश्वामित्र में कुल तीन पात्र हैं– विश्वामित्र, मेनका और उर्वशी। इसके अतिरिक्त वसन्त भी एक पात्र है जिसका प्रवेश क्षण मात्र को होता है। ये तीनों ही तीन विभिन्न प्रवृत्तियों के प्रतीक हैं। विश्वामित्र मानव के दम्भ के प्रतीक है तो मेनका स्त्री सौन्दर्य, स्त्रीत्व और मातृत्व का प्रतीक है और उर्वशी

मानव के प्रति स्त्री को विवश उपेक्षा का प्रतिनिधत्व करती है। लेखक ने पात्रों का परिचय इसी रूप में दिया है।

विश्वामित्र के प्रथम दर्शन हमे महान तपस्वी के रूप में होते है। प्रदीप्त और उग्र मुख मण्डल से तेज टपक रहा है। भृकुटि भंगिमा से प्रकृति भी भयभीत है वक्र दृष्टि से देखते ही वर्फ का गिरना बन्द हो जाता है। उनमें इतनी शक्ति आ जाती कि ''फट सकता ब्रह्मण्ड एक संकेत पर'' महर्षि विश्वामित्र महान घमण्डी और दम्भी के रूप में प्रस्तुत किये गये है। वे अपनी सत्ता के समक्ष समस्त शक्तियों को हेय समझते है। वे अपने को ऐसा सूर्य मानते है जो दीप के प्रकाश को क्षीण कर देता है–

''मैं अत्युन्नयत भव विवेक आलोक–रवि
पोर–पोर में विश्व विबुद्ध है
मुझ रवि के सम्मुख सत्ता क्या दीप की।''[267]

तपस्वी को नम्र एवं आत्मश्लाधा दूर होना चाहिए किन्तु विश्वामित्र में जहाँ घमण्ड है वही आत्मश्लाधा भी है। एक ढेर से मिट्टी के तुम कौन हो? कहकर जब मेनका उनकी उपेक्षा करती है, तो वे कहते हैं–

''क्या हूँ मुझको नहीं जानती वज्रमति,
मैं हूँ विश्वामित्र, प्रतापी महामुनि,
मैं चाहूँ तो क्षण में ही नव सृष्टि कर
तुम जैसी उत्पन्न करुँ शत नारिया।''[268]

विश्वामित्र का क्रोधी स्वभाव जगत प्रसिद्ध है। यहाँ पर भी उनके इस परम्परागत रुप की रक्षा की गई है। मेनका को देखकर उनका क्रोध भड़क उठता है और वे उसे देखकर अपशब्द कह उठते हैं–

''रे निर्लज्जे, साहसि के, मंदादरे

मेरे सम्मुख मेरा ही अपमान तू

करने आई है मशकी सी तुच्छमति।''

विश्वामित्र जहाँ महान तपस्वी और ब्रह्मज्ञ हैं वही उनमें पुरुषागत कमियाँ भी हैं। पुरुष की सबसे बबड़ी कमजोरी नारी होती है। उसके सम्मुख वह आत्माज्ञान भूल जाता है। ब्रह्मज्ञ ऋषि के हृदय में भी रूपसी मेनका को देखकर क्षोभ उत्पन्न होता है। ऋषि उसकी ओर आकर्षित होते हैं। और फिर अपना विवेक खो बैठते हैं। प्रकृति और ब्रह्म का रहस्य नर–नारी के रूप में प्रगट होता है–''नर नारी की प्रकृति ब्रह्म है वस्तुतः कामातुर ऋषि की अवस्था 'उन्माद' अवस्था तक पहुँचती है–यहाँ तक कि वे स्त्री के लिए आत्महत्या तक करने को उद्धत हो जाते है।

मेनका अनुपम सुन्दरी प्राणों में जीवन का संचार करने वाली अप्सरा है। भट्ट जी ने उसे सौन्दर्य, मातृत्व और स्त्रीत्व की प्रतिमा बताया है। सौन्दर्य तो उसकी निधि है जिसे वह अपना अस्त्र बताती है, और वृद्धि हमारे अस्त्र है उसे अपने रूप पर अगाध विश्वास है। प्रेम और आनन्द उसके अंग है–''हृदय प्रेम आनन्द हमारी सृष्टि है।'' इसीलिए वह विश्वामित्र जैसे तपस्वी को वहीं वश में करने की बात कहती है। उसके सौन्दर्य का वर्णन करते हुए स्वयं ऋषि उसे–'अल्हड़पन, मस्ती, मादकता, बेसुधी, मृदुता, कोमलता, सरलता आदि विभिन्न विशेषणों से सम्बोधित करते है।

मेनका में सौन्दर्य और बुद्धि का समन्वय है उसका विचार है कि नारियों के पास यद्यपि बाहुबल नहीं होता किन्तु हृदय बल और बुद्धि बल तो होता ही है। इसी बल पर नारी पुरुष पर अंकुश रखती है।

मेनका में नारीत्व के सभी गुण विद्यमान है। नारी के आत्म विश्वास और आत्मज्ञान का पूर्ण दर्शन उसमें होता है। नारी के दो रूप होते है–एक विकृत रूप

और दूसरा स्वरुप रुप। मेनका नारी के स्वस्थ रुप का प्रतिनिधत्व करती है। इसीलिए वह नर से घृणा नहीं करती।

मेनका वाक्पट् अप्सरा है। पुरुष के अहं पर चोट करने के लिए वह विश्वामित्र की अपेक्षा करती है और उनके प्रश्नों के तीखे उत्तर देती है। भट्ट जी ने मेनका को मातृत्व की प्रतिमा कहा है। लेकिन उसका ममतामयी माँ का रूप कुछ समय के लिय ही उभरता है। उस क्षण मान, धृणा, अपमान सभी वात्सल्य में बदल जाता है। वह पुत्री के प्रेम में 'भूल गई मेरा भी कोई स्वर्ग था'। वह कहती है–''तू मेरी सम्मान, साधना, कामना तू मेरा अभिमान, रूप, छवि मल्लिका। अतः हम मेनका के स्वस्थ मातृत्व का प्रतीक नहीं कह सकते। उसका मातृत्व भावुकता का परिणाम है। वास्तव में मेनका परम पावन प्रेम, नम्रता स्फूर्ति, प्रेरणा भाव प्रबलता निर्मलता ममता रमणीयता, स्नेह की शीतल छाया, करुण का निखरा रुप, अनंग का सौन्दर्य वर्षा की आर्द्रता और नारी का अजेय रूप है। जिसके सामन पुरुष का अहम् नत मस्तक हो जाता है।''[269]

उर्वशीः–(उदय शंकर भट्ट)– उर्वशी मेनका की सखी है। इसे भट्ट जी ने मानव के प्रति स्त्री की विवश उपेक्षा का प्रतीक बताया है। वह मनुज से घृणा करती है। क्योंकि मनुष्य उसे साधन समझ कर उसका आनन्द लेता है–

''मैं करती हूँ घृणा मनुज से इसलिए

जग का साधन बना हमें सुख ले रहा।''

अधीरता और अतृप्त नारीत्व के कारण उर्वशी पुरुष को घृणा करती है। उसके मत से पुरुष एक लोहा है, जो सहज पिघलता नहीं और यदि पिघल जाय तो शीघ्र ठण्डा नहीं होता। वहाँ मेनका में दृढ़ इच्छा शक्ति है, वही उर्वशी में वेदना, घृणा और निराशा के चिह्न परिलक्षित होते है। वह ऐसी नारी है जो प्रतिशोध की भावना में जल रही है वह नर का पराभव चाहती है–

"यदि नर का हो सतत पराभव भृकुटि से

रोम–रोम की जलन सुधा सरिता बने।"

'बसन्त' का कोई चरित्र नहीं। वह केवल 6 लाइनें बोल कर ही चला जाता है और फिर उसका आगमन नहीं होता।

कथोपकथनः— विश्वामित्र के कथोपकथनों में जहाँ एक ओर नाटकीयता है, वही दूसरी ओर लम्बे लम्बे आत्म–कथन भी हैं। एक स्थान पर तो विश्वामित्र के हृदय का अन्तर्द्वन्द्व पाँच पृष्ठ में चलता रहता है। भट्ट जी का विचार है कि–"भाव जगत से सम्बन्धित होने के कारण सम्वादों में उच्च्व स्तर का विशद् मानसिक विश्लेषण किया जाता है। यह विश्लेषण साधारण और अल्प शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। एक भाव के उत्तर में दूसरा भाव, समुपस्थित किया जाता है। इनमें शब्दों का लोभ नहीं किया जाता। अतः इन नाटकों में सम्वाद कभी कभी लम्बे होते।"[270] लेंकिन लम्बे होते हुए भी इन कथोपकथनों में तीव्रता, कथा निर्वाह की क्षमता है। कहीं–कहीं सम्वादों में गति और क्षिप्रता भी है। जैसे–

विश्वामित्र–देव हा!

गरल अमृत के धोखे में मैं पी गया।

उर्वशी– गरल अमृत के धोखे में तू पी रही।

विश्वामित्र– मणि के भ्रम में काँच–खण्ड लेकर चला

मेनका– प्रिय, यह क्या, ओ सखी, अरी क्या कह रही।

विश्वामित्र– हाय सत्य से अनृत बदल कर हंस रहा

क्या इतना अपलाप तपस्वी का हुआ।"[271]

भाव प्रधान होने के कारण विश्वामित्र के सम्वाद प्रायः लम्बे और अन्तर्द्वन्द्व से परिपूर्ण है।

भाषा– श्री उदयशंकर भट्ट हिन्दी के संस्कारों में से है। प्रस्तुत गीतिनाट्य

में शुद्ध साहित्यक और संस्कृत शब्दों का प्रयोग हुआ है। कहीं भी भाषा की शिथिलता और चलताऊ शब्दों का प्रयोग नहीं हुआ। गाली में भी निर्लज्जे, साहसिके, मंदादरे जैसे शब्दों का प्रयोग हुआ है। भाषा में कहीं भी शिथिलता नहीं है। सर्वत्र आलंकारिक भाषा का प्रयोग हुआ है। अलंकारों में अनुप्रास, रुपक, उपमा, मानवीकरण प्रमुख रूप से आये हैं। यत्र–तत्र लाक्षणिक भाषा का प्रयोग भी हुआ है।

गीतात्मकता– विश्वामित्र काव्यत्व की दृष्टि से भी सफल गीतिनाट्य है। संगीत के माध्यम से मनोभावों को हृदय तक पहुँचाया गया है। "मैं प्रणय की हूँ पहेली", "राग का आरोह आली", "ताल भू सी रागनी हूँ", जैसे गीति सुन्दर बन पड़े हैं।

देशकाल वातावरण– 'विश्वामित्र की कथा का सम्बन्ध पौराणिक काल से है। किन्तु गीतिनाट्य 'राधा' का सफल अभिनय किया जा सकता है लेकिन मंच पर प्रस्तुत करने के लिये पर्याप्त करने होंगे। प्राकृतिक सैटिंग, कोरस, वंशी–वादन के किसी भी स्थान पर तत्कालीन युग की झाँकी देखने को नहीं मिलती। रामायण काल की कला, संस्कृति एवं सभ्यता का भी वर्णन नहीं हुआ है। किन्तु कथानक से सम्बन्धित वातावरण का चित्रण बहुत ही हृदयग्राही है। हिमालय की सुरम्य घाटी में विश्वामित्र का तप, अप्सराओं का मूल विचरण, वसन्त का सुरम्य वर्णन एवं प्रकृति की पृष्ठभूमि में मेनका एवं विश्वामित्र की प्रेम कथा सहज ही हमारे मन एवं मस्तिष्क में सोम्यता एवं आह्लाद भर देती है। भावों के अनुसार वातावरण में भी परिवर्तन होता जाता है। गीतिनाट्य का मूल्य उद्देश्य नारी एवं पुरुष के सनातन संघर्ष को चित्रित करना और दोनों के समन्वय में कल्याण की भावना को चित्रित करना है। नर और नारी के मध्य अहं, दम्भ का न होना, न होना ही इस संघर्ष का अन्त है। जब तक मानव स्त्री को दासी और वासनापूर्ति का साधन समझता

रहेगा, तब तक यह संघर्ष चलता रहेगा। पुरुष का पौरुष तभी सार्थक है जबकि उसका अहं उसे सदैव जागरुक बनाये रखे, किन्तु वह दम्भ और क्रोध न बन जाय अहंकार न आ जाय अहंकार से क्रोध उत्पन्न होता है और क्रोध से विवेक चला जाता है। अतः घृणा दम्भ और क्रोध से परे रहकर अपने आत्मगौरव की रक्षा करनी चाहिए। एक तरह से यहाँ भट्ट जी ने फासिज्म का विरोध किया है। जिस प्रकार विश्वामित्र अपने को सृष्टि का निर्माता मानते है उसी प्रकार मार्क्स भी मानव को सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी मानता है। मार्क्स के अनुसार मनुष्य से ऊपर कोई नहीं है। विश्वामित्र भी अपने से ऊपर किसी को नहीं मानतें। फासिज्म का यही भाव विश्वामित्र के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। जहाँ पुरुष में अहं नहीं होना चाहिये वहीं नारी में भी सात्विक भाव होने चाहिए। घृणा, ईर्ष्या आदि नहीं होनी चाहिए जो कि उर्वशी में है। यही सब प्रस्तुत करना इसका उद्देश्य है।

राधा : (उदय शंकर भट्ट)— 'राधा भट्ट जी का तीसरा नाट्य है। 'विश्वामित्र' और 'मत्स्यगंधा' की भाँति यह भी प्रतीक्षात्मक नाटक है। इसमें राधा और कृष्ण के आश्वत प्रेम और उनके माध्यम से भक्त और भगवान के पारस्परिक सम्बन्धों का भावात्मक वर्णन है। राधा का कृष्ण के प्रति स्वाभाविक आकर्षण, समर्पण और अन्त में कृष्ण में तिरोभाव क्रमशः प्रस्तुत किये गये हैं। इसमें राधा सात्विक भावों का प्रतीक है। कृष्ण सौन्दर्य और प्रेम के तथा नारद भक्ति के अंहकार का प्रतिनिधित्व करते हैं।

पूर्व के गीतिनाट्य की अपेक्षा राधा का कथानक सरल और संघर्ष की दृष्टि से क्षीण है। राधाकृष्ण के प्रेम में पागल हो रही है। प्रकृति के कण–कण में से श्याम का आभास होता है। वह नहीं जानती कि यह सब कैसे हो गया उसे तो लगा जैसे कोई अपरिमित शक्ति उसे नचा रही हो। विशाखा कृष्ण का नाम लेकर कहती है कि क्या तेरे पिता इस अनुराग को सहन कर लेंगे? अपनी कुल,

मर्यादा को कलंकित होता देख वे क्रोध से आग बबूला हो जायेंगे। वे कंस के सामन्त भी है, इस सम्बन्ध को पसन्द नहीं करेगें तो राधा उत्तर देती है–"जानती हूँ सखी यह सब, वश नहीं है किन्तु मेरा" वह कुएँ पर पानी भरने जाती है किन्तु कदम यमुना तट पर ले जाते हैं। राधा विशाखा से पूछती है कि क्या तुझे ऐसा कुछ नहीं होता । तो विशाखा खुल जाती है। वह भी कृष्ण के प्रेम में पड़कर कष्ट भोग चुकी है। मिट चुकी है। इस अलोकिक व्यक्ति ने सभी मर्यादाएँ तोड़ दी है। समस्त संसार कृष्ण के प्रेम में कृष्णमय हो गया है। विशाखा से हृदय की अभिलाषा व्यक्त करती हुई राधा कहती है कि–

"यही बस में लाज तज, मर्यादा, बन्धन तोड़ कुल जग
त्याग सब कुछ, बन वियोगिन, मुक्त जीवन हो सकूँगी।"[272]

द्वितीय दृश्य में राधा और कृष्ण का वार्तालाप है। कृष्ण की वंशी ध्वनि सुनकर राधा यमुना तट पहुँचती है। कृष्ण से वह पूछती है कि–

"कौन तुम अनुराग सागर, कौन तुम मन्मय हृदय के
अरे बोलो, प्राण बोलो तान एसी छोड़ दी क्यों?"

वह वंशी हृदय को क्यों बेचैन कर देती है। क्या वंशी बजाने का उद्देश्य व्रज की कुलांगनाओं को लुभाना नहीं है?

"वेणु मीठी सी बजाकर मनोहर एकान्त में आ
इस निशा में,यहाँ तट पर, है जहाँ सन्देह वाहक
विहग का स्वर, सुमन मारुत, दुग्ध फैनिल इन्दु किरणें
मन्द मन्द मकरन्द विह्वल हृदय मथने को चतुरतर
और उन अज्ञान ललना जनों को है खींच लाता यहाँ।"[273]

कृष्ण उत्तर देते हैं कि इसमें मेरी वंशी का क्या दोष है। उफनती नदी में यदि कोई कूद पड़े और तैरना न जानता हो तो इसमें नदी का क्या दोष? राधा

पूछती है कि भला ऐसी कौन नारी है जिसमें रूप की पिपासा न धधक रही हो और जो वेणु–ध्वनि सुनकर कुल–कान और लोकलाज न तज देगी।

कृष्ण यह सुनकर वासनात्मक प्रेम का खण्डन करते हैं कि हरित पर्वतमालन, पूर्णचन्द्र, अतल सागर, धवल रजनी और प्रकृति के अन्य उपकरण विषय वाहक ही हैं। इनका अन्य कोई उपभोग नहीं है। प्रेम की परिभाषा करते हुए राधा पूछती है कि–

''प्रेम क्या यह यहीं, कहता जगत जिसको हृदय तर्पण

मन समर्पण, तन विसर्जन, प्राण प्रिय के चरण गिर।''[274]

कृष्ण प्रेम का सम्बन्ध आत्मा से बताते हुए कहते है कि–

''प्रेम आकर्षण तथा आनन्द आत्मा की अलंकृति

उसे तन का दास बनने देना नहीं शुद्ध सुन्दरि।''[275]

राधा पूछती है कि क्या इस प्रकार का प्रेम का सम्भव है? तो कृष्ण उत्तर देता है कि कोई भी वस्तु असम्भव नहीं है। किन्तु राधा के मन में उठने वाली हलचल क्या है।? वह तो केवल कृष्ण से अनन्यता चाहती है।

भट्ट जी के अनुसार राधा के हृदय में उठने वाले भावों का संघर्ष सात्विकता का संघर्ष है। राधा कृष्ण को अजईश या समाज सुधारक के रुप में नहीं वंशीधर के रुप में देखना चाहती है। वह बार बार वंशी की धुन सुनना चाहती है। उसकी आवाज पर वह नाचती है गाती है, थिरकती है, उसी की ध्वनि से वह अपना मन भूल जाती है–

''उसी ध्वनि से, उसी सवर से,उसी लय से, मूर्छता से

मैं सभी भूली कहाँ हूँ क्या रूप मेरा।''[276]

राधा के विचार से हमें अपने जीवन का आनन्द लेना चाहिए। ''हम क्यों न जिएँ छल–छल करते जीवन का पाराधार सखे' के उत्तर में कृष्ण वासना रहित

सात्विक प्रेम का उपदेश देते हैं–

"है यही तो शुद्ध सात्विक, सरस रस जीवन यही पर

हो न हो उसमें यदि कहीं भी लेश मन की वासन का।"[277]

राधा कृष्ण को प्रेमी के रूप में देखना चाहती है और कृष्ण के ज्ञान के माध्यम से शाश्वत प्रेम का उपदेश देते है। राधा आत्म–समर्पण करना चाहती है। कृष्ण उसे उठाकर मथुरामगन की बात बताते है। कृष्ण यात्रा का उद्देश्य बताते हुए कहते हैं कि प्रजा संहारक कंस को समाप्त करना और देश सेवा ही उनका मूल्य उद्देश्य हैं। यह सुनकर राधा के सात्विक भाव जागृत हो जाते हैं और वह प्रेमिका राधा से भक्त राधा हो जाती है। प्रेम से श्रद्धा और श्रद्धा से भक्ति यही क्रम है। तड़पते प्रेम के साथ उदात्त भक्ति–भावना का समन्वय हो जाता है।

चौथे दृश्य में भक्त की अनन्यता का चित्रण है। राधा कृष्ण के वियोग में बेचैन है कि उसी बीच भक्ति के अहंकार में डूबे नारद जाते है और राधा से कहता है कि तुम्हारा मार्ग कितना कंटकित है। तुम जिसके हेतु यह सब कर रही हो उसने तुम्हें जीर्ण कन्या के समान त्याग दिया है। तुम अपना सूर्य का प्रखर यौवन व्यर्थ न खोओ। राधा सीधे सादे शब्दों में धन्यवाद देते हुए कहती है कि महामुनि! अपने ज्ञान का बीज अनुवर्य भूमि में डाल दिया है। लेकिन उद्धव की भाँति नारद हिम्मत न हारकर पुनः राधा का ध्यान उसकी जीर्ण अवस्था और स्त्रियोचित मान की भावना जाग्रत करना चाहते है। राधा कहती है कि आपने जो कहा है सत्य कहा है किन्तु मेरे लिए वे सब कुछ है–'मान–अपमान का तो प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि 'मान ओ' अपमान तो है द्वेत के ही रूप नारद।" लेकिन मेरे और कृष्ण में तादाम्य स्थापित हो गया है। अतः यह संसार ही प्रतीत हो रहा है–

"वे यहाँ हैं, वे वहाँ हैं, हृदय में, विश्वास बल में

कुसुम कलियों में लता में वृक्ष में सरिता लहर में।

गगन में पाताल में, भूधर धरा जीवन मरण में।''[278]

हर्षातिरेक में वह नाचने लगती है, गाने लगती है और ध्यानस्थ होकर गिर जाती है। यह ज्ञान और भक्ति के अहं की पराजय है। नारद जो अब तक अपनी ही भक्ति भावना को निश्छल मानते थे। राधा की भक्ति भावना से आविर्भूत हो जाते है। वे कह उठते हैं–

''महामुनि, ज्ञानी, आमानी, भक्त योगीं सभी देखें

जगत देखा बहुत देखा पर न ऐसा व्यक्ति देखा

चला था पथ से हटाने, परीक्षा लेने कुमति मैं

किन्तु मैने विश्व वन्ध्या आज राधा रूप देखा।''[279]

राधा प्रेम का प्रतिपादन नहीं माँगती। वह तो उनकी मूर्ति को हृदय में बसाकर प्राण की आकंठ पीड़ा युग–युग तक पीना चाहती है। पूर्व की स्मृतियों में डूबी हुई राधा कृष्णमय बन जाती है। जैसे सब कुछ कृष्ण में डूब गया हो। यही तादाम्य है, यही मुक्ति है, नारद कहते हैं–

''ब्रह्म से मायानुरति सी, वृद्ध हो तुम कृष्ण से सरिव

कृष्ण से संग ही तुम्हारा नाम होगा, धाम होगा

कृष्ण राधा मय हुआ है, आज राधा कृष्ण मय है।''[280]

राधा को सायुज्य मुक्ति मिल जाती है। डा. सिद्धनाथ कुमार का विचार है कि इसमें कोई संघर्ष उभरकर सामन नहीं आता।''[281]

यद्यपि राधा में क्रियात्मक संघर्ष नहीं है लेकिन मानसिक संघर्ष की कमी नहीं है। राधा के हृदय में उठने वाले अन्तर्द्वन्द्व सामाजिक मर्यादा और प्रेम का अन्तर्द्वन्द्व भक्ति के अहं और समर्पण का अन्तर्द्वन्द्व, वृद्धि और हृदय का अन्तर्द्वन्द्व आदि का चित्रण पर्याप्त हुआ है। राधा कृष्ण का प्रेमी रूप देखना चाहती है, कृष्ण वासनाहीन प्रेम का समर्थन करते है। दोनों की विचारधाराओं में संघर्ष होता है

और जब मथुरा जाते समय अपना जनकल्याणकारी महान उद्देश्य बताते है, तो राधा का प्रेम भक्ति का रूप ले लेता है। कृष्ण के हृदय में भी ज्ञान और हृदय रस का संघर्ष चलता रहता है। राधा और नारद की भक्ति में भी द्वन्द्व है। नारद में भक्ति का अहं है जबकि राधा की भक्ति समर्पण की भावना से ओत प्रोत है। समर्पण और तादाम्य के समक्ष भक्ति का अहं पराजित होता है और नारद राधा के विश्व वन्ध्य रूप की बड़ाई कर उठते हैं।

'राधा' के कथानक का अन्त अस्वाभाविक सा लगता है। सामान्यतः ऐसे नाटक ऐसे चरम सीमा पर समाप्त हो जाते है। किन्तु यहाँ राधा के तादाम्य के बाद नारद का पश्चाताप बहुत देर तक चलता रहता है।

'राधा' गीतिनाट्य की पृष्ठभूमि मनोविज्ञान पर आधारित है। इसमें न तो 'मतस्यगन्धा' जैसी काम भावना का वेग है, और न 'विश्वामित्र' की मेनका जैसा हीनत्व कुंठा से उत्तेजित क्षतिपूर्ति प्रति क्रिया का उद्वेग। उर्वशी जैसी प्रतिशोध ग्रन्थि भी उसमें नहीं है। वह तो नारी मनोविज्ञान का सात्वकि रुप है। उसकी हद की प्रकृतेक्षा का दमन तो हुआ है, पर उसकी दमति भावना का उदात्तीकरण हो गया है।''[282]

वास्तव में राधा का प्रेम आदर्श प्रेम है, जिसमें वासना का वेग क्रमशः शिथिल होता गया है। उसमें दमन की शक्ति है, आत्मनियन्त्रण है। फिर भी कभी कभी उसकी अन्तरचेतना वंशी–ध्वनि सुनने को प्रकार उठती है।

चरित्र चित्रण– 'राधा' में कुल चार पात्र हैं– कृष्ण, राधा, विशाखा, और नारद। कृष्ण यहाँ प्रेम सौन्दर्य के प्रतीक बनकर आये है। कहीं–कहीं उन्हें विराट ब्रह्म के रूप में चित्रित किया है। यद्यपि लेखक ने स्वयं उन्हे भगवान नहीं माना उनके अनुसार कृष्ण को भगवान के रूप में देखना गलत है।''[283]

लेकिन यत्र–तत्र कृष्ण का जो रूप प्रस्तुत किया गया है, वह अपौरुषेय ही

है। कृष्ण वंशी के रूप में जिस अनिवर्चनीय शक्ति की ओर संकेत करते है वह ब्रह्म का ही रूप तो है–

"सत्य से सुस्पष्ट, मादक सरा से, पीयूष से मधु,
यज्ञ सेअति कर्म, हतु से ज्वलन, दावा से भयावह
प्राण से अतिसूक्ष्म संचालन, प्रचालन कर्म से गुरु
गहन गाथा है अनिवर्चनीय माधव, ब्रह्म जग के।"[284]

कृष्ण का आलौकिक व्यक्तित्व देखकर गोपियाँ मर्यादा भूल जाती है। 'राधा' में उनका मात्र लोक रंजक रूप ही नहीं उभरा, लोक रक्षक रूप भी उभरा है। राधा को छोड़कर प्रजा रक्षक और जनहित का वृहत उद्‌देश्य लेकर वे मथुरा जाते हैं।

कृष्ण का प्रेम सात्विक प्रेम है। उसमें वासना को ही स्थान नहीं उनके विचार में जिस प्रेम में वासना की गन्ध आती है, वह सच्चा प्रेम नहीं। इस प्रकार कृष्ण का लोक हितैषी रुप 'राधा' में उभरा है।

राधा स्त्रीत्व का प्रतीक है। उसमें प्रेम, सौन्दर्य, श्रद्धा और भक्ति का योग है। उसे कृष्ण की परकीया के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वह एक ऐसी प्रेमिका है जो कृष्ण के प्रेम में माता–पिता पति सबका परित्याग कर देना चाहती है। वह कहती है–

"यही बस, मैं लाज तज, मर्याद बन्धन तोड़ कुल जग
त्याग सब कुछ वन वियोगिन, मुक्त जीवन हो सकूँ री
दम्पती के धर्म का पालन न मैं कर पा रही हूँ।"[285]

कृष्ण के समान राधा भी अपूर्व सुन्दरी है। वयस यौवन के उभार पर दूध साश्वेत शरीर, रति मानो संसार के समस्त सौन्दर्य से प्रफुल्लित होकर उसी एक रमणी में साकार हो गई हो। वर्णनानीति सौन्दर्य शैशव का भोलापन समुद्र से

गाम्भीर्य, पर्वत सी स्थिरता और नदी का सा वेग होने पर भी शान्त। यह उसका रेखा चित्र है। उसका रूप सौन्दर्य भोलापन सब स्तुल्य है। निष्कपट हृदय जिसमें कोई विकार नहीं। केवल प्रिय में एकाकार होने की लालसा है।''[286]

प्रारम्भ में राधा एक सामान्य नारी के रूप में आई है। जो कृष्ण के रूप पर आसक्त होकर उनमें प्रेम करने लगती है। धीरे धीरे उसके प्रेम का उदात्तीकरण होता है। वही प्रेम आगे भक्ति में बदल जाता है। 'हम क्यों न पिएँ छल छल करता जीवन का पारावार सखे' कहने वाली राधा जब यह कहती है कि चाहिए मुझको न कुछ भी प्रेम का प्रतिपादन उनसे' आँसू की सरिता में नाव खेता' उसका जीवन उसे एक ऐसी विरोहनी बना देता है, जिसका स्वर्ग श्रद्धा से सूना' होने पर भी सात्विकता से पूरित है। अन्ततः राधा प्रेम, त्याग और सात्विकता का प्रतीक बन जाती है।

विशाखा राधा की सखी और कृष्ण की प्रेमिका है लेकिन दोनों में ईर्ष्या और सौतिया डाह नहीं। वह कृष्ण से प्रेम करने के कारण दण्डित हो चुकी है। उसे अन्न जल दिए बिना अन्धेरी कोठरी में बन्द रखा गया, कोणों की मार लगाई गई लेकिन फिर भी वह प्रेम पथ से विचलित नहीं हुई। वह भी सच्ची सखी, प्रेमिका और भक्त है।

नारद भक्ति का अहंकार है। जिस प्रकार सूर के उद्धव को ज्ञान का घमण्ड है, उसी प्रकार भट्ट जी के नारद को भी भक्ति का दम्भ है। नारद परम्परा से फूट डालने वाले और लड़ाई कराने वाले माने जाते रहे है। यहाँ भी वे इसी रुप में आये है। अन्त में उनका शुद्ध भक्त रूप प्रस्फुटित हुआ है।

कथोपकथन– 'राधा' के कथोपकथन विश्वामित्र और मत्स्यगन्धा की भाँति ही लम्बे और हृदय के संघर्ष को वाणी देने वाले हैं। 'राधा' के संवादों की एक विशेषता यह है कि इसमें सम्वादों के अन्तगर्त सम्वाद आये हैं। यथा विशाखा

के सन्दर्भ में।''[287]

इसमें विशाखा, कृष्ण और यशोदा का वार्तालाप प्रस्तुत किया गया है। सम्वादों में न तो क्षिप्रता है और न नाटकीयता। दो एक स्थान को छोड़कर कहीं भी संक्षिप्त संवाद नहीं आये, ऐसा प्रतीत होता है जैसे पात्रों को घण्टों बोलने की आदत पड़ गई हो। 'राधा' का सफल अभिनय किया जा सकता है। लेकिन मंच पर प्रस्तुत करने के लिये पर्याप्त परिवर्तन करने होंगे। प्राकृति सैटिंग, कोरस, वंशीवादन के माध्यम से प्रभाव साम्य स्थापित किया जा सकता है। यही शिल्प–विधि 'मत्स्यगन्धा में भी अपनायी गई है। लेकिन नाट्कीय उतार–चढ़ाव जितना सुन्दर मत्स्यगन्धा में है उतना इसमें नहीं।

अश्वत्यामाः (उदय शंकर भट्ट)– महाभारत का अश्वत्थामा वीरता, क्रूरता और प्रतिहिंसा का प्रतीक रहा हैं एक ज्ञानवान पण्डित व्यक्ति हीनतत्व कुंठा से ग्रसित होकर कितना नीचे गिर सकता है, यही दिखना 'अश्वत्थामा' का उद्देश्य है। 'अश्वत्थामा' का कथानक मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर आधारित है।

'अन्धायुग' के अश्वत्थामा के समान ही भट्ट जी का अश्वत्थामा भी प्रतिहिंसा और ईर्ष्या की अग्नि में जल रहा है। वह प्रतीक है क्रूरता का घृणा का, विकृति का। उसी के शब्दों में –

''मैं अपूर्ण असहिष्णु, ईर्ष्या से जलता मन
मुग्ध हूँ विनाश पर मानव के त्रास पर।''[288]

और

''जीवित ही प्रेत हूँ मैं जीवित ही राक्षस
विकृति घृणा पुंज कुंज अघ किल्विषी।''

महाभारतोत्तर कोल में महाभारत की घटनाओं का स्मरण कर अश्वत्थामा सिहर उठता है। उसे वह घटना याद आ जाती है जब कि युद्ध के पश्चात

कृपाचार्य, कृतवर्मा पराजय के घूँट पी रहे थे। उसे लगता है जैसे पाण्डव धर्म से अधर्म से विजयी हुए है। द्रोण, कर्ण दुर्योधन आदि महावली अधर्म से मारे गये है। यह सोचकर उसका तन और मन प्रतिहिंसा से जल उठता है। अश्वत्थामा के विचार में राज्य का वास्तविक अधिकारी ज्येष्ठ होने के नाते धृतराष्ट्र और उनका पुत्र दुर्योधन ही था, फिर पाण्डवों को यह आधा राज्य क्यों देता है। उसके मन में बार–बार प्रतिशोध की अग्नि धधक उठती है। गहन अन्धकार में भी उसे नींद नहीं आती।

वह छल का बदला छल से लेने को तैयार हो जाता है। कृतवर्मा और कृपाचार्य इसे अधर्म कहकर उसे रोकते हैं। लेकिन अश्वत्थामा के विचारों में युधिष्ठिर ढोंगी है। जो जुआ खेले, अपनी पत्नी का दाँव लगाये, अर्द्ध सत्य बोले वह धर्मराज नहीं हो सकता, वह चिल्ला उठता है–

"जाग प्रतिहिंसा जाग, जाग प्रतिशोध जाग

जाग वक्र बोध जाग, जाग मेरे क्रोध जाग।"[289]

अन्त में नीरव निशा में अश्वत्थामा पाण्डव शिविर मे पहुँकर पाण्डव पुत्रों का वध कर देता है। धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और युधामन्यु आदि अनेक वीरों की भी वह हत्या कर देता है। मानसिक द्वन्द्व और क्रियात्मक द्वन्द्व दोनों ही अश्वत्थामा को देखने को मिलते है। असत् से प्रभावित अश्वत्थामा अन्त में उससे घृणा कर उठता है। यह प्रतिहिंसा पर हिंसा की विजय है। असत्य पर सत्य की विजय है। 'अश्वत्थामा' नाटकीय गुणों से परिपूर्ण है। वह वास्तव में प्रतीक है उस युग का जिसमें क्रूरता हिंसा, छल और कपट निर्वाध विचरण कर रहे थे। 'अश्वत्थामा की भाषा भाावानुकूल और प्रसंगानुकूल है।

सामान्य विशेषताएँ– भट्ट जी के समस्त गीतिनाट्यों में मानव मनोधिकार और द्वन्द्व के दर्शन होते है। आपके गीतिनाट्यों की प्रमुख विशेषता प्रकृति के

माध्यम से मनोविकारों को मूर्त रूप प्रदान करता है। प्रकृति के माध्यम से अहं, पराहम, आदि को चित्रित किया गया है। भट्ट जी के गीतिनाट्यों की दूसरी विशेषता यह है कि उनमें काव्य तत्व और गीतात्मकता की प्रधानता है और नाट्य तत्व गौण है। कहीं–कहीं नाटकीयता को काव्य की बोझिलता ने दबा लिया है।

यद्यपि भट्ट जी का विचार है कि उनके गीतिनाट्यों का अभिनय किया जा सकता है, लेकिन उसके लिए पर्याप्त हेर फेर करना होगा। दूसरे सात्विक तत्वों के अभिनय के लिए सफल अभिनेता की भी आवश्यकता होगी। लेकिन कुल मिलाकर इन गीतिनाट्यों में अभिनेयत्व के तत्व कम हैं।

भट्ट जी के गीतिनाट्यों की चौथी प्रमुख विशेषता अनतःसंघर्ष की है। उनके गीतिनाट्यों में वाह्य संघर्ष और क्रियात्मकता का आभाव और मानसिक द्वन्द्व की प्रधानता है। कहीं–कहीं तो इसका प्रसार इतना अधिक है कि सम्पूर्ण गीतिनाट्य उसी से आच्छादित हुआ सा प्रतीत होता है।

भट्ट जी के गीतिनाट्यों में भावात्मकता की प्रधानता है। अतिशय भावुकता को देखते हुए ही अपने भावनाट्य की संज्ञा दी है। भावना के समक्ष विचार पक्ष को महत्व नहीं मिल सकता। बौद्धिक वाक् विलास, शुष्कता और नीरसता उनमें नहीं है। सर्वत्र रमणीयता और वसन्तीय कमनीयता से गीतिनाट्य आप्लावित है। उनमें पाषाण हृदय को मंजल भावना से पिघला देने की क्षमता है।

भट्ट जी किसी वाद या सिद्धान्त विशेष में बँधकर नहीं चले। उनके किसी भी गीतिनाट्य में किसी सिद्धान्त विशेष का प्रतिपादन नहीं हुआ न तो उनमें पन्त जी का चिन्तन है और न भगवतीचरण वर्मा नैराश्य। उनमें तो हृदय की सहजता है। व्यक्ति के मन और द्वन्द्व का विश्लेषण ही उनका विषय है, जिसे मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर प्रस्तुत किया गया है। उनके सूक्ष्म मानसिक चित्रों में प्रभावोत्पादकता और मर्मस्पर्शिता है। उनकी भाषा और शिल्प में स्पष्टता और प्रेषणीयता है। भट्ट

जी का स्थान गीतिनाट्यों के इतिहास से सर्वोपरि है। वास्तव में उन्हें लोकप्रियता और आकर्षण का केन्द्र बिन्दु बनाने का श्रेय भट्ट जी को ही है। मत्स्यगन्धा, राधा और विश्वामित्र उनके महान गीतिनाट्य हैं जिनके माध्यम से वे मानव के मन में गहरे पैठ गये हैं।

अंधा युग : (धर्मवीर भारती)—धर्मयुग के अधुना सम्पादक धर्मवीर भारती ने गीतिनाट्य के क्षेत्र में स्तुत्य सफलता प्राप्त की है। उनका 'अंधायुग' हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। अंधायुग से पूर्व के गीतिनाट्य या तो एकांकी थे अथवा उनमें वह व्यापकता नहीं आने पाई थी। अथवा उनमें वह व्यापकता नहीं आने पाई थी जो गीतिनाट्यों के लिए अपेक्षित होती है। 'अंधायुग' प्रथम ऐसा गीतिनाट्य है जो गीतिनाट्य की कसौटी पर पूर्णतः खरा उतरता है।

'अंधायुग' में महाभारत के अठारहवें दिन की संध्या से लेकर प्रयास तीर्थ में कृष्ण की मृत्यु के क्षण तक की प्रख्यात कथा अंकित की गई, किन्तु कुछ प्रसंग उत्पाद्य भी हैं। लेखक ने स्वकल्पित पात्र एवं घटनाओं का भी वर्णन किया है। प्रख्यात कथा के संयोजन में जहाँ एक ओर महाभारत का आश्रय लिया गया है, वहीं विष्णु पुराण से भी सहायत ली गई है। इस पर इलियट की 'वैस्टलैण्ड' कविता का भी प्रभाव पड़ा है। 'वैस्टलैण्ड' में महायुद्धोत्तर योरोप की ध्वंस युगीन निराशा और विध्वंस को प्रतीकात्मक पद्धति पर चित्रित किया गया है। जिस प्रकार वैस्टलैण्ड का टाइरेशियस अंधा है, उसी प्रकार अंधायुग के धृतराष्ट्र। यहाँ 'वैस्लैण्ड' के आर्य दृष्टा का काम 'व्यास' करते हैं। इसमें जिस प्रकार अंध आस्थाहीन मानव संस्कृति की आलोचना की गई है, उसी प्रकार अंधायुग में भी।"[290] 'वैस्लैण्ड' में जिस प्रकार यंग्य विश्वास वर्णित है उसी प्रकार अन्धायुग में भी है। हाँ अन्धायुग में भी भारती आस्थावादी है ईलियट नहीं। मानव समाज का विद्रुप चित्रण यथार्थवादी लेखकों के अति निकट है। यथार्थवादी लेखकों ने

असुन्दर तथा कुण्ठा, मनोदौर्बल्य और आत्महन्तामयी निराशा का खुलकर चित्रण किया है। सात्रे के 'लमोचे' नामक नाटक में इसी प्रवृति के दर्शन होते है। 'अन्धायुग' में सात्रे के अस्तित्ववाद की स्पष्ट झलक दिखाई देती है। जिस प्रकार सात्रे न रक्त रंजित दीवालों और शोकपूर्ण नारियों का चित्रण किया है, उसी प्रकार अंधायुग में भी जघन्यता का वर्णन है।[291]

विषय– 'अन्धायुग' की कथावस्तु उस मर्यादाहीन युग से सम्बन्धित है, जिसमें कुण्ठा, निराशा, विकृति, कुरुपता और अंधापन अपने पूर्ण अंगो के साथ अवतरित हुए थे। भारती जी का प्रधान उद्देश्य इसी विकृति का चित्रण करना रहा हैं–

"युद्धोपरान्त
यह अन्धायुग अवतरित हुआ
जिसमें स्थितियाँ, मनोवृत्तियाँ, आत्माएँ सब विकृत हैं
है एक बहुत पतली डोरी मर्यादा की
पर वह उलझी है, दोनों ही पक्षों में
(सिर्फ कृष्ण में हैं साहस सुलझाने का)
वह है भविष्य का रक्षक, वह है अनासक्त
शेष अधिकतर है– अंधे
पथ भ्रष्ट, आत्महारा, विगलित
अपने ही अन्तर की अंध गुफाओं के वासी
यह कथा ज्योति की है अंधों के माध्यम से।"[292]

लेखक ने ऐतिहासिक तथ्यों, कल्पना जीवन–दर्शन और चिन्तन को अपने ढंग से संजोया सम्भाला है। महाभारत कालीन दयनीय स्थिति के अतरिक्त युद्ध के भीषण समस्याओं को भी उठाया है। इसमें युद्ध के कारणों पर प्रकाश नहीं

डाला गया। क्योंकि यह कथा युद्धोपरान्त की है। अतः युद्ध के परिणामों और तज्जनित स्थितियों वृत्तियों और प्रतिक्रियाओं का यथार्थ चित्रण हुआ है। नन्ददुलारे बाजपेयी के विचार से कवि की विचारधारा वास्तविकता और सत्य से परे है उसे सच्चाई और औचित्य कहीं नजर नहीं आता। कवि का दृष्टिकोण सर्वत्र निषेधात्मक है।''[293]

युद्ध के परिणामों पर प्रकाश डालते हुए लेखक ने वर्तमान आणविक आयुधों की भीषणता को प्रदर्शित किया है–

''ज्ञात है तुम्हें परिणाम इस ब्रह्मास्त्र का

यदि यह लक्ष्य सिद्ध हुआ ओ नर पशु

तो आगे आने वाली सदियों तक

पृथ्वी पर रसमय वनस्पति नहीं होगी

शिशु होंगे पैदा विकलांग और कुष्टग्रस्त

सारी मनुष्य जाति बौनी हो जायेगी।''[294]

युद्ध जनित क्रन्दन, हा हा कार, चीख पुकार, विकृति आदि का वर्णन व्यापक रूप से किया गया है। युद्ध के पूर्व जो कौरव नगरी अपने सौन्दर्य और गौरव के लिए प्रसिद्ध थी, जहाँ राग और रस अनवरत अपना आंचल फैलये–नर–नारियों को तृष्णा की भूमि से तृप्ति के स्वर्ग की ओर ले जाते थे, जहाँ युद्धोपरान्त गिद्ध मंडरा रहे है। सम्राटों का अधिपति दुर्योधन असहाय सा निराश्रित सा विचर रहा है। पैर फट गये है, वस्त फट गये है, रक्त प्रवाहित हो रहा है''[295] और दो खूँखार गिद्ध उसको खाने के लिए लोलुप दृष्टि से देख रहे हैं, भेड़िये लपाकर घूम रहे है–

''कोटर से झाँक रहे थे

दो खूँखार गिद्ध

इस झाड़ी से उस झाड़ी में ये

घूम रहे

गीदड़ और भेड़िये

जीभें निकाले

लोलुप नेत्रों से देखते हुए अपलक

राजा दुर्योधन को।''[296]

वीरता और शौर्य के प्रतीक दुर्योधन को खा जाने के लिए गीदड़ और भेड़िया देखें इससे बड़ी विडम्बना और दुख की क्या बात हो सकती है। अंधायुग की समस्या युद्ध की समस्या है। उसमें जो कुछ सुन्दर और शुभ नगरी के जिन रत्न जटित फर्शो पर कौरव बधुएँ मंथर गति से चलती थीं, वे अब निस्सहाय विधवा होकर निराशा का जीवन व्यतीत कर रही हैं।''[297]

कोसों तक मैदान सड़ी–गली लाशों से पट गया। जिधर देखो धुँआ, लपट, लौथे, घायल घोड़े, टूटे रथ, रक्त भेद, मज्जा, मुण्ड ही दिखाई देते–

''धुआँ लपट, लौथें, घायल घोड़े, टूटे रथ

रक्त, भेद, मज्जा मुंड

खण्डित कवन्धों में

टूटी पसलियों में

विचरण करता था अश्वत्थामा।''[298]

सारी मानवता भूखी नंगी हो गई है। आत्मघाती नंपुसक, हसोन्मुख प्रवृत्ति उभरकर सामने आई है और संस्कृत नष्ट हो गई है।

कवि ने युद्ध की भयानकता को बढ़ाने के लिए भयानक वातावरण की सृष्टि की है। दुर्योधन के पतन के बाद मँडराते हुए गिद्धों का निकलना ऐसा लगताहै जैसे मौत ऊपर से निकल गई हो। न जाने वे किसको लोथों पर जाकर उतरेगे–

"जाने किसकी लौंथो पर जा उतरेगा

यह नर भक्षी गिद्धों का भूखा बादल।"[299]

युद्ध के पश्चात के वातावरण का भयानक वर्णन प्रहरियों ने अनेक कपोल कल्पित कथाओं के रूप में किया है, जैसे कंकड़ पत्थर की वर्षा, सूरज में मुण्डहीन काले कबन्धों का हिलना, द्वारका में आधी रात को काला पीला वेष धारण किये काल का घूमना, उसका सहसा अंधड़ में गायब हो जाना, वाणों का असर न होना"[300] आदि।

इसी प्रकार वन–दावाग्नि के समान धूमकेतुओं का घिरना[301] धधकते हुए बरगद के गिरने से गांधारी धृतराष्ट्र की मृत्यु[302] जलती शाखा के गिरने से संजय का झुलस जाना[303] आदि दृष्य भी भंयकरता लाने में सहायक हुए है।

कथानक : सामान्य परिचय–'अंधायुग' का सम्पूर्ण कथानक पाँच अंको में विभक्त है जिन्हें प्रतीकात्मक शीर्षकों द्वारा नामांकित किया गया है जैसे पहला अंक–कौरव नगरी, दूसरा अंक–पशु का उदय, तीसरा अंक–अश्वत्थामा का अर्द्ध, अन्तराल–पंख, चाहिये और पट्टियाँ, चौथा अंक–गांधारी का शाप, पाँचवा अंक–विजय एक क्रमिक आत्महत्या आदि। प्रारम्भ में स्थापना और अन्त में समापन है।

धृतराष्ट्र प्रथम बार यह अनुभव करते हैं कि मेरे वैयक्तिक मानदण्डों के कारण ही मर्यादा नष्ट हुई है। मेरे अंधत्व ने ही राष्ट्र को युद्ध की विभीषिका में डाला। किन्तु गांधारी उसका प्रतिवाद करती है। वह कहती है कि मैने कहा था कि जिधर धर्म होगा उधर ही जय होगी पर धर्म किसी ओर नहीं रहा–

"धर्म किसी ओर नहीं था

सब ही थे अंधी प्रवृत्तियों से परिचालित।"[304]

द्वितीय अंक फिर कथा गायन से प्रारम्भ होता है जिससे संजय का पिरचय दिया गया है इसमें अश्वत्थामा का पश्चाताप और फिर उसकी भंयकर प्रतिहिंसा

और पशुत्व का चित्रण है। लेखक ने इस अंक का नाम भी 'पशु का उदय' रखा है। पागलपन में अश्वत्थामा एक निरपराथ युद्ध वाचक की हत्या कर देता है। इसी अंक में यह सूचना मिलती है कि कौरव पक्ष में केवल तीन वीर ही बचे है–अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कृतवर्मा और दुर्योधन तालाब में छिप गया है।

तृतीय अंक में धृतराष्ट्र की व्यग्रता और अश्वत्थामा, की विकृति का सुन्दर चित्रण हुआ है। अंक के प्रारम्भ में पाण्डवों की ओर से लड़ने वाले युयुत्स और गूँगे सैनिक के माध्यम से आज का परमाणु युग का चित्रण किया गया है। उसके बाद अश्वत्थामा की मनोदशा और प्रतिशोध का वर्णन है। रंग निर्देश में कौवे और उलूक की लड़ाई और उससे अश्वत्थामा की प्रेरणा का बड़ा ही मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। वह निश्चय कर लेता है कि जिस प्रकार युधिष्ठर ने अर्द्धसत्य बोलकर मेरे पिता द्रोण की हत्या की है, उसी प्रकार धोखे से मैं भी पाण्डवों को उत्तरा की ओर धृष्टद्युम्न को नहीं छोड़ूँगा।

इसके बाद अन्तराल है। इसमें युयुत्स, संजय और विदुर को बड़ी ही नाटकीय एवं प्रतीकात्मकता के साथ छाया रूप में उतारा गया है जो 'मूल्य हीनता' के लिए स्वयं अपने को उत्तरदायी मानते है। पूरा अन्तराल एक लम्बी कविता के रूप में है।

चतुर्थ अंक में अश्वत्थामा के भीषण नर संहार का वर्णन संजय द्वारा कराया गया है। धृष्टद्युम्न के वध का एक वर्णन देखिए–

"बिजली सा झपट, खीचकर शैया के नीचे
घुटनों से दाब दिया उसको
पुंजो से गला दबोच दिया
आँखो के कोटर से दोनो साबित गोले
कच्चे आमों की गुठली जैसे उछल गए

खाली गड्डो में काला लोहू उबल पड़ा।"[305]

इसके बाद शतानीक, शिखण्डी का वध और अनेक स्त्री बच्चों का बध होता है। इस नर संहार से गंधारी प्रसन्न है। प्रसन्न क्यों न हो। जो उसके सौ पुत्रों ने न कर पाया, द्रोण नहीं कर पाये, भीष्म नहीं कर पाये, वह अश्वत्थामा ने कर दिखाया। इसी बीच दुर्योधन सांस तोड़ देता है। इसके बाद सभी मृतकों का तवर्ण करने के लिये कौरव नगरी छोड़कर चल देता है। कथा गायन में उनका वर्णन कहता हुआ लेखक कहता है–

"वे छोड़ चले कौरव नगरी को निर्जन
वे छोड़ चले वह रत्न जटित सिंहासन
आगे रथ पर कौरव विधवाओं को ले
है चली जा चुकी कौरव सेना सारी
पीछे पैदल जाते है शीश झुकाए
धृतराष्ट्र युयुत्स, विदुर, संजय, गांधारी।"[306]

युयुत्स को मार्ग में ही छोड़कर सभी जंगल की ओर प्रस्थान करते है। यहाँ उन्हें दावाग्नि घेर लेती है। इसके बाद अश्वत्थामा द्वारा ब्रह्मास्त्र प्रयोग और उसमे जनित परिणामों का बड़ा ही हृदय विदारक वर्णन है। अश्वत्थामा यह ब्रह्मास्त्र उत्तरा के गर्भ को खण्डित कर देता है किन्तु कृष्ण उसे पुनः जीवन दान दे देते हैं, यही नहीं वे अश्वत्थामा के कुकृत्य से क्रुद्ध होकर उसे भ्रूण हत्या का श्राप दे देते है, जिसके फलस्वरूप अश्वत्थामा के सारे शरीर में फोड़े, घाव, पीप से, भर जाते है और वह रौरव पीड़ा भोगने लगता है।

इसी अंक में गांधारी अपने पुत्र के कंकाल को देखकर कृष्ण को शाप देती है कि तुम्हारा सारा वंश पागल कुत्तों की तरह एक दूसरे को फाड़ खायेगा और तुम स्वयं साधारण व्याध्र के हाथों मारे जाओगे। कृष्ण इस शाप को स्वीकार कर

लेते है, जिस क्षण से कृष्ण शाप स्वीकार करते है उसी क्षण से युग की मर्यादा निष्प्राण हो जाती है। पंचवें अंक में युद्धोपरान्त की निराशा का वर्णन है। गांधारी आदि दावाग्नि में जल मरते है। प्रजा में भय छा जाता है। ''समापन' में प्रभु की मृत्यु का करुण वर्णन है। जिसके बाद अश्वत्थामा में आस्था जाग्रत होती है। वह कृष्ण का प्रशंसक बन जाता है। व्याघ्र के द्वारा नाटक के अंत में कृष्ण का यह संदेश देते हैं–

''सब का दायित्व मैंने अपने ऊपर
अपना दायित्व सौंपे जाता हूँ मैं सबको।''

कवि का मत है उस दिन जो अंधायुग अवतरित हुआ था वह अभी बीता नहीं है। आज हर क्षण प्रभु की मृत्यु हो रही है। वह आशा करता है–

''उतना जो अंश हमारे मन का है
वह अर्द्ध सत्य से, ब्रह्मास्त्रों से
मानव भविष्य को हर दम रहे बचाता
अंधे, संशय,दासता, पराजय से।''[307]

चरित्रांकन–'अंधायुग' के कुल मिलाकर छोटे बड़े सोलह पात्र है। इनमें से गांधारी को छोड़कर शेष समस्त पुरुष है। गांधारी के अतिरिक्त यद्यपि अप्रत्यक्ष रूप से कुन्ती, उत्तरा, कौरव विधवाओं और पाण्डव शिविर में विद्यमान स्त्रियों का उल्लेख किया गया है।[308] किन्तु इनकी चरित्र रेखाओं को नहीं उभारा गया। यद्यपि कौरव विधवाओं को जाते हुए प्रदर्शित किया है, किन्तु इनमें से किसी के भी संवाद नहीं है।

पुरुष पात्रों में वृद्ध वाचक, गूँगे, सैनिक और प्रहरियों को छोड़कर शेष समस्त पात्र पौराणिक ऐतिहासिक है। वृद्धवाचक को लेखक ने 'जरा' नाम व्याघ्र के साथ सम्बन्धित कर दिया है और उसे वृद्ध याचक की प्रेत–काया मान लिया।

कृष्ण के वधकर्ता का नाम 'जरा' था ऐसा भागवत में भी मिलता है, लेखक ने उसे वृद्ध की प्रेत–काया मान लिया है।[309]

वास्तव में गूँगे सैनिक, प्रहरियों और याचक के व्यक्तित्व कल्पति तथा प्रतीकात्मक है। जिनका बड़ी ही पटुता से नाटक में समावेश किया गया है। पौराणिक ऐतिहासिक पात्रों को महत्व की दृष्टि से दो भागों में बाँटा जा सकता हैं–1. प्रधान पात्र 2. अप्रधान पात्र। प्रधान पात्रों में अश्वत्थामा, कृष्ण, धृतराष्ट्र, युयुत्स, विदुर, संजय, और गांधारी के नाम आते है और अप्रधान पात्रों में कृपाचार्य, कृतवर्मा, बलराम, युधिष्ठिर आदि आते है। पात्रों के चरित्र को उभारने उन्हें अभिव्यक्ति देने और उनके मनोवृत्ति का विश्लेषण करने के लिये चार पद्धतियाँ अपनाई है।

1. पात्र विशेष की स्वयं की उक्तियों द्वारा चरित्र की अभिव्यंजना–पात्रों के स्वयं के कथोपकथनों द्वारा उनके चरित्र पर प्रकाश पड़ता है–यथा धृतराष्ट्र की विवशता का भान उनके इस कथन से होता है–

"समझ नहीं सकते हो विदुर तुम

मैं था जन्मान्ध

कैसे कर सकता था

गृहण में

बाहरी यथार्थ या सामाजिक मर्यादा को?[310]

2. दूसरे पात्र द्वारा प्रकाश– पात्रों के आपसी वार्तालाप में दूसरे पात्रों के चरित्र पर भी प्रकाश डाला है यथा– अश्वत्थामा के प्रति गांधारी का यह कथन–

"किन्तु वीर है

उसने यह किया है

जो मेरे सौ पुत्र नहीं कर पाये

द्रोण नहीं कर पाये

भीष्म नहीं कर पाये।"[311]

3. कवि द्वारा अपनी ओर से चरित्र विश्लेषण– साधारणतः नाटक में इस पद्धति का प्रयोग नहीं होता, क्योंकि लेखक को स्वयं कुछ भी कहने का अवसर नहीं मिलता, किन्तु अन्धायुग में कथा गायन के कारण यह सम्भव हो सकता है यथा–

"थे भीम बुद्धि से मंद, प्रकृति से अभिमानी

अर्जुन थे असमय वृद्ध, नकुल थे अज्ञानी।"[312]

4. रंग निर्देश के माध्यम से– दो एक स्थान पर रंग निर्देश के माध्यम से भी पात्रों के चरित्र और मनोदशाओं को उभारा गया है। यथा–युयुत्स के इस वर्णन में 'युयुत्सु अर्द्ध विक्षिप्त की सी करुणोत्पादक चेष्टाएँ करता हुआ दूसरी ओर निकल जाता है।"[313]

अश्वत्थामा– 'अंधायुग' का सबसे महत्वपूर्ण, क्रियाशील और मुखरपात्र है। महाभारत युद्ध में शेष बचे वीरों में वह सबसे अधिक भावुक प्रबुद्ध और स्वाभिमानी है। वह आधुनिक मानव की परिस्थितियों का जीवत प्रतीक है, जो अपने शरीर पर अगणित घाव लिए युग युगान्तर तक जीने के लिए अभिशप्त है। उसके सर्वप्रथम दर्शन द्वितीय अंक में होते है। वह दुर्योधन और पिता की मृत्यु से विक्षिप्त सा हो गया है। युद्ध में युधिष्ठिर के अर्धसत्य और भीम के नियमोलंघन से उसका हृदय टूट गया है। परिणाम स्वरूप वह बर्बर बन जाता है। महाभारत का समस्त अनैतिकता उसमे पूँजीभूत हो गई है। वह सामान्य मानसिक स्थिति में न रहकर बहुत कुछ असामान्य हो गया है। भारती जी ने उसके धनीभूत क्षणों को काव्यत्वों से सन्निविष्ट सर अभिव्यक्ति दी है।"[314]

वह सोचता है कि जब दो ही मार्ग है कि या तो आत्मघात कर लूँगा फिर

बध केवल बध को जीवन का उद्देश्य मानकर हत्याएँ करना प्रारम्भ करूँ। वह द्वितीय को अपना लक्ष्य चुनता है और प्रतिशोध की उत्कृष्ट इच्छा उसे हिंसक, क्रूर और निर्दय बना देती है। बध उसके लिए नीति न रहकर मनोग्रन्थि मिल जाती है।"[315] वह पागल बन जाता है। जहाँ भी उसे अवसर मिलता है, वह हत्या पर उतारू हो जाता है। वध उसका धर्म है, प्रतिहिंसा उसकी प्रेरणा है, क्रूरता उसकी सहचरी है, घृणा उसका तर्क है।"[316] महाभारत की सारी अनीति, अमर्यादा, पशुता, बर्बरता, का वह प्रतीक बन जाता है।"[317]

इसका अभिप्राय यह नहीं कि वह सदा से ही क्रूर था। अपने जीवन के प्रारम्भिक दिनों में वह कोम प्रकृति का युवक था। लेकिन महाभारत के छल, कपट और द्वेश उसे क्रूर धर्मा बना देता है। मानसिक संवेगों के वशीभूत होकर वह वृद्ध याचक की हत्या कर देता है। उत्तरा के गर्भ पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करता है और अपने ही मित्र कृतवर्मा का वध करने को तैयार हो जाता है।"[318]

वह एक स्वामिभक्ति सेवक है। दुर्योधन के प्रति उसकी अनन्य निष्ठा है। उसकी पराजय पर वह अपना धनुष तोड़ देता है और अपने को नपुंसक तक कह देता है इसी अनन्यता के कारण मरणासना दुर्योधन को वचन देता है कि वह उसका प्रतिशोध लेगा।"[319]

वह स्पष्ट वक्ता है। वह कृष्ण के कपट पूर्ण व्यवहार की स्पष्ट आलोचना करता है–

"पूरे पाण्डव वंश को

निर्मूल किए बिना शायद

युद्ध लिप्सा

नहीं शान्ति होगी कृष्ण की।"

'अंधायुग' में अश्वत्थामा का क्रूर रूप ही अधिक उभरा है। दूसरे को दुखी

और छटपटता देखकर जैसे उसे आनन्द आता है। वह उसकी आँखों को फोड़ देता है फिर उसके धर्म स्थलों को चूर चूर कर देता है। तभी तो व्यास उसे नराधम कहते है और लेखक ने 'पशु का उदय' शीर्षक देकर उसे पशु की संज्ञा दी है। 'अंधायुग' में अश्वत्थामा के दूसरा महत्वपूर्ण व्यक्तित्व का है। महाभारत में उसे ऐसी पतिव्रता स्त्री के रूप में चित्रित किया गया है जो पति के समान स्वयं भी आँखों पर पट्टी बँधकर दृष्टि सुख से वंचत कर लेती है। फलस्वरूप उसमें वह शक्ति आ गई कि जिस पुरुष को वह आँखे खोलकर देख ले उसकी काया पत्थर हो जाऐ। जहाँ महाभारत में उसने दुर्योधन की काया को पत्थर की बनाया है। वहाँ अंधायुग में अश्वत्थामा को अमर बना दिया है।''[320]

वह महाभारत की सबसे दुखी नारी है। दुःखी भी क्यों न हो ? जिसके सौ पुत्र एक–एक कर सत्रह दिन में मार डाले जायें उसकी ह्रदय की पीड़ा भी वही जान सकती है। वह स्वयं कहती है–

''सत्रह दिन के अन्दर

मेर सब पुत्र एक–एक कर मारे गए।

अपने इन हाथों से

मैंने उन फूलों सी बधुओं की कलाइयों से

चूणियाँ उतारी है

अपने इस आंचल से

सेंदुर की रेखाएँ पोंछी हैं।''[321]

गांधारी संतुलन खो बैठती है। उसमें क्रूरता और प्रतिशोध की भावना घर कर लेती है। वह समस्त कार्यों के लिए कृष्ण को उत्तरदायी मानती है और उन्हें वंचक कहती है क्योंकि उन्होंने मर्यादा को अपने हित के अनुसार बदला है, तोड़ा, मरोड़ा है। वह ह्रदयहीन हो जाती है। धृष्टद्युम्न की हत्या और पाण्डव नारियों के

क्रंदन से भी उसका हृदय नहीं पसीजता। अपने पुत्र दुर्योधन के कंकाल को देखकर वह संतुलन खो बैठती है और कृष्ण को शाप देती है कि–

"तो सुनो कृष्ण

प्रभु हो या पत्थर हो

कुछ भी हो

सारा तुम्हारा वंश

इसी तरह पागल कुत्तों की तरह

एक दूसरे को परस्पर फाड़ खायेगा।

तुम खुद उनका विनाश करके कई वर्षों बाद

किसी घने जंगल में

साधारण व्याध के हाथों मारे जाओगे।"[322]

वह एक ऐसा ज्वालामुखी बन जाती है, जो विध्वंस को तत्पर है। आवेश और आक्रोश के वशीभूत होकर वह अपने एक मात्र शेष बचे पुत्र युयुत्सु का तिरस्कार कर बैठती है । वह पूछती है–"भुजायें तुम्हारी थकी तो नहीं, अपने बन्धुजनों को बध करते करते।"[323]

वह उसके लिए निराशा, कटुता और पुत्रहीनता को उत्तरदायी बताती है–

"कर देते शाप यह मेरा तुम अस्वीकार

तो क्या मुझे दुख होता

मैं थी निराश मैं कटु थी

पुत्रहीना थी।"[324]

गांधारी तेजस्वी नारी है। कृष्ण उसे माँ के रूप में देखते है और उसका आदर करते है। युयुत्सु उसकी तेजस्विता के सम्मुख उसके सामने आने में हिचकता है। वास्तव में गांधारी स्वाभिमानी नारी है और जब उसके स्वाभिमान को

ठेस लगती है, तभी वह आक्रोश में भर जाती है। महाभारत की पति परायण नारी को जो वाणी दी है, वह वास्वत में स्तुत्य है।

धृतराष्ट्र का व्यक्तित्व गांधारी की तुलना में कम उभरा है। लेखक ने उन्हें तेजयुक्त न दिखाकर एक ऐसे राजा के रूप में प्रदर्शित किया है, जो अंधेपन के कारण अपने को विवश मानता है। उनके विचार से युद्ध का मूल का कारण उनका अंधत्व और अदूरदर्शिता ही रहे है। युद्ध के अन्तिम दिन वह अनुभव करते है कि कौरवों के प्रति मेरी ममता ने ही यह सब विध्वंश किया है। उनकी वैयक्तिकता ही महाभारत का कारण बनी–

"आज मुझे भान हुआ

मेरी वैयक्तिक सीमाओं के बाहर भी

सत्य हुआ करता है।"

धृतराष्ट्र की पुत्रों के प्रति ममता और पक्षपात गांधारी से कहीं अधिक है। उनमें महत्वाकांक्षा बहुत अधिक है। संजय द्वारा यह जानने पर कि अश्वत्थामा ने उत्तरा के गर्भ को नष्ट कर दिया है, तो उनमें उत्साह आ जाता है।

कृष्ण– अनासक्त नियति के नियामक है। अंधायुग में वे प्रत्यक्ष तो कम ही आये है लेकिन उनका प्रभाव सर्वत्र परिलक्षित होता है। रामस्वरूप चतुर्वेदी के शब्दों में – "कृष्ण, जो मानवीय आचरण की जटिलतम मर्यादा के मर्मज्ञ थे, इस दृश्य काव्य के केन्द्रस्थ पात्र है। जो सभी पात्रों और परिस्थितियों पर छाये रहते है।"[325]

युधिष्ठिर– युधिष्ठिर का गौरव अर्धसत्य के आस–पास चक्कर लगाता है। उनके अर्द्ध सत्य को लेखन ने आलोचना लक्ष्य बनाया है। युयुत्सु युद्ध की विभीषिकाओं से त्रस्त, भयग्रस्त युवक है। उसने सत्य का अनुशरण किया है, लेकिन उसके कारण उसे अपनों से ही तिरस्कार और घृणा मिली। स्वयं उसकी

माँ उसे नहीं देखना चाहती। गांधारी के व्यंम्यवाण उसके ह्रदय को तोड़ देते है। वह अपने को ऐसा पहिया कहता है, जो गलत धुरी में लग गया हो।

कृपाचार्य और कृतवर्मा— कृपाचार्य और कृतवर्मा के चरित्रों का विकास नहीं हो सका। वे पराजित जुआरी जैसे है, लेकिन अश्वत्थामा के सहायक के रूप में कार्य करते है। अश्वत्थामा के प्रहार से बचे बूढे, बच्चों को पाण्डव शिविर से निकालते ही ये दोनों मार डालते है। संजय अदृष्टा दृष्टा के रूप में चित्रित किया गया है। व्यास भविष्य दृष्टा और महान शक्ति के रूप में आये है। 'अंधायुग' में चरित्र चित्रण वैचारिक पृष्ठभूमि पर हुआ है सभी पात्र मानवीय अस्तित्व की अपेक्षा विचारधारा और विशेष कुण्ठाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। धृतराष्ट्र और युधिष्ठर नेत्र वर्ग की ऊँची शक्ति, उपासना और विश्व पर एकाधिकार की स्वार्थी वासना के प्रतीक है।''[326]

कथोपकथन— सम्वाद कौशल की दृष्टि से 'अंधायुग' अद्भुत है। वे न तो काव्य है और न मात्र नाटकीयता से ओत–प्रोत। उनमें काव्यत्व और नाटकीयता का समन्वय है। अंधायुग के सम्वाद मुक्त छन्दों में लिखे गये है। अन्तराल में वृत्तगंधी सम्वादों का प्रयोग हुआ है। उनका रेटारिक नाटकीयता से अधिक वर्णनात्मक पर बल देता है। उनमें प्रयोजनीयता, प्रतीकात्मक अर्थों को सम्प्रेषण की क्षमता एवं व्यंग्य क्षमता है।''[327]

कहीं कहीं सम्वाद क्षिप्र गति से चले है और उनके माध्यम से लेखक ने वातावरण और युगजनीय परिस्थितियों का वर्णन किया है। जैस प्रहरियों की बातचीत में। कथोपकथनों की विशेषता परिस्थिति और विषय के अनुसार बदलती हुई लय है। एकरसता के बचने के लिए भारती जी ने छन्द परिवर्तन भी किये है। मनोवैज्ञानिक भावों को चित्रित करने में भी एक ही व्यक्ति के सम्वाद और उनकी लय बदलती गई है। अश्वत्थामा और युयुत्सु के कथनों की लय पगपग पर

परिवर्तित है। संजय के वार्तालाप में भी मार्मिकता और नाटकीयता के अनुसार 'टोन' बदलती रहती है।"[328]

'अंधायुग' के सम्वाद नाटकीयता अभिनियत्व और रेडियो सभी दृष्टियों से सुन्दर है। उनकों जहाँ पात्रों के माध्यम से मंच पर प्रस्तुत किया जा सकता है, वही रेडियों के माध्यम से श्रुति प्रधान बनाया जा सकता है। इन दोनों प्रयोगो में अन्धायुग के सम्वाद खरे उतरे है। सम्वाद कहीं कही बोल–चाल के अति निकट पहुँच गये हैं। उन्हें पढ़कर ऐसा नही लगता कि हम कविता पढ़ रहे है। स्वाभाविकता प्रभावोत्पादक भावाभिव्यंजना और द्रुत गति दृष्टि से सम्वाद बहुत सुन्दर है।

द्वन्द्व विधान– द्वन्द्व विधान की दृष्टि से भी अन्धायुग उत्तम है। इसमें व्राह्य और आन्तरिक दोनों द्वन्द्वों को चित्रित किया गया है। महाभारत की घटना थी द्वन्द्व पर आधारित है। कौरव पाण्डवों का संघर्ष था। उलूक और कौरव के ब्राह्य संघर्ष के माध्यम से आन्तरिक संघर्ष को वाणी दी गई है। अंधायुग की पूरी रचना प्रक्रिया मानसिक द्वन्द्व पर आघात है। मानव की अन्तरचेतना मनः व्यपारों, मनोभावों और अलुप्त इच्छाओं को लेखक ने सुन्दर ढग से प्रस्तुत किया है। अंधायुग के सभी पात्र द्वन्द्वग्रस्त है। गांधारी एक के बाद एक मरने वाले पुत्रों के आघात से सन्तुलन खो बैठती है। जो अपने सौ पुत्रों की मृत्यु पर नही रोई वह कृष्ण को शाप देकर पछताती है। युयुत्सु के तो समस्त कथन ही द्वन्द्वात्मक है पाण्डव पक्ष की ओर से युद्ध करने का निर्णय और गांधारी तथा पाण्डवों द्वारा किये गये अपमान के कारण वह अपने कार्य पर पछताता है। वह सोचता है कि अन्ततः मुझे क्या मिला घृणा, पीड़ा अपमान और अनादर। अंधायुग में सत्य और असत्य का संघर्ष चित्रित किया गया है। जिसमें असत्य की विजय होती है–

"दोनों ही पक्षों में विवेक ही हारा

दोनों ही पक्षों में जीता अंधापन

भय का अंधापन ममता का अंधापन

अधिकारों का अंधापन जीत गया

जो कुछ सुन्दर था कोमलता था।

वह हार गया .... द्वापर युग बीत गया।''[329]

इस प्रकार अंधायुग में आदि से अंत तक वाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार का द्वन्द्व प्रस्तुत किया है। मानव की अन्तरचेतना मनः व्यापारों मनाभावों, अतृप्त इच्छाओ और मानसिक घात प्रतिघाते को चित्रित किया गया है। सभी पात्रों की वृत्ति अन्तर्मुखी है।

प्रतीक विधान की दृश्टि से भी अंधायुग श्रेष्ठ है। उसके सभी पात्र किसी न किसी विचारधारा या मनोविकारों का प्रतिनिधित्व करते है। धृतराष्ट्र उन राजाओं और शासकों का प्रतिनिधित्व करते है जो सम्पूर्ण विश्व पर अपना एकाधिकार चाहते है। जो स्वजनों के प्रति पक्षपात और अंधी शक्ति उपासना के प्रतीक है। गांधरी मानवता के उस वर्ग का प्रतीक है जो युद्ध से घबरा गई है। फलस्वरूप वह कटु निराश ओर उक्त अनास्था का मार्ग पकड़ लेती है। अश्वत्थामा हिंसक पशुत्व और अर्धसत्य पोषित हिंसक युद्धलिप्सा का प्रतीक है। कृष्ण ज्योति के प्रतीक हैं। ज्योति और अंधकार का द्वन्द्व उनके भीतर है। इसी प्रकार संजय कर्मलोक से वहिष्कृत निप्पेक्ष सत्य का प्रतीक है।[330]

भारती जी ने कहीं कहीं प्रतीकात्मक घटनाओं का भी चित्रण किया है। उलूक और कऊए की घटना प्रतीक है छल कपट और धोखधड़ी की। अंधायुग के शीर्षक भी प्रतीकाव्य कही पशु का उदय, पंख पहिए और पट्टियाँ आदि प्रतीकात्मक है तथा किसी न किसी घटना और विचारधारा के प्रतीक है। अंधायुग स्वयं प्रतीकात्मक शीर्षक है। वह ऐसे युग का प्रतीक है जिसमें कुंठा निराशा, रक्तपाद,

प्रतिशोध विकृति कुरूपता अपनी चरम पर पहुँच गई थी। दो प्रहरियों के वार्तालाप का भी प्रतीकात्मक महत्व है।

बिम्ब विधान भी अंधायुग में सुन्दर है। लेखक ने अनेक स्थलों पर चित्रात्मक दृश्य प्रस्तुत किये है। ऐसा लगता है जैसे सारा दृश्य हमारे सामने साकार हो उठा हो। दुर्योधन की दयनीय दशा का चित्र देखिए—

"वाह सो सम्राटों का अधिपति था

खाली हाथ

नंगे पाँव

रक्त सने

फटे हुए वस्त्रो में

टूटे रथ के समीप

खड़ा था निहत्था ही

अश्रु भरे नेत्रों से

उसने मुझे देखा और माथा झुका लिया।"[331]

अश्वस्थामा के नरसंहार के बाद एक अन्य बिम्ब देखिए—

"धुआ लपट, लोथे, घायल, घोड़े टूटे रथ

रक्त, भेद, मज्जा, मुण्ड,

खण्डित कबन्धों में

टूटी पसलियों में

विचरण करता था अश्वत्थामा

नर रक्त से वह तलबार उनके हाथों में

चिपक गई थी ऐसे

जैसे वह उगी हो

उसी के भुज मूलों से।"[332]

इसी प्रकार के प्रेतलोक के से वातावरण में वृद्ध याचक जो कुछ अनुसार करता है, उसका बिम्बात्मक चित्रण भारती जी ने सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। पग पग पर चित्रात्मक अभिव्यक्ति अंधायुग में देखने को मिलेगी। जैसे याचक का यह सूक्ष्म बिम्ब–

"याचक है

उन्नत ललाट

श्वेत केशी

आजानुवाहु।"

इसी प्रकार कई स्थानों में विभिन्न प्रकार के काव्य बिम्बों का प्रयोग अंध ाायुग में हुआ है।[333] अंधायुग में भारती जीने मुक्त छन्द का प्रयोग किया है। गीतिनाट्यों में इतनी सफलता के साथ वृत्तगंधी कथोपकथनों का प्रयोग प्रथम बार अंधायुग में ही हुआ है। भारती जी एकरसता न आ जाए इस बात को ध्यान में रखकर छन्द बदलते रहे है। अन्तराल में किसी भी प्रकार की छन्द योजना से मुक्त वृत्तगंधी गद्य का भी प्रयोग हुआ है। छन्द योजना में लय का विशेष ध्यान रखा गया है। पात्रों के कथोपकथनों में सभी पक्तियाँ एक ही लय में हो यह आवश्यक नहीं। जैसे एक बार बोलने के लिए कोई मुँह खोले किन्तु उसी बात को कहने में, मन की भावनाएँ कई बार करवटे बदल ले तो उसे सम्प्रेषित करने के लिए लय भी अपने को बदल लेती है। मुक्त छन्द की मूल योजना वही बनी रह सकती है। किन्तु नाटकीय कथन में इसे मैं आवश्यक नही मानता।[334] इस तथ्य की ध्यान में रखकर अंधायुग में क्षण क्षण छन्द योजना लय के अनुसार बदलती रही है। किन्तु कहीं कहीं पात्र एक ही लय में वार्तालाप करते है जैसे प्रहरियों के सम्वाद। संजय प्रारम्भ में एक ही लय में बोलता है लेकिन आगे चलकर उसकी लय एकाएक

बदल जाती है। कथा गायन में लेखक ने लगभग एक ही प्रकार के छन्द का प्रयोग किया है। वास्तव में अधायुग की छन्द योजना किसी विशेष छन्द को लेकर नहीं चली। छन्द ही भावों के अनुसार बने और बदले हैं। भाव स्वयं ही छन्द के बन्धन को छोड़कर नैसर्गिक रूप से ये नियुक्त हुए है।

अंधायुग की भाषा बड़ी प्रौढ़ और सशक्त है। उसमें कहीं भी बनावट और अस्वाभाविकता नहीं आने पाई। भाषा न तो आरोपित सी है और न ही काव्यात्मक पढ़ते पढ़ते ऐसा लगता है जैसे पात्र मेरी ही मेरे अन्तस की भाषा बोल रहा है। भाषा में प्रतीकात्मक और व्यंजना दोनों है। भावाव्यिजंना की दृष्टि से सशक्त और सांकेतिक शब्द चयन सर्वत्र परिलक्षित होता है। एक लहज चित्रण देखिये–

"यह रात गर्व में

तने हुए माथों में

यह रात हाथ पर

धरे हुए हाथों की।"[335]

'अंधायुग' में न तो प्राचीन नाटकीय भाषा का प्रयोग है और न नवीन रहस्यात्मक शब्दावली है। कई स्थलों पर पुराने तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है तो कई स्थलों पर नवीन शब्दों का भी बाहुल्य है। भाषा भावों को व्यक्त करने में पूर्ण सक्षम और सशक्त है।

'अंधायुग' में भारती जी ने लोकनाट्य शैली का सहारा लिया है। उद्घोषक वक्ता, छोटे–छोटे अंकों में विभाजन आदि लोकनाट्य शैली से प्रभावित है। लेकिन अंधायुग पूर्णतः लोकनाट्यों पर आधारित नहीं। उसका शिल्प गीतिनाट्य शैली पर आधिरित है। तनिक परिवर्तन के साथ उसे रेडियो नाट्य बनाया जा सकता है। और बनाया गया है।

नाटकीयता और अभिनेयता की दृष्टि से भी 'अंधायुग' पूर्ण सफल है।

उसमें समस्त नाटकीय स्थितियों तथा शिल्प का प्रयोग किया गया है। लेखक ने इसे अभिनेय बनाने का पूर्ण प्रयत्न किया है। भरती जी के ही शब्दों में यह काव्य मंच विधान को थोड़ा बदलकर यह खुले मंच वाले लोकनाट्य में भी परितर्वन किया जा सकता है। अधिक कल्पनशील निर्देशक इसके रंगमंच को प्रतीकात्मक थी बना सकते है।''[336]

दृश्य परिवर्तन के साथ कथा गायन की योजना है जो यूनानी नाटकों से प्रेरणा लेती है। इसके माध्यम से अंक परिवर्तन की सूचना दी गई है। इसके साथ ही मंच पर अभिनीत घटनाओं की सूचना देना, वातावरण की उपयुक्वता, मार्मिकता बनाएरखना कथा सूत्रों को जोड़े रखना और नाटकीयता तथा संगीत माधुरी से आकर्षक वातावरण प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है। अंधायुग का सकल प्रदर्शन कई बार विभिन्न स्थानों पर हुआ है।

अंधायुग की विशेषताएँ :– 'अंधायुग' में भारती जी ने अनेक अभिनय प्रयोग किये, जिनके कारण वह सामान्य गीतिनाट्यों से भिन्न विशेष गौरव ग्रन्थ बन गया है। उसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्न है।

1. नवीन छन्द विधान– 'अंधायुग' से पूर्व गीतिनाट्यों में अतुकान्त छन्दों का प्रयोग होता था, लेकिन भारती जी ने टी. एस. ईलियट के समान मुक्त छन्द का प्रयोग किया। इसके कारण कृति में जहाँ रंगमंचीय नाटकीयता आ गई है वहीं भावों को व्यक्त करने में सहायता मिलती है।

2. कथा गायन का प्रयोग– भारती जी ने कथा गायन या कोरस का प्रयोग कर नाटक में जान डाल दी है। यह पद्धति लोकनाट्य परम्परा से ली गई है। यूनानी नाटकों में भी कथा गायन का प्रयोग होता है। कथानक की जो घटनाएँ मंच पर नहीं दिखाई जाती उनकी सूचना देने वातावरण को गहन बनाने या कहीं उसके प्रतीकात्मक अर्थों को भी स्पष्ट करने के लिए कथा गायन की पद्धति

अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है।"[337]

'अंधायुग' में कथानक द्वारा जहाँ पृष्ठभूमि को उभारा गया है वही दूसरी ओर दृश्य परिवर्तन के बीच कथा को जोड़ने और पर्दे के पीछे की सूचना देने में भी कथा गायन उपयोगी रहा है। वातावरण को प्रभावोत्पादक बनाने में कथा गायन ने बड़ी सुन्दर भूमिका प्रस्तुत की है। दृश्यों को ध्वनि के माध्यम से चित्रित करने में भी कथानक सहायक हुआ है। अंको के बीच में जाने वाले कथा गायन और उनके आदि अन्त में आने वाले कथा गायन में अन्तर है। प्रथम में कथा गायन संक्षिप्त है और आगे की घटनाओं को इंगित करता है किन्तु दूसरे में कथा गायन का क्षेत्र व्यापक है और कथा विस्तार में सहायक है।"[338]

3. प्रसंगानुसार बदलती लय– 'अंधायुग' में परिस्थितियों और भावों के अनुसार बदलती लय ने उसमें पुनजीवन डाल दिया है। पात्रों के संवादों की लय परिस्थिति की भिन्नता और विचारों के साथ बदल जाती है। यह बात अश्वत्थामा संजय, गांधारी आदि सभी पात्रों में देखी जा सकती है। प्रथम अंक में पैरों की आहट सुनकर धृतराष्ट्र का संजय पुकारना ऐसी ध्वनि उत्पन्न करता है जैस की उनका मन व्याकुलता में घिर गया हो। इसी प्रकार अश्वत्थामा द्वारा ब्रह्मात्र छोड़ने पर व्यास के वार्तालाप में भी लय उनके हृदय की हलचल को व्यक्त करने में पूर्ण सफल है।

4. रंग निर्देशों द्वारा नाटकीयता– 'अंधायुग' की नाटकीयता प्रदान करने में निर्देशों ने पर्याप्त योगदान दिया है। ध्वनि और प्रकाश के माध्यम से उलूक और कौवे की लड़ाई और उसके द्वारा अश्वत्थामा का दिशा निर्देश ऐसा ही है।

5. अन्तराल योजना– सामान्यतः गीतिनाट्य में अन्तराल नहीं होता। लेकिन अंधायुग में भारती जी ने अन्तराल रखा है। इसमें पात्र बारी–बारी से

आकर मन्त्रवत अपने मन की भावनाओं को व्यक्त करते हैं। समस्त अन्तराल में प्रेत–लोक जैसा दृश्य है।

6. दृश्य–श्रव्य एवं लोक नाट्य का समन्वय– 'अंधायुग' की एक अन्य प्रधान विशेषता उसका मंचीय दृश्य विधान है। इसका सफलता पूर्वक अभिनय किया जा चुका है। इसके साथ रेडियो पर इसका सफल प्रसारण भी हो चुका है। यदि थोड़ा सा मंच विधान में परिवर्तन कर दिया जाय तो इसे खुले मंच वाले लोकनाट्य में भी परिवर्तित किया जा सकता है। इस प्रकार 'अन्धायुग' दृश्य नाट्य, ध्वनि नाट्य और लोकनाट्य तीनों का समन्वित रूप है। जिसके कारण वह अद्भुत कृति बन गई है।

सृष्टि का आखरी आदमी– (धर्मवीर भारती)–'नदी प्यासी थी' संग्रह में संकलित 'सृष्टि का आखिरी आदमी' भारती जी का लघु गीतिनाट्य है। इसे रेडियो के लिए लिखा गया है। भारती जी के अनुसार रेडियो छन्द नाट्य है। सम्पूर्ण कृति में उद्घोषक का स्वर प्रखर है। इसमें युद्ध से संत्रस्त सभ्यता, शोषण, नफरत ओर लोलुपता का हृदयग्राही चित्रण है। इसमें सृष्टि के अन्तिम क्षणों का वर्णन है। उद्घोषक कहता है कि इस सभ्यता का नक्सा रेगिस्तान की बाल में रंगा गया है और–

"जिसके शिलान्यास में कितने
नंगे भूखे मुर्दा बच्चे दफन हुए थे।
तब यह नगरी बस पाई थी।"[339]

कहते है इस नगरी के इंसानो ने सदियों पहले काला गाढ़ा खून पिया था, सड़े हुए मुर्दे खायें थे। तब से इनकी आवाजें बदल गई हैं। चाल चूहों जैसी हो गई है सृष्टि का अन्तिम दिन समझकर मायव इधर उधर दौड़ रहे है। नगरी का शासक उन्हें रोकना चाहता है। इसी समय एक मरा मुर्दा जी उठता है। वह कहता

है कि भागने से काम नही चलेगा तुमने जो पाप किये है उन्हें भोगना होगा क्योंकि–

"जिसके सीने पर तुमने युद्ध रचे थे

ये भवन बनाये थे जिसके कंकालों पर

इसकी गलियों में पिघली हुई

आग की नदियाँ उगलेगी।"[340]

अन्त में प्रलय प्रारम्भ होती है। मानव कुत्तों की तरह गली कूंचों में रोता, चिल्लाता भागता है। समस्त सृष्टि नष्ट हो जाती है और मुर्दा मानव सड़ी घिनौनी लाशों पर चलता–फिरता वह घूम रहा है।

लेकिन भीषण प्रलय में भी गेहूँ की बाल बच गई है। जिसके पास में एक जगली फूल खिला था। मुर्दा उस बाल को देखकर आर्द्र हो जाता है और अन्त में प्रलय की लपटों से उसकी रक्षा कर लेता है– इस आशा में कि शायद इस गेहूँ और फूल की तरल छाया में नई सृष्टि का विकास हो। गीतिनाट्य में आदि से अन्त तक अतिशय भावुकता और मानव हृदय के संघर्ष को चित्रित किया गया है। यद्धपि कथानक का स्वरूप स्पष्ट नहीं फिर भी उसका सूत्र टूटता नहीं ऐसा लगता है जैसे प्रलय उसके सामने हो रही हो और वह जिन्दा हुए मुर्दे की तरह उसे देख रहा हो।

इसमें चरित्रांकन का अभाव है। किसी पात्र विशेष का चरित्र उभर कर सामने नहीं आता। अंधायुग की भाँति इसमें भी वीभत्स रस की प्रधानता है। यथा–

"छोटे–छोटे बच्चे बूढ़े

तरुण औरते झुलस रही है

भुने मॉस की तीखी कड़वी

बदबू से सर घूम रहा है

X X X

लाशें सड़े हुए कीचड़ में तैर रही है।"[341]

कहीं कहीं भारती जी ने वर्तमान शासन प्रणाली पर तीव्र व्यंग्य किये हैं–

"मेरे इस प्रजातन्त्र में

बिना बोट के नहीं फूल तक खिलता है जब

क्या मजाल है

बिना बोट के यहाँ कयामत झांक सके।"[342]

गीतिनाट्य के संवाद कहीं–कहीं उद्घोषक की आवाज में दब गये हैं फिर यत्र–तत्र सशक्त और नाटकोचित संवादों का सृजन हुआ है। संवाद कहीं भी लम्बे नहीं खिचे।

इसमें भारती जी ने किसी समस्या का समाधान प्रस्तुत नहीं किया। भविष्य की रूप रेखा भयावह हो गयी । मात्र गेहूँ की बात नवीन सृष्टि का परिचायक है। नेरशन के माध्यम से समस्त कथा सहज रूप से आगे बढ़ी। सह स्वाभाविक मुक्त छन्द ओर प्रसंगानुकूल बदलती लय अंधयुग जैसी है। कहीं कही प्रतीकों और बिम्बों का सहारा लिया गया है। मुख्यतः गीतिनाट्य रेडियो शिल्प से प्रभावित है।

इन्दुमती–(गिरिजा कुमार माथुर)– 'इन्दुमती' सर्वप्रथम 'प्रतीक' में सितम्बर 1951 को प्रकाशित हुआ था। बाद में लेखक ने इसे अपने कविता संग्रह 'धूप के धान' में संकलित कर दिया। जहाँ प्रतीक में प्रस्तुत इन्दुमती में लेखक ने नाटकीयता के लिए पात्रों के नाम देकर संवाद लिखे है वहाँ 'धूप के धान' में ऐसा काम किया गया है। उदाहरण के लिए धूम के धान में गीतिनाट्य प्रारम्भ अनायास ही हो जाता है ओर प्रतीत नहीं होता कि कोन बोल है जब कि 'प्रतीक' में गायक हौर गायिका का निर्देश दिया गया है। यदि कोई मात्र धूप धान में इन्दुमती पढ़े तो उसे गीतिनाट्य न होन का भ्रम हो जाय।

'इन्दुमती' का कथानक कालिदास के रघुवंश से प्रेरित है।"[343] किन्तु लेखक ने अपनी मौलिक प्रतिभा का भी परिचय दिया है इसमें इन्दुमती के स्वयंवर का वर्णन है। प्रारम्भ में रघुकुलं की यश गाथा और इन्दुमती के रूप सौन्दर्य का वर्णन है। स्वयंवर में विभिन्न देश के नरेश पधारें है पर इन्दुमती को आकर्षित नहीं कर पाता अन्त में वह रघु के गले में जयमाला डाल देती है। यही कथानक है, जिसे लेखक ने अपनी कल्पना शैली से अनुपम बना दिया है।

गीतिनाट्य में न तो कथानक का विकास हुआ है ओर न उसमें नाट्कीयता ही आयी है। लेखक का कवि सर्वत्र मुखर है। एक वर्णन देखिए–

"यदि रखना चाहो मृगनयनी
नाग बल्लियों के कुंजो में
है तमाल ही सेज जहाँ पर
एलागन्धित मलय वनों में
तन्वि वरो तुम पाण्डय राज को
जिनके तन पर है हरि चन्दन
हेम वर्ण तुम से इन्दीवर
ज्यों विद्युत से मिले श्याम धन।"[344]

नाटकीयता की दृष्टि से इन्दुमती सुन्दर रचना नहीं। संवादों में भी नाटकीयता नहीं हाँ सुनन्दा का वर्णन और इन्दुमती के अल्प उत्तर सुन्दर है। जैसे–

"सखि जब नहीं कौमुदी रजनी, कैसे दिन के खिले कुमुदिनी।"

अथवा

"पर सखि बन्द ताम रस अन्तर, खिला न पाते कोढि सुधावर"।

वास्तव में ये कथोपकथन ही इस रचना के प्राण है। संघर्ष की दृष्टि से भी

वह हल्की रचना है।

पृथ्वीकल्प–(गिरिजा माथुर)–पृथ्वीकल्प माथुर जी की दुरुह और अति कल्पना युक्त गीतिनाट्य हैं। इसमें विज्ञान की शक्ति का चित्रण किया गया है। माथुर स्वयं लिखते है कि अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज पर केन्द्रीय भूत होकर आज राजनीतिक शक्तियाँ तथा मतवाद एक मरणांतक संघर्ष में रत है। उनके सर्वग्राही और सर्वग्रासी विरोधों के कारण समस्त मानव जाति के सामने ऐसा संकट उपस्थित हो सकता है जिसमें पृथ्वी का जीवन ही खतरे में पड़ जाय। इस व्यापक पृष्ठ भूमि में उदित चरम वैज्ञानिक प्रगति एक दूसरी भौतिक समस्या उपस्थित कर रही है और वह है इन्सान के आधारभूत मूल्यों की समस्या।''[345]

'पृथ्वीकल्प' में वैज्ञानिक यन्त्रों का ऐसा रूप चित्रित है जिनका निर्माण अभी नहीं हुआ। समस्त कथानक चार खण्डों में विभक्त है। पहला खण्ड 'नीहारिका चक्र' है। इसमें इतिहास सदियों के माध्यम में चित्रित किया गया है। इसमें इतिहास में हुए आक्रमण, बलात्कार, रक्तपात और संघर्षो का चित्रण है। स्वयं इतिहास अपनी कहानी कहता है। उसके अनुसार सदैव सत्य की असत्य पर विजय हुई है। लेकिन ज्योति तिमिर का संघर्ष अभी समाप्त नहीं हुआ। धरा पर अब भी अणुओं का भय छाया है।

द्वितीय स्वर्ण देश खण्ड है। इसमें वर्तममान औद्योकि पद्धतियों का प्रतीक चित्र है। आज विज्ञान शक्तिशाली है जिसके बल पर –

''तुम जो चाहो सो कर सकते
नदियों के नीचे रह सकते
नदियों की धार पलट सकते
सागर को भाप बना सकते।''[346]

मानव की इस शक्ति और सुख को स्वर्ग दैत्य नष्ट कर देना चाहता है।

अणु से उसे मारा जा सकता है, पैसो से उसे खरीदा जा सकता है। काम से उसे वश में किया जा सकता है। अतः इनसे बचना है। तृतीय खण्ड 'लौह देश' है इसमें राज्यवाद सैन्यवाद अधिनायकवाद और यूथवादी सामूहिक तत्वों की अभिव्यक्ति हुई है। अन्तिम भविष्य खण्ड है इसमें संसार के सामान्य जनों का महाप्रलय के बाद का चित्र है।

'पृथ्वीकल्प' कथानक का सम्बन्ध एक दशाब्द आगे का है। जबकि आज भारत का युग 'साइकिल' युग से ही गुजर रहा है। लेखक का उद्देश्य यह बताना है कि वर्तमान जीवन न में विज्ञान की एक विशेष स्थिति है। अब ईश्वर के स्थान पर उसकी प्रभुता है। आज व्यक्ति के बदले समाज का महत्व बढ़ रहा है। अतः अब समष्टि परक दृष्टकोण का विशेष महत्व हो गया है।

'पृथ्वीकलप के सभी पात्र वायवीय, अतिमानवीय या वैज्ञानिक है। देवी या मानवीय पात्र उसमें नहीं हैं। कहीं कहीं मनोभाव भी पात्र रूप में आये हैं। स्वयं गाथाकार भी मंच पर है। ये सभी पात्र टाइप है। परसेप्ट्रोन, कामकन्या, यन्त्र दैत्य ऋषि कुमार, मनवधि आदि इसके पात्र है। इनके चरित्र का पूर्ण विकास नहीं हुआ। इसे विज्ञान काव्य की संज्ञा दी गयी है। इसमें न केवल अति आधुनिक टेक्नोलाजी से सम्बन्धित भाषा का प्रयोग किया है अपितु बहुत से नये शब्दों की भी रचना हुई है। कुछ नये शब्द वस्तु और तथ्यों को लेकर सामाजिक क्रियाओं और पद्धतियों से सम्बन्धित है। कुछ शब्द तत्सम आधार पर बनाये गये है, जैसे भूमानी (पृथ्वी की चन्द्रिका) कुछ अग्रेंजी शब्द है जैसे इलेक्ट्रॉन, काण्टेक्ट किरण या इम्पल्स किरन। ये नये शब्द यन्त्र युग को प्रतिभाषित करते हैं। 'पृथ्वीकल्प' का अभिनय नहीं हो सकता। लेखक ने जिस मंचीय व्यवस्था का निर्देश दिया है वह सहज नहीं। एक रंग निर्देश देखिए–

मंच के पृष्ठ पर दूर तक असुरों की तरुण वर्णाकार चमकती खिडकियों को

आँखे खोले भीमाकार 'स्काई स्क्रेपर' दिखाई पड़ते है। आकाश में राकेट, चील सी जैटें और एटेनो पासरे उपचन्द्रों की भारी छायाएं मंडरा रही हैं। सामने पक्षाकार मशीनों तथा फ्यूचरिस्टिक यन्त्र पुर्जो का जाल दिखाई दे रहा है। जिसके बीच कितने ही छोटे बड़े चमकीले धातु के मशीन मानव रोवोट तथा परसेप्ट्रोन खड़े है। जगमगाते नियम चिह्नों, बिजली से चलते विज्ञापनों और उर्ध्वमुखी घूमती प्रकाश धाराओं के बीच छायाकृति में मार्च करती अटूट पंक्तियाँ तथा पूँछ से आग की ज्वालाएँ उगलते राकेट नजर आ रहे है।''

उपरोक्त मंचीय व्यवस्था को मंच पर चित्रित करना सम्भव नहीं। यह वातावरण रेडियो पर भी ध्वनि के माध्यम से प्रस्तुत नही किया जा सकता और बिना इसे दर्शाए परसेप्ट्रोन यह कहे–

''सावधान, अणु तोपे आन

आन।

राडार पट।

आन।

उपग्रह एण्टना।''

तो ऐसा लगेगा जैसे जादूगर हवा से बाते कर रहा हो गीतिनाट्य के लिये नाटकीयता और काव्यत्व दोनों अनिवार्य है प्रस्तुत नाट्य में दोनों का आभाव है। संघर्ष अवश्य है लेकिन क्षीण। सारी घटनाएँ प्रतीक रूप में होती हैं। अतः इसे भी सफल गीतिनाट्य नहीं कह सकते। गीतिनाट्य परक रचनाओं में कोई महतवपूर्ण नहीं। 'कल्पान्तर' में वर्तमान युग में बदलते सन्दर्भो पर प्रकाश डाला है। आज के युग में विभिन्न विचार धाराओं में संघर्ष छिड़ा हुआ है। ग्राम्य एवं नागरिक जीवन के विभेद और उनके संघर्ष को जगमोहन और ऋषि कुमार के माध्यम से उभारा गया है। मानव विरोधी सभ्यता जिसको पूँजीपतियों ने प्रश्रय दिया है अन्ततः

समाप्त हो जाती है। उसके बाद एक नई सभ्यता का उदय है। इसमें अणु युग की समस्याओं पर भी प्रकाश डाला गया है।

यह एक प्रतीकात्मक नाटन है। इसका प्रथम प्रतीक संघर्षरत सामाजिक पद्धति है, जिसका नेतृत्व स्वर्ण दैत्य करता है दूसरा प्रतीक संसार की समस्त जनता है, जिसका प्रतिनिधित्व ऋषिकुमार करता है। यह जनता ग्रामों में निवास करती है। तीसरी सभ्यता शहरी सभ्यता है, जिसका प्रतिनिधित्व जगमोहन करता है। इसमें अभिनेय के तत्व नहीं हैं।

'दंगा' भारतीय विभाजन के समय हुए दंगा पर आधारित है। एक मध्यम वर्गीय परिवार के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक विकृतियों का चित्रण किया गया है। दंगो के कारण वहीं हैं जिन्हें हम किताबों में पढ़ते हैं। एक गली में रहने वाला परिवार दंगो के कारण किन मुसीबतों में फंस जाता है इसका हृदयग्राही वर्णन हुआ है। मृत्यु ताण्डव, भय का आतंक अनिश्चय की स्थिति का सफल वर्णन हुआ है। दगो का लाभ उठाकर गुण्डे सक्रिय हो जाते हैं। तोड़फोड़, लूटखसौट, बलात्कार से वातारण क्षुब्ध हो जाता है। लेखक का विचार है कि इन साम्प्रदायिक दंगो के लिए हमारा पूँजीवादी समाज उत्तरदायी है।

'राम' में मर्यादा पुरुषोतम राम की महत्ता और आदर्शवादिता का चित्रण है। जनता की सुख–समृद्धि का भार शासन का होता है। ब्राह्मण पुत्र की मृत्यु और राम द्वारा उसे जीवन दान देना उनकी प्रजा वत्सलता का प्रतीक है। 'योगक्षेम बहाम्यम' का सिद्धान्त पालन करते हुए शासक को प्रजा ध्यान रखना चाहिए। स्वर्णश्री में गांधीजी के राष्ट्रीय आन्दोलन का चित्रण है। गांधी जी ने इतिहास की मान्यताओं को तोड़कर अहिंसात्मक लड़ाई लड़ी थी। उसी का विवरणात्मक चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

वास्तव में अन समस्त रचनाओं में कथावस्तु का आभाव है ओर नाटकीयता

की दृष्किट से भी ये रचनाएँ बहुत सुन्दर है। इन सभी में मुक्त छन्द का प्रयोग हुआ है। ये सभी रचनाएँ आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से प्रसारित हुई है ओर रेडियों शिल्प का प्रभाव इन पर पड़ा है।

गंगावतरण–(जानकी बल्लभ शास्त्री)– 'गंगावतरण' पौराणिक घटना पर आधारित है, जिसमें भगीरथ द्वारा गंगा को स्वर्ग से पृथ्वी पर लाने का आख्यान है। पौराणिक वातावरण की रक्षा के लिए सूत्रधार की अवतारणा की गई है। कथानक में कोई मौलिक उद्‌भावना नहीं है। सम्पूर्ण कथानक तीन दृश्यों में विभक्त है। प्रारम्भ में गीत के समवेत स्वरों में कर्म और दृढ़ इच्छा शक्ति का महत्व प्रतिपादित किया गया है। यदि मानव के मन में दृढ़ संकल्प, अदम्य विश्वास और कमर्ठता हो तो पृथ्वी पर स्वर्ग आ सकता है। भगीरथ ने उसी अदम्य उत्साह और पुरुषार्थ के बल पर वह कर दिखया जिसे असम्भव माना जाता था। भगीरथ गंगा को पृथ्वी पर लाने हेतु घोर तपस्या करते हैं जिसके कारण इन्द्र लोक में भय व्याप्त हो जात है। इन्द्र ब्रह्मास्त्र रूप में उर्वशी और रम्भा को तपस्या भंग करने हेतु पृथ्वी पर भेजते है। किन्तु उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। भगीरथ की आँख नहीं खुली और अप्सराएँ श्लघ शिथिल पदों से वापस लौट गयी।
भगीरथ की तपस्या से प्रशन्न हो ब्रह्मा ने गंगा को पृथ्वी पर उतरने का वर दिया। उन्होंने कहा कि गंगा भूतल पर उतरेगी किन्तु उसके वेग को मात्र कैलाशवासी शंकर ही सम्भाल सकते है अतः उन्हें प्रसन्न करो। उसी समय शंकर प्रकट होकर सहर्ष गंगा के वेग को झेलन के लिए तैयार हो जाते है–

"मैं प्रसन्न हूँ स्वर्गङ्‌ण उतरे भू पर
कीर्ति तुम्हारी गगन चढ़े फहरे ऊपर।"[347]

गंगावतरण का यही छोटा सा आख्यान है। पात्र एवं चरित्र चित्रण की दृष्टि से गीतिनाट्य में सूत्रधार सहित कुल सात पात्र हैं। किन्तु सभी का चरित्र

प्रकाशन लेखक का ध्येय नहीं। उनका मूल उद्देश्य भगीरथी के चरित्र की शाश्वतता और 'पर हित तप' के लिए उनकी निष्ठा का अंकन करना है। भगीरथी एक से योगी है जो दूसरों के लिए तपस्या करते हैं–

'तप रहा था मैं न अपने हेतु

वे तपस्या का समाजीकरण करना चाहते हैं। भगवान शंकर इसी से बिना तपस्या कराये ही उनकी सहायता को उद्धत हो जाते हैं। वे कहते है–

''सत्य के लिए तप करने वाले देखे

मुक्ति, शान्ति, निर्वाण चाहने वाले भी

सुन्दर स्वर्ग–पिपाशा से जो कंठ सूखा

लेते, ऐसे सिन्धु चाहने वाले भी

बात तुम्हारी न्यारी उन सबसे तुम तो

शिव के लिए, लोक मंगल के लिए तपे।''[348]

भगीरथ दृढ़ इच्छा शक्ति, उज्जवल चरित्र के कर्मयोगी थे, जो निश्चल और निर्मल साधनों से मानव का कल्याण चाहते थे। भगवान शिव 'शिव' के रूप में प्रस्तुत किये गये है। रम्भ और उर्वशी के चरित्र परम्परागत हैं–गायन–वादन में निपुण, अनिन्ध्य सुन्दरी, नृत्यांगना और मन को मोहने वाली। ब्रह्मा वर प्रदायक के रूप में ही हमारे समक्ष आते हैं। नारद का चरित्र अस्तित्वहीन है।

'गंगावतरण' के सम्वाद नाटकीयता सेपरिपूर्ण है। रेडिया पर इनका सफल प्रसारण हुआ है। ब्रह्मा और नारद के सम्वादों में नाटकीय उत्कर्ष प्रकर्ष का प्रयास अतिसुन्दर है।''[349]

शास्त्री जी ने गीतिनट्यों में विशुद्ध परिमार्जित भाषा का ही प्रयोग किया है। गंगावतरण में कहीं भी शिथिल भाषा का प्रयोग नहीं हुआ। पात्रों के स्वभाव और परिस्थितियों के अनुसार भाषा में परितर्वन होता रहा है। भगीरथ जहाँ

उद्घोष के स्वर में– मैं रहूँगा, अटल, अडिग अडोल, कहते हैं, वहीं रम्भा भी छुम छुम छुम नृपुर–धुन सुन–सुन सहज ही मन मोह लेती है। कहीं–कहीं संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग हुआ है।

शास्त्री जी ने अपने गीतिनट्यों में अन्त्यानुप्रास युक्त सम मात्रिक छन्दों का प्रयोग किया है और भावों में कहीं भी शिथिलता नहीं आई। गंगावतरण में घनाक्षरी छन्द का भी प्रयोग हुआ है। कहीं मुक्त छन्द भी प्रयोग किया गया है।"[350]

संगीतत्व की दृष्टि से शास्त्री जी के गीतिनाट्य अपनी शानी नहीं रखते। संगीत तत्व के समक्ष गीतिनाट्य के अन्य तत्व नाटकीयता और काव्यत्व विचारे दबे–दबे से लगते हैं। शास्त्री जी के ही शब्दों में–ऐसा लगता है जैसे संगीति का काव्य–नाट्य के किनारे डुबोकर रहने वाली संगीत की गंगा ही है।[351]

विभिन्न राग–रागिनियों के स्वर में गीतिनाट्य डूब सा गया है। गंगावतरण में संगीत के समक्ष काव्यत्व का स्वरूप मुखरित नहीं हुआ। इसका अभिप्राय यह नहीं कि उसमें काव्यत्व नहीं। काव्य अपने स्थान पर पूर्ण है। जब पाठक 'गगन उस दिन झंकृत होता या नूपुर नाद' से पढ़ता है तो वह साधारण भाव भूमि से निकल कर स्वप्न लोक में जा खड़ा होता है। गंगावतरण में संघर्ष उतना तीव्र नहीं जितना गीतिनाट्यों के लिए अपेक्षित है। फिर भागीरथ के ह्रदय में उठने वाले द्वन्द्व का सुन्दर वर्णन है। शिवजी के कथन में भावुकता है। 'गंगावतरण' में नाटकीय रंग संकतों और निर्देशों का पर्याप्त उल्लेख है। यथा मेघ मन्द स्वर में, गद–गद् स्वर कुटस्थ स्वर 'उर्ध्व श्वांस लेकर' आदि वातावरण सृजन के लिए भी लेखक ने निर्देश दिये हैं, जैसे पृष्ठभूमि में तालवद्ध नूपुरों की झंकार नूपुर निनाद क्रमशः मुखरित होता है।" इसके कारण नाटक को मंच पर प्रस्तुत करने में कोई बाधा उत्पन्न नहीं हो सकती।

पांचाली—(जानकी बल्लभ शास्त्री)— 'पांचाली', 'तमसा' संग्रह का चतुर्थ गीतिनाट्य है। इसमें द्रौपदी के स्वयंवर और इसके बाद ही घटनाओं का वर्णन है। कुल तीन दृश्यों में फैली 'पांचाली' की कथा का मूल केन्द्र बिन्दु यह है कि—द्रोपदी कि प्रकार पाँच पतियों की पत्नी बनी। द्रौपदी का स्वयंवर हो रहा है। देश—देश क महीप एकत्र है। पांचाली वरमाला लेकर रंगभूमि में पधारती है! कर्ण, दुर्योधन, शाल्व आदि असफल लक्ष्य वेध कर चुके है। अर्जुन जो ब्राह्मण वेश में सभा में उपस्थित थे लक्ष्य वेध की अनुमती माँगते हैं। अनुमती मिलने पर वे लक्ष्य वेध करते हैं और कृष्ण ब्राह्मण वेशधारी अर्जुन के गले वरमाल डाल देती है।

द्वितीय दृश्य में अर्नुन और भीम के संवाद में पांचाली को पता चलता है कि लक्ष्यवेध कर उसे वरने वाला और कोई नहीं, महान धनुर्धरी वीर अर्जुन है। वह गद्‌गद् हो जाती है। भीम बताते है कि हम लोगों ने पहले ही तुम्हें वरण करने का निश्चय कर लिया था हम लोगों ने सोचा था—

"धर्म लक्ष्य होगा तो निश्चय, धर्मराज की जय होगी
लक्ष्य बाहुबल होगा तो, वरमाला मुझे पहनाओगी
लक्ष्य धनुष का कौशल हो, तो अर्जुन का है जोड़ नहीं
लक्ष्य रूप तो युग्म—बन्धुओं से बद पाती होड़ नहीं।"[352]

अर्जुन द्रौपदी के रूप गुण की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हैं। देर गये रात सभी अपने निवास स्थान स्थल पर पहुँचते हैं। देर होने से कुन्ती चिन्तित हो जाती है। अर्जुन बाहर से ही कहते हैं—

माता, लो, आ गए, आज की भिक्षा तो देखो कैसी।"

और कुन्ती अन्दर से उत्तर देती है—

"देखूँ क्या? पाँचों मिल भोगो
भिक्षा तो भिक्षा जैसी।"[353]

लेकिन जैसे ही वे बाहर आकर पांचाली को देखती है, अपने कथन पर पश्चाताप कर उठती है। वे कहती हैं कि मेरी चिन्तवृत्ति स्थिर नहीं है और सत्य भी है जिसके पाँच–पाँच महान धुनर्धर वीर पुत्र वन–वन भटकते फिरें, फिर शान्ति कैसे मिल सकती है। अर्जुन निश्चय करते हैं कि–"पांचाली हो पंच भतृका।"

किन्तु कुन्ती विरोध करती है। परन्तु पांचाली स्वयं स्वीकार कर लेती है। तृतीय दृश्य अधिक मार्मिक है। इसमें पांचाली के हृदय की पीड़ा प्रकट हुई है। पांचाली कोहवर में जाकर क्रमशः पाँचो पाण्डवों की पद वन्दना करती है। पाँचों पाण्डव द्रौपदी के रूप की प्रशंसा करते है और उसे अपने हृदय की रानी बताते हैं। पांचाली की सखी सुनन्दा द्रौपदी को अकेला छोड़कर द्वार बन्द कर देती है।

स्पष्ट है कि 'पांचाली' के कथानक में कोई नवीनता नहीं है केवल शब्दों और भाषा का ही अन्तर है। कुन्ती का पश्चाताप पांचाली के हृदय की वेदना कथोपकथनों के माध्यम से स्पष्ट उभर कर सामने आई है। कुन्ती कहती है–

"जिसके पाँच–पाँच बेटे वन में फिरते हो मारे

धर्म–धुरन्धर बाहुवली, बेजोड़ धनुर्धर ओ प्यारे।

उस माता की चित्त वृत्ति सन्तुलित रहेगी क्या बोलो

पागल का प्रलाप सुनकर जीवन रस में मत विष खोलो।"[354]

इस गीतिनाट्य की सबसे बड़ी विशेषता इसके नाटकीय संवाद है। एक–एक वाक्य के सम्वादों में हृदय की वेदना और निराशा बड़े सुन्दर ढ़ग से व्यक्त हुई है। इस प्रकार छोटे–छोटे संवाद शास्त्री जी के अन्य गीतिनाट्यों में देखने को नहीं मिलते।

'पांचाली– माता की आज्ञा कि करुँ मैं पाँच हृदय के खण्ड।

सुनन्दा (हंसकर)– कम इससे क्या सधी सास दे नई बहू को दण्ड।

पांचाली– माता की आज्ञा कि एक लें अस्थि, दूसरा चर्म।

सुनन्दा(हंसकर)— प्राण तत्व मय नारी खाए नर नारायण धर्म।

पांचाली— माता की आज्ञा कि बनाऊँ पंच सौध आकाश

सुनन्दा— धरती का सिर एक छिपाने का यह प्रगट प्रयास।"[355]

इस प्रकार एक—एक पंक्ति के संवाद चलते रहते है। यह केवल कथोपकथन ही नहीं ह्रदय की अनुभूतियों का द्वन्द्वात्मक चित्रण भी है। नारी जीवन की किनती सुन्दर व्याख्या की गयी है—

" नारी जीवन गीला ईधन, आग धुआती घी में

झूँक रही है साँस साँस मेरी तो पाँचों घी में।"[356]

संगीत सर्वत्र अपनी मधुरिका बिखेरे हुए हैं। बीच में वजने वाले वाद्य वातावरण की गरिमा और सृजन में सर्वत्र सजग है। वास्तव में वाद्य वृन्द में लेखक के निर्देशों का पालन किया जाय तो यह गीतिनाट्य अद्भुत प्रभाव डाल सकते है।[357]

मुक्ति देवता प्रमाण—(प्रभाकर माचवे)— 'मुक्ति देवता प्रणाम' का कथानक नेरश मेहता के 'अग्निदेवता' जैसा है। अग्नि देवता' (1952 में लिख गया था और मुक्ति देवता प्रणाम 1953 की रचना है।) दोनों ही रेडियो के लिए लिखे गये है। अतः रेडियो शिल्प से प्रभावित है।

'मुक्ति देवता' का प्रारम्भ स्त्री—पुरुषों के समवेत गान से होता है। जिसमें भारत की महिमा का वर्णन किया गया है। एक समय था जब मानव को जीवन और अर्थ—संचय की अधिक चिन्ता नहीं थी। मानक को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सभी प्राप्त थे। धीर—धीरे आचार—विचारों ने मानव को वर्ण और जातीयता के बंधनों में जकड़ दिया। आर्य सभ्यता दूषित हो गई। नर—बलि और पशु—बलि दण्डनीय नहीं रही। जब हिंसा अपना नर्तन करने लगी तथा बैशाली में भगवान बुद्ध ने संसार को माध्यम मार्ग और अष्ट मार्ग के सिद्धान्तों का पालन करने का उपदेश

दिया। समाज में तनिक स्थिरता आई वे 'मुक्त देवता थे।

समय बदला। राष्ट्र पर विदेशी आक्रमण हुए। तातार, हूड़ आदि ने भारत को आक्रांत कर दिया। ऐसे समय में कुछ सन्तों ने दोनों एक एकता स्थापित करने का यत्न किया। कबीर ऐसे ही सन्त थे। कलान्तर में शासक विलासिता के गर्भ में डूब गये। फिर अंग्रेजी साम्राज्य ने अपने डैने फैलाये और भारत पर आधिपत्य कर लिया। तब कहीं भारतीय जनता की आँखे खुली और 1857 में क्रान्ति हुई।

समय चलता गया और फिर आये महात्मा गांधी 'मुक्त के देवता' बन कर हिन्दू मुस्लिम एकता के लिए उन्होंने दाण्डी यात्र की। 1947 में भारत को विदेशी दासता ने मुक्ति मिली। अन्त में मुक्ति देवता को प्रणाम करते हुए कथानक समाप्त हो जाता है।

'मुक्ति देवता' में नेरेशन के माध्यम से कथानक को आगे बढ़ाया गया है। इसमें कवित्व न के बराबर है। घटनाओं का विवरणात्मक चित्रण है। वास्तव में यह रेडियो फीचर कहा जा सकता है।

गीतिनाट्य का संघर्ष भी 'मुक्त देवता' में नहीं हैं। हाँ—नाटकीयता उसमें पर्याप्त है। कथानक में बुद्ध से लेकर स्वतन्त्रता तक झाँकी प्रस्तुत की गई है।

मुक्ति देवता का मूल उद्देश्य हिन्दू—मुस्लिम एकता का चित्र प्रस्तुत करना है। जिस प्रकार कबीर ने दोनों में एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया इसका संकेत दिया गया है। चरित्र—चित्रण की दृष्टि से भी 'मुक्ति देवता' सफल नहीं हैं। कोई भी पात्र न तो स्थायी होकर आया है और न किसी के चरित्र का विकास ही हुआ है। बिम्ब और प्रतीकों की दृष्टि से भी इसमें कुछ नहीं हैं। काव्यत्व की दृष्टि से भी इसमें कोई आकर्षण नहीं है। संक्षेप में 'मुक्ति देवता' एक साधारण कृति है।

विन्ध्याचल—(प्रभावकर माचवो)— विन्ध्याचल भी गीतिनाट्य न होकर रेडियो फीचर है। गद्य—पद्यमय संवाद इसे चंपू की स्थिति में ला देते है। कथा का

विकास घटनाओं के आधार पर हुआ है। न तो इसमें किसी प्रकार का कोई संघर्ष है और न काव्यत्मकता। प्रारम्भ में बुंदेली बारहमासी है। इसके बाद इतिहासकार पात्र के रूप में विन्ध्याचल की गाथा सुनाता है। आज सुनाएँ तुम्हें सुगिरिवर विन्ध्याचल की गाथा कहकर वह अगस्त की कथा की ओर इंगित करता है। भूगोलवेत्ता उसका साथ देता है। दोनो भौगोलिक एवं ऐतिहासिक तथ्यों का वर्णन करते है। नेरेशन के माध्यम से कथा आगे बढ़ती रहती है। 'अन्तराल में लोग मुद्रा और अगस्त दक्षिण दिशा में जाने का निर्णय करते है। बीच में बाणभट्ट और इतिहास के गद्यमय सम्वाद है। रेवा नागार्जुन, कैफदम, विन्ध्य शक्ति आदि की कथा भी सम्मलित है। इसके अतिरिक्त प्रभाववती, भूषण और अन्त में स्वयं कवि का कथन है। विन्ध्याचल गीतिनाट्य न होकर गीतिनाट्य पूरक रचना है।

रामगिरि–(प्रभाकर माचवे)–'मुक्ति देवता' और 'विन्ध्याचल' की तुलना में 'रामगिर' सफल रचना है। इसमें तीन विभिन्न कालों की घटनाओं को सुन्दर ढंग से संजोया गया है। नागपुर में अठ्ठाइस मील उत्तर में स्थिति रामटेक का पौराणिक एवं ऐतिहासिक महत्व है। दक्षिण जाते हुए भगवान राम इस पर्वत पर रुके थे। इसके सरोवर में जगज्जननी सीता ने स्नान किया था। कालिदास के माध्यम से लेखक ने बताया है कि इसीलिए राम की पादुकाएँ यहाँ पूजित हैं। यहाँ पर कई विचारक ऋषियों के आश्रम बसे हुए थे। यहीं की भूमि से द्रवित होकर कालिदास, भवभूति और राज शेखर ने अपनी अमर लेखनी से करुण गाथाएँ लिखी थी।

कथानक का प्रारम्भ स्रोत से होता है। लेखक ने प्रारम्भ में रामगिरि की महत्ता का वर्णन किया है। इसमें यक्ष और मेघ की गाथा है। यक्ष और यक्ष प्रिया का द्वन्द्वगीत, मेघ का यक्ष प्रिया से मिलन न होना आदि को काव्यात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। यक्ष और उसकी प्रिया के मनोभावों को सुन्दर ढ़ग से उभारा

गया है।

इसके बाद सूत्रधार कथा प्रसंग तोड़कर भवभूति के युग में ला खड़ा करता है। भवभूति चालुक्य और कलचुरी राजाओं द्वारा उचित सम्मान न पाकर अपना स्थान पदमपुर छोड़कर उत्तर की ओर चल देते हैं दण्डकारण्य को देख कर उनका हृदय गद्–गद् हो उठता है। इन्हीं जंगलों में भटकते हुए उनके मन में करुणा जागृति होती है। अपने पर आई विपत्ति को देख्कर वे सोचते हैं कि यह दुःख मेरा ही नहीं सभी का है। यह सोचकर मन अनमना हो गया हृदय गुदगुदाने लगा और वहीं कविता बन गई–

"हृदय गुनगुना उठा अनजाने

कैसे जाने

वही बन गई कविता।"[360]

समय बदला। भवभूति का समय बीता और राजशेखर का आया। राजशेखर काव्य भी मांसाकार थे। उन्होंने 'बाल रामायण', विद्धशाल मजिंका' आदि ग्रन्थों की रचना की। राजशेखर के अनुसार–

"कविता नहीं अकेले रोना

कवि को दुख पीना है।

सहना है, दहना है

फिर जग बीती बना, आप बीती कहना है।"[361]

अन्त में लेखक सूत्रधार के माध्यम से रामगिरि कहाँ है–इस पर विचार करता है। मेघदूत के टीकाकार बल्लभ देव ने चित्रकूट को ही रामगिरि माना है। किन्तु आगे चलकर विल्सन ने 1813 में यह सिद्ध किया कि रामगिरि नागपुर के उत्तर में स्थिति है। कविता कहती है कि– युग बीत गये रामगिरि अब भी वैसाही खड़ा है, अब तक न जाने कितने यक्ष विरही हो गये–

"हो चुके यहाँ पर यक्ष अनेको विरही

हो गई हजारों यक्ष प्रियाएँ विधवा

ये काल चक्र की कीली नां ठहरी।"[362]

सम्पूर्ण गीतिनाट्य विवरणात्मक है। विभिन्न युगों को एक साथ संजोन के कारण कथानक न के बराबर है। बीच–बीच में संस्कृत के श्लोक आ जाने से यद्धपि वातावरण की तो रक्षा हुई है, लेकिन रासास्वाद में बाधा उत्पन्न हुई है। नाटकीयता की दृष्टि से रामगिरि के कुछ अंशों को सफल कहा जा सकता है। अधिकांश घटनाएँ नरैशन के माध्यम से घटित हुई है। एक स्थान पर यक्ष और उसकी पत्नी का गीत है जो अस्वाभाविक सा लगता है। पहले यक्ष गाता है, फिर यक्षणी। मीलों दूर इस प्रकार के सम्वाद सिनेमा पर ही सम्भव है, गीतिनाट्य में ये उचित नहीं।

कुला मिलकार माचवे जी की कोई भी कृति गीतिनाट्य के तत्वों की दृष्टि से सफल कृति नहीं कही जा सकती।

ऊपर की मंजिल–(कर्तार सिंह दुग्गल)– 'ऊपर की मंजिल' उन्नीस पृष्ठ का एक पात्री गीतिनाट्य है। इसमें एक एसे पुरुष के हृदय का संघर्ष प्रस्तुत किया गया है, जिसकी पत्नी एक अन्य पुरुष से प्रेम करती है। पत्नी अपने प्रेमी कप्तान को विदा करने स्टेशन गई है। पुरुष का नौकर जब ये सूचना देता है तो उसके हृदय में घृणा के विषाक्त बादल घुमड़ उठते है। वह कहने लगता है कि क्या कभी ऐसा हुआ है कि किसी पुरुष की सदाचारी पत्नी पैंतीस वर्ष की आयु में किसी अन्य पुरुष से प्रेम करने लग जाय। तीन बच्चों की माँ किसी पराये के लिए पागल हो उठे–

"कभी किसी ने सुना है

कि पन्द्रह साल एक छत के नीचे रहकर

कोई यों खुल खेलने लग जाये।"[363]

उसे दुख तो इस बात का है कि राजी ने तब उसे नहीं छोड़ा जबकि वह छोड़ने योग्य था। गरीब था, दुराचारी था अशक्त था, शराबी था। पर जब वह धनिक हो गया, सदाचारी हो गया तब पैंतीस वर्ष की आयू में–जब कि उन पौधों पर फल आ गये जिसे उसने लगाया था–वह अन्य पुरुष से प्रेम करने लगी।

पुरुष के अन्तर्द्वन्द्व के साथ–साथ कथानक की कड़ियाँ जुड़ती जाती हैं। डेढ़ वर्ष पूर्व उसके पडोस में एक फौजी कप्तान आकर बसा था। उसके ठाट बाट और रौब के कारण उसकी पत्नी धीर–धीरे उसकी ओर आकर्षित होने लगी। अन्त में उसने उस फौजी कप्तान के समक्ष आत्म–समर्पण कर दिया। पति–पत्नी एक छत के नीचे रहते हुए भी एक दूसरे से कोसों दूर हो गये। पत्नी मेम हो गई पति उसके व्यवहार से क्षुब्ध हो गया। वह प्रतिशोध की अग्नि में डूब जाता है वह कहता है–

"मेज पर बैठे यदि कोई छुरी मेरे हाथ में होती
मेरी उँगलियाँ ऐंठनी लगती।
मेरा अँग–अंग कभी गर्म होता कभी ठण्डा होता
मेरे होंठ लहू लुहान होकर रह जाते।"[364]

वह आत्म हत्या की बात सोचने लगता। इसी बीच रेल की सीटी की आवाज उसे सुनाई देती है। पुरुष की विचार–धारा बदल जाती है। वह आत्म–हत्या का विचार बदल देता है। रेलवे स्टेशन से लौटती पत्नी को देखकर वह कह उठता है–

"अब पता चलेगा
कैसे औरत अपने मर्द के साथ अन्याय करके
भटकती है इस दुनियाँ में

अब जब कि वह मर चुकी है

अब यह रोया करेगी

रात रात भर तारों को गिन गिनकर

अब यह सिसकियाँ भरा करेगी।''[365]

किन्तु दूसरे ही क्षण पत्नी के बिखरे बाल, वीरान माथा, पीले गाल और सूखे होठों को देखकर उसके मन में सहानुभूति उत्पन्न हो जाती है। यह सोचते हुए कि उसकी राजो को मर्द की जरूरत है, वह उसे अपना लेता है। वह कहता है–

''मै तो खण्डहर में भी, जोत जगा सकता हूँ

कमल के पत्तों पर पड़ी कीचड़ की छींट

मैं तुझे लाख पानियों से धो दूँगा

तू आजा तू आजा।''[366]

यही कथानक समाप्त हो जाता है।

चित्रांकन– यद्यपि 'ऊपर की मंजिल' में एक ही पात्र है किन्तु पुरुष और पत्नी दोनों के चरित्र का पूर्ण विकास हुआ है। नारी का हृदय कब क्या हो जाय, इसी मनोवैज्ञानिक तथ्य का चित्रण दुग्गल ने किया है। वह पत्नी जो सती साध्वी थी, पति की सेवा करना अपना पवित्र कर्तव्य मानती थी, तीन बच्चों की माँ होने के बाद एक अन्य पुरुष की ओर आकर्षित हो जाती है। पुरुष मनोहर निरखत नारी वाली कहावत पूर्ण चरितार्थ होती है। पुरुष विशाल हृदय का व्यक्ति है। अपने प्रारम्भिक जीवन की त्रुटियों का सुधार कर सदाचारी और विचारशील बन जाता है।

नाटकीयता की दृष्टि से 'ऊपर की मंजिल' अत्यन्त सफल है। अन्तर्द्वन्द्व गीतिनाट्य का प्राण होता है। इस दृष्टि से पूरा कथानक मानसिक संघर्ष के सहारे

से ही चला है। परित्यक्त पति के मन में क्या–क्या विचार और भावनाएँ उठती हैं इसका बड़ा ही हृदयग्राही चित्रण हुआ है।

चूँकि ये नाटक रेडियो से ही प्रकाशित हुए हैं और मंच पर भी खेले गए है, अतः जहाँ से अभिनय और ध्वनि के प्रभाव से परिपूर्ण हैं वहीं काव्यत्व की दृष्टि से भी सफल हैं।

वातावरण का सम्पूर्ण चित्रण इस ढंग से प्रस्तुत किया गया है कि एक पात्रीय संलाप के बाद भी अन्य पात्रों के चित्र स्पष्ट उभर कर सामने आये है। 'ऊपर की मंजिल' मे नाटकीयता, काव्य की रसमयता और कहानी का संयोजन कौशल सराहनीय है। प्रतीक विधान और बिम्ब योजना की दृष्टि से भी यह गीतिनाट्य सुन्दर है। एक बिम्बात्मक चित्रण देखिये–

"दबे पाँव पीछे आकर मैंने उसे चूमा

मुझे ऐसा लगा जैसे सिंगार की सुगन्ध

सारी की सारी उसके हाठों पर जमीं हुई हो।"[367]

गीतिनाट्य में व्यग्यात्मक कटूक्तियों को सुन्दर ढंग से व्यक्त किया गया है। जैसे अपनी पत्नी पर व्यग्य भरता हुआ पुरुष कहता है–

"मेम साहब स्टेशन गई हैं

(हँसता जाता है)

मेम साहब स्टेशन गई हैं

अपने प्रेम को विदा करने के लिए

(अभी हँस रहा है)

प्रेम खुद चला गया है

अपनी आशाओं की आहूति देने के लिए

(एकदम हँसी रोकते हुए)

मेम साहब स्टेशन गई है

अन्तिम बार अपनी मदमातें नयनों से

किसी पराये मर्द की पलकों में सपने जगाने के लिए।"[368]

उक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि लेखक ने नाटकीयता प्रदान करने के लिए उचित रंग–संकेतों का निर्देश दिया है।

अमानत–(कर्तार सिंह दुग्गल)– 'अमानत' भी 'ऊपर की मंजिल' की तरह का ही गीतिनाट्य है। जहाँ 'ऊपर की मंजिल' में नाटकीयता है, वहाँ अमानत में कवि ह्रदय अधिक बोला है। यह एक मनोवैज्ञानिक गीतिनाट्य है जिसमें एक मरणासन्न युवती का ह्रदयग्राही चित्रण है। जीवन से निराश युवती उन्माद और अवचेतन अवस्था में जो कुछ सोचती है उसी का शब्द चित्र 'अमानत' में वर्णित है। सत्रह वर्ष की नवयुवती क्या–क्या सपने संजोती है और जब उसके सपनों का संसार उड़ने लगता है, उसकी मनःस्थिति क्या होती है, दुग्गल ने इसे अच्छी तरह उभारा है। मृत्यु की अन्तिम घडियाँ गिन रही किशोरी को डॉ. ने जबाव दे दिया है। दवा बन्द है। घर के लोग उसे चारों तरफ से घेर कर खड़े हैं किशोरी सोचती है कि क्या कोई सत्रह साल की उम्र में मरता है। यह तो सपनों की आयु है, मदहोशी की आयु है–

"सत्रह साल की आयु

सब सुन्धियाँ एक युवती को ढूँढ़ती फिरती हैं

सब जुगनू आ छिंपते है चोटियों में।"[369]

वह अपने पिता से अपने जीवन को बचाने की प्रार्थना करती है। माँ से हाथों में मेंहदी रचना का अनुरोध करती है। वह सोचती है कि यदि वह एक वर्ष जिन्दा रहे तो उसका अपना संसार बच जाय। उसने अपने हाथ से परदे काढ़े हैं, चादरे काढ़े हैं उनका उपयोग नहीं कर पायी। उन्माद में वह कहती है कि कोई

उसे लेने आ रहा है। वह स्वर्ग की कल्पना करती है– हँसते हुए फूल, जिनकी झोली शवनम के मोतियों से भरी है। अलसाई नहरें, नन्हें–नन्हें हिरन, गोरी युवतियाँ, पहाड़। सब कुछ मनोरम है। लेकिन वह वहाँ नहीं रहना चाहती क्योंकि–

"वहाँ केवल फूल हैं फूल के साथ काँटे नहीं

वहाँ प्रयास नहीं, परिश्रम नहीं, पसीना नहीं

वहाँ कोई हल नहीं जोतता

वहाँ कोई बीज नहीं बोता

वहाँ धूल नहीं

मिट्टी उड़ उड़कर किसी की भोंहों पर नहीं पड़ती

जिसे कोई चुनरी के पल्ले के पास बैठकर पोछ।"[370]

उसकी विचारधारा बदलती है, वह सोचती है कि यदि विलासत से कोई इजैक्शन आ जाय, तो वह बच सकती है। यदि वह मर गइ तो उसके रेशम के बाल जल जायेंगे फूल की पत्तियों से होठ जल जायेगे, भाग्य की रेखायें जल जायेंगी।

वह माँ से अनुरोध करती है कि मरने के बाद मेरे कपड़े किसी को दे देना डाकिए को धारी दार सूट दे देना। अब वह जिस उपन्यास को पढ़ रही है वह पूरा नहीं हो पायेगा। उसे लगता है, जैसे उसका प्रियतम उसे लेने आ गया है। उसके मन में शान्ति छा जाती है और अन्त में अपने प्राण त्याग देती है।

सम्पूर्ण गीतिनाट्य भावनाओं के हिचकोलों से आल्होड़ित विलोड़ित है। नव यौवन की निगाहों में प्रकृति का चित्रण देखिए–

"हरी मखमली घास में लिपटी हुई धरती

फूल द्वार पालों की तरह खड़े हुए

हँस रहे हैं

फूल जिनकी झोली शबनम के मोतियों से भरी है

साफ उज्ज्वल, शीतल गरम फूटते हुए झरने

दूध जैसी सफेद आग वाली उछलती कूदती नाचती

गिरती जल धाराएँ।"[371]

ऐसा लगता है जेसे सारा का सारा दृश्य सामने खड़ा हुआ है। ममता, स्नेह, और दुलार के परिवेश में पली कथा–वस्तु बड़ी मधुर और हृदयग्राही है।

'अमानत' में न तो किसी चरित्र का विकास हुआ है और न विशेष नाटकीयता का निर्वाह ही। उसमे काव्यत्व अधिक है। 'ऊपर की मंजिल' की तरह यह गीतिनाट्य भी रेडियो पर सफलता पूर्वक प्रस्तुत हुआ है।

एक पात्रीय गीतिनाट्य में प्रायः खतरा रहता है कि वह कही काव्य बनकर न रह जाय किन्तु 'अमानत' में ऐसी बात नहीं है। उसमें जहाँ काव्यमयता और भावुकता है वहीं उसमें नाटकीयता भी। ये नाटक दृश्य एवं श्रव्य दोनों रूप में खरे उतरते हैं यही इनकी सफलता का रहस्य है।"[372]

भाषा की काव्यमयता, कथा संगठन और कथनों की सापेक्षता के कारण ये गीतिनाट्य सहज आकर्षक हो गये है। लालसा का एक काव्यात्मक चित्रण देखिए–

"ऊषा की लालिमा को जी भर कर देख तो लेती

रक्ताभ सांयकाल से मैं कोई सम्बन्ध तो जोड़ लेती

ठंडे–ठंडे झरनों में पैर लटका कर बैठी रहती, बैठी रहती

कलियों के खिलने फूलने मुरझाने

और मर जाने का रहस्य तो जान लेती।"[373]

कुल मिलाकर दुग्गल के ये गीतिनाट्य हिन्दी साहित्य में अभिनव हैं। अभी इस प्रकार के गीतनाट्यों की वृद्धि की आशा है।

सूखा सरोवर–(डा. लक्ष्मीनारायण लाल)– 'सूखा सरोवर' डा. लक्ष्मीनारायण लाल द्वारा रचित पूर्ण गीतिनाट्य है, जिसे लाल जी ने लोकधर्मी गाथा नाट्य की संज्ञा दी है।"[374]

द्वितीय अंक पूरा का पूरा अन्तराल के रूप में प्रस्तुत किया गया है। गीतिनाट्यों को 'लोक मिथ' के माध्यम से प्रस्तुत करने वाला यह प्रथम गीतिनाट्य है। प्रेम के आभाव में देश के जीवन रूपी सरोवर के सूख जाने की घटना को लोकगाथा के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। डा. लाल ने प्रारम्भ में एक गीत दिया है–

"खिरकी बइठ राजा रोवे, तू रानी पुकारे
हो राजा मोरे बिन संतन कुल हीन, हम होवे जोगी
राति भरि निनियाँ न आवै, हँसिन बन पिहुँकूँ
राजा चनन लगाए बड़ी दूर
महक नहीं आवै।"[375]

यही लोकगीत 'सूखा सरोवर' कथानक का आधार है। लेखक ने उपक्रम में इस गीति से सम्बन्धित एक कहानी दी है जिसका सार यह था कि– नीलम देश वाली एक नगरी में एक राजा था। उस नगरी में एक ऐसा सरोवर था जिसमें राजहंस सदा मोती चुगा करत थे। कंचन की नाव, हीरा मोती का मस्तूल, चाँद की डोर और मूँगे की डाँड़ लेकर राजा–रानी लेकर उसमें विहार किया करते थे। जल परियाँ उसका संचालन करती थीं। किन्तु अचानक एक दिन सरोवर सूख गया। चारों और आंतक फैल गया। सरोवर देवता से प्रार्थना की गई, तब उसने बताया "अगर कोई सतवंती नार मेरे सरोवर में मंगल घट डाले तो मैं फिर पानी दूँगा।" भला रानी से बढ़कर कौन सतवंती नार हो सकती थी। रानी ने मंगल घट डाला, पर सरोवर में पानी नहीं आया। क्रोधित होकर राजा ने रानी को मरवा डाला। फिर

उसी रानी का एक चेरी ने मंगल घट डाला तो सरोवर में पानी आ गया। प्रसन्न होकर राजा ने उस चेरी को ही रानी बना लिया। अब पहली रानी राज–हंसिन बन गई और गाने लगी–"रात भर निनियाँ न आवे, हँसिन बन पिहुकूँ" आदि। इसी कहानी और गीति की पृष्ठभूमि पर लेखक ने एक हृदयग्राही एन्द्रिजालिक गीतिनाट्य प्रस्तुत किया है, जिसकी रेखाएँ मानस में गहरे बैठ जाती हैं। गीत के उडन खटोले पर बैठ कथानक हृदय के गहरे अतस में समा जाता है।

प्रथम अंक में सरोवर के सूखने से उत्पन्न भयाक्रान्त स्थित का चित्रण किया गया है। सरोवर सूखने लगता है, पंछी उसे छोड़कर उड़ जाते है, पर हसा–हंसी नहीं उड़ते–

"पंछी उड़े आकाश, लगा सरोवर सूखने,

तीर लगाए आस, हंसी हंसी न उड़े।"

एक वृद्ध पुरुष आकर कहता है कि सांच ही सरोवर की मर्यादा थी, जिसे राजा ने रहने नहीं दिया। उसके कथन से क्रोधित हो राजपुरोहित उसे बन्दी बना लेता है। इसी बीच राज बन्दी ग्रह टूटने का समाचार मिलता है जिसे सुनकर पुरोहित घबड़ा जाता है और वृद्ध को छोड़कर चला जाता है।

सरोवर के सूखने से लोग प्यासे मर उठे हैं। चारो और त्राहि–त्राहि मच जाती है एक सन्यासी आकर नगरी के लोगों को सलाह देता है कि सभी मिलकर राजा से प्रार्थना करे कि वह हमें पानी दे। सभी पानी दो पानी दो करके चीख उठते हैं राजा आता है। सन्यासी राजा का सरोवर के सम्मुख नतमस्तक होने की सलाह देता है। सन्यासी सहित सभी सरोवर के देवता से प्रार्थना करते है। अन्त में देवता प्रगट होते हैं और बताते है कि मैने इस नगरी के प्रथम राजा को ये वचन दिया था कि जिस क्षण कोई व्यक्ति यहाँ आत्त हत्या करेगा, उसी क्षण मैं इस सरोवर का जीवन वापस ले लूँगा।

सब अवाक रह जाते है। आखिर आत्म हत्या किसने की। देवता बताते है कि एक प्रेमी की प्रेमिका ने आत्म हत्या की है। यह प्रेमिका वर्तमान राजा की पुत्री राजकुमारी थी जिसे उसके प्रेमी से विवाह नहीं करने दिया गया। राजा ने अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए राजकुमारी की शादी किसी अन्य से करने का निश्चय किया था। जिससे दुःखी होकर राजकुमारी सरोवर में डूबकर आत्म हत्या कर लेती है।

द्वितीय दृश्य अन्तराल के रूप में है, जिसमें आत्म हत्या से पूर्व की घअनाओं का चित्रण है। नगरी का राजा–जो प्रथम दृश्य का सन्यासी है, तथा छोटे राजा में संघर्ष होता है। छोटा राजा राज्य पर अधिकार करने हेतु राजा को मारने का प्रयत्न करता है। वह धोखे से राजा पर वार करता है, जिसे बचाकर राजा छोटे राजा को पकड़कर उठा लेता है और उसे सिंहासन पर पटक देता है। किन्तु उसका बध न कर राजा राज्य छोड़कर सन्यासी हो जाता है। प्रजा नये राजा के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करती। राज्य के विद्रोह को दबाने के लिए छोटा राजा पुरोहित से विचार विमर्श कर यह निर्णय लेता है कि मैनापुरी के राजा से सैनिक संधि कर ली जाय, इसके बदले राजकुमारी की शादी मैनापुरी के राजकुमार के साथ कर लीं जाय। राजकुमारी इसे स्वीकार नहीं करती है। राजा छल पूर्वक उसका डोला दे देना चहता है। परन्तु एक अनुपम पुरुष उसकी रक्षा करता है। अन्त में दुःखी होकर राजकुमारी सरोवर में डूबकर आत्म–हत्या कर लेती है और सरोवर सूख जाता है। तृतीय दृश्य में सरोवर में पुनः जलावरण की कथा है। राजकुमारी की भटकती आत्मा नगरी की गली–गली कूँचे–कूँचे में डोलती फिरती है। वह गाती है–

"मिलन होय एक बार

पलकन धोऊँ पग पिया

कर सोलह सिंगार

चन्दन चिता संवार के।''[376]

राज उस युवक को बन्दी बना लेता है। सन्यासी उसकी रक्षा करता है। सरोवर का देवता कहता है कि पानी देने की एक ही शर्त है, वह है किसी प्रतिनिधि की बलि दे। लोग राजा की बलि देना चाहते है, पर वह भाग जाता है। एक पागल अपनी बलि दे देता है, पर पानी नहीं आता। इसक पश्चात सन्यासी अपनी बलि देना चाहता हैं। किन्तु इससे पूर्व राजकुमारी का प्रेमी अपनी बलि दे देता है। सरोवर में पानी आ जाता हैं। चारों ओर प्रसन्नता की लहर दौड़ जाती है। सन्यासी कहता है कि नगर का वास्तविक प्रतिनिधि वही था जिसकी प्रिया हमसें छीन ली थी। अन्त में सब प्रतिज्ञा करते है कि भविष्य में मर्यादा का पालन करेंगे। भटकती आत्मा का पुरुष की आत्मा का मिलन हो जाता है।

सरोवर क्या है? अचानक उसका सूख जाना किस घटना का सूचक है? इसका उत्तर देते हुए डा. लाल लिखते हैं कि– सरोवर तो हमी हैं, हममें ही वह सरोवर। ''उड़ चला हंस आपने मुलुक का अब यहाँ तुमरो कोई नहीं।'' वह सरोवर, वह अन्तस जिसके नियंता उपभोक्ता हम ही हैं।''[377]

वास्तव में हमारा हृदय एक सरोवर है उसमें नेह का जल भरा रहता है। जब मन से 'सत' चला जाता है, तब हृदय सरोवर सूख जाता है। लेखक ने ललित लेखनी से कोमल शब्दों में 'सूखा सरोवर' की जो गाथा लिखी है, उसके सूत्र बड़े ही मनोहारी हैं।

चरित्रांकन की दृष्टि से भी सूखा सरोवर बहुत सुन्दर है। उसमें कुल सात पात्र हैं। इसके अतिरिक्त कुछ सैनिक तथा नागरिक भी हैं। जो नाटक में सक्रिय भाग लेते हैं। प्रधान पात्रों में सन्यासी (अन्तराल दृश्यः अंक दो का असली राजा) नगरी का वर्तमान राजा, पुरोहित, पागल, राजकुमारी और उसका प्रेमी है।

सन्यासी, नगर का असली राजा है, जो छोटे राजा के षड़यन्त्रों से ऊबकर सन्यासी बन जाता है। वह निडर और जनता का हितैषी है। जनता का दुख दूर करने के लिए उसका मार्ग दर्शन करता है। उसी के प्रयत्न से सरोवर का देवता प्रगट होकर सब कुछ बताता है। बहं धर्मान्धता और आडम्बर को पसन्द नहीं करता वह कायरता और हीनता विरोधी है, तभी तो वह कहता है–

"मत बोलो दीनता के स्वर

अन्तस कलंकित होगा।"[378]

अन्तराल में सन्यासी और राजा के रूप में प्रस्तुत किया गया है छोटे राजा के समस्त षड़यन्त्रों को वह भंग कर देता है। सही अर्थों में वह गीतिनाट्य का नायक है। अन्त फल की प्राप्ति उसे ही होती है। छोटा राजा खलनायक के रूप में प्रस्तुत किय गया है वह राजगद्दी प्राप्त करने के लिए अपने बड़े भाई का बध करना चाहता है। अपने अस्तित्व की रक्षा करने के लिए वह मैनापुरी के राजा में दुरभि सन्धि करता है जो उसकी कायरता का परिचायक है। वह भीरु है। सरोवर द्वारा प्रतिनिधि की बलि माँगने पर वह भाग जाता है।

पुरोहित छोटे राजा का अन्तरंग है। उसकी चापलूसी में ही वह अपना गौरव समझता है। उसी के सहयोग से राजा अपनी कन्या को मैनापुरी के शासन को सोपना चाहता है। एक नागरिक शब्दों में–

"धर्म के पीछे राजनीति है तू

पुरोहित नहीं, राज का वाहन है तू।"

पुरोहित प्रपंची है। जनता को पेड़ के पीछे छिप कर गुमराह करना चाहता है। राजकुमारी और नवयुवक को प्रेमी युगल के रूप में चित्रित किया गया है। दोनों में सच्चा प्यार है और इसके लिए राजकुमारी मैनापुरी के राजा का वैभव भी ठुकरा देती है। पागल के मुँह से कटु सत्य की व्यख्या हुई है। 'सूखा सरोवर' के

संवाद गीतिनाट्य के सर्वथा अनुकूल और प्रभावशाली है। कहीं लम्बे और उबा देने वाले संवाद नहीं। कथोपकथनों में गति क्षिप्रता और रंगमंचीय समस्त विशेषताएँ हैं। यद्यपि लेखक ने लिखा है कि–'सच' मैंने कभी कविता नहीं लिखी और आज के मुक्त छन्द, मुक्त वृत्त, वृत्तगंधी आदि को क्या जानूँ।''[379]

परन्तु 'सूखा सरोवर' के सम्वाद वृत्तगंधी और भावों को व्यक्त करने में पूर्ण समक्ष है। प्रायः गीतिनाट्यों की अभिव्यक्ति के समय लम्बे लम्बे बोझिल सम्वाद आ जाते हैं, किन्तु लाल इस आरोप से पूर्ण मुक्त हैं।

लक्ष्मीनारायण लाल रंगमंचीय कला से पूर्ण परिचित है अतः रंग निर्देशक, संकेतों और मंच के माध्यम से 'सूखा सरोवर' को अभिनेय बनाने का प्रयत्न किया है। स्वर के लिए, वरुणा से, डाँटता सात्रस्ते होकर, समवेत, स्वर के लिए, करुणा से डाँटता सा त्रस्त होकर, समवेत, हँसता सा निःश्वांस लेकर, क्रोधित होकर, श्रद्धानत आदि संकेत दिये गये हैं ताकि उसी स्वर से सम्वाद बोले जा सकें।

मंचीय व्यवस्था के सम्बन्ध में भी बहुत निर्देश दिये गये है। प्रकाश व्यवस्था के सम्बन्ध में वे लिखते है–'समूचे दृश्य पर अन्धकार की एक पर्त, मंच पर प्रायः कुछ भी नहीं दीखता–धीरे–धीरे सारा प्रकाश बहकर सरोवर की ओर चला जाता है। वहाँ एकाएक एक तीव्र आलोक फैलता है......... मंच पर फिर वही प्रकाश–धीरे–धीरे मंच का प्रकाश लुप्त हो जाता है। सरोवर की कमल शैय्या पर नीला प्रकाश फैलता है आदि।

ध्वनि के सम्बन्ध में भी स्पष्ट निर्देश दिये गये हैं। जैसे– क्षीण संगीत की भूमिका से धीर–धीरे पर्दा खुलता है– एकाएक पृष्ठभूमि से हँसी की एक रेखा खिंचती है–पृष्ठभूमि पर एक कोलाहल उभरता है, पानी स्वर ऊपर फैलकर डूब जाते.............' पलकन धोऊँ पग पिया 'बार–बार उभरकर खोता है– जैसे कोई प्रतिध्वनि हो।'

पात्रों के कायिक अभिनय के लिए भी 'सूखा सरोवर' में निर्देश दिये गये है। जैसे—''बार बचाकर छोटे राजा को पकड़ लेते हैं और उसका खड्ग छीन लेते हैं— बाहों में कस कर ऐसे अठा लेते है किसी खिलाड़ी के हाथों में कंदुक आ गया है— सिंहासन पर राजा अचेतावस्था में पड़ा है।''

वास्तव में' सूखा सरोवर' पूर्ण सफल अभिनेय गीतिनाट्य है। 'सूखा सरोवर' में संगीत बड़ा ही कारुणिक और हृदयग्राही है। प्रारम्भ का गीत 'पंछी उडे आकाश, लागा सरोवर सूखने' जहाँ प्रभावशाली है, वहीं 'पलकन धोऊँ पगपिया' से रोमांच हो जाता है। लेखक ने लोकगीतों की धुनि पर संगीत दिया है। वाद्य संगीत के साथ— साथ गाये जाने पर इनका स्थायी प्रभाव पड़ सकता है। गीतिनाट्य के बिम्ब बड़े सुन्दर है। एक दृश्य देखिए—

''मैं सन्यासी हूँ

मेरे माथे पर कितनी रेखाएँ

झूरियाँ जितनी शरीर में

जितने चिह्न, जितने दाग

ऊपर हैं मेरे

उनसे दुगने भीतर हैं।''[380]

अन्तर्द्वन्द्व और भावावेश के अनेक प्रसंग 'सूखा—सरोवर में आये हैं। उसमें हृदय की तड़पन है, मन की अकुलाहट है, भावों की छटपटाहट है। प्रेमी युगल की व्याकुल और हृदय के द्वन्द्व को कौशल के साथ उभारा गया है। प्रेमी और भटकती आत्मा का वार्तालाप देखिये—

पुरुष—'प्रिये

उस रात सेजा पर

बाहों की छाया मिली थी मुझे

अणु अणु से कमल की गंध आ रही थी

हाथों में मेंहदी रची थी

उंगली में चंदन की वास थी

सब परवीणा के तार थे खिंचे

मैंने चूमी थीं उसकी सुधि।

आत्म– ओह!

तभी आँसू थे सेजा पर

सब कुछ भीगा था भोर का

मेरी पायल

मेखला मेरी

बैंदी, कंठहार, आंचल, घूँघट और सीमंत पर

अंगराग चंदन सा।

ओह! वे आँसू थे प्रिय के।

आज मैं उन्हें चूमूँगी

भर लूँगी नयन में

कस लूँगी बाहुओं में।''[381]

भावुकता का इससे सुन्दर चित्रण और क्या होगा इसी प्रकार के कई चित्र 'सूखा–सरोवर में हैं।''[382] भावुकता के साथ–साथ काव्यात्मकता की दृष्टि से भी' सूखा सरोवर' सुन्दर है। घटनाओं और अभिव्यक्तियों को इस प्रकार प्रगट किया है कि पाठक सहज ही द्रवीभूत हो जाता है। देखिए– सरोवर सूखने का काव्यात्मक चित्रण–

''जिस क्षण सरोवर सूख रहा था

सुना और देखा देखा था मैंने

वह बन्द कमल रोये थे कैसे

तड़पी थी कलियाँ पत्रों पर

कुमुदिनी कूँहकी थी कमलों मे

खड़ा तीर मैं देख रहा था

माथ झुकांए घँसा सा रहा धँसा जा रहा

नीर देवता।''

वास्तव में दो–तीन गीतिनाट्यों को छोड़कर ऐसे गीतिनाट्य बहुत कम लिखे गये हैं। इसकी गिनती इस दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ गीतिनाट्यों में की जानी चाहिए।

उर्वशी–(रामधारी सिंह दिनकर)– दिनकर कृत 'उर्वशी' एक मात्र ऐसा गीतिनाट्य है जिसे भारत के सर्वोत्त पुरुस्कार से सम्मानित किया गया है। यह एक ऐसी अद्भुत कृति है जिसकी एक ओर समालोचको, मनीषियों और दार्शनिकों ने भूरि–भूरि प्रशंसा की वहीं इसके विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रिया भी हुई है। जहाँ आलोचकों ने इसकी गणना 'दशाब्द– (1061–70) की सर्वाधिक महत्वपूर्ण काव्य कृतियों में की है।''[383]

वहीं कुछ आलोचकों को इसमें कुल मिलाकर 'अनावश्यक और अनर्गल' की मात्रा अधिक दिखाई देती है। श्री नेमीचन्द जैन के विचार से उर्वशी में 'आंतरिक असंगति अस्पष्टता, उद्देश्य तथा उसके कार्यान्वित होने में शिथिलता, भागवत एवं रूपगत दोनो प्रकार की मिथ्या स्फीति, छोटी बात को बढ़ा कर कहने, भारी भरकम बनाने और विस्तार देने की प्रवृत्ति इतनी अधिक है कि उसकी बहुत सी मार्मिकता और सुन्दरता मरुप्रदेश की धारा की भाँति विलीन रहती है।''[384]

'उर्वशी' श्रृंगार प्रधान, दार्शनिक और कामाध्यात्मक' पूर्ण गीतिनाट्य है। कवि ने काम जन्य भावनाओं और इच्छाओं को इस प्रका संश्लिष्ट किया है कि वह

काम दर्शन का अनूठा ग्रन्थ बन गया है। काम जन्य स्फुरणों प्रेणओं तथा सुखों का अनन्त व्यापी प्रसार देकर उन्हें उदान्त बना दिया ह। काम की निराकार झंकृतियों से मण्डित 'उर्वशी' में आसक्तियों के बीच अनासक्ति और स्पृहाओं में मध्य निस्पृहता का ऐसा सुन्दर समन्वय हुआ है कि काम और धर्म, काम और अर्थ, काम और दर्शन एवं काम और सुख एकाकार हो गये हैं।

काव्यरूप—'उर्वशी' का रचना शिल्प इतना संश्लिष्ट है कि उसके काव्य रूप के सम्बन्ध में विविध मत व्यक्त किये गये है। डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे काव्य माना है।''[385] तो नरेन्द्र शर्मा इसे पथ रूपक की संज्ञा देते हैं।''[386] डा. विजेन्द्र नारायण सिंह को 'उर्वशी' का नाटकीय आवतरण छलना मात्र लगता है।''[387] वहीं डा.सावित्री सिन्हा के विचार में उर्वशी नाटक भी है और कविता भी है।''[388] डा. दशरथ ओझा ने बिना कारण बताये ही इसे गीतिनाट्य की संज्ञा दी है।''[389] उक्त विभिन्न मतों के परिप्रेक्ष्य में हमे मूल्यताः तीन प्रश्नों पर विचार करना है—

1. क्या उर्वशी काव्य है?
2. क्या वह नाटक है ? अथवा
3. मिश्र विधा अर्थात गीतिनाट्य है?

सामान्यतः उर्वशी को काव्य कह दिया जाता है, लेकिन उसके स्वरूप और दृष्टिपात करने के पश्चात उसे काव्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती। काव्य सर्गबद्ध होता है, लेकिन 'उर्वशी' सर्गबद्ध नहीं है। काव्य कवि के शब्दों में लिखा जाता है। अर्थात कथानक कवि के व्याख्यात्मक चित्रण के साथ आगे बढ़ता है। लेकिन 'उर्वशी' का कथानक वाद—विवाद के माध्यम से विकसित हुआ है। अतः उसे काव्य स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

सरसरी दृष्टि से देखने पर 'उर्वशी' नाटक प्रतीत होती है। नाटक में अंक विभाजन होता है वह उर्वशी में भी है। नाटक कथोपकथनत्मक शैली में लिखा

जाता है, इसमें कवि स्वयं अपनी ओर से कुछ नहीं कहता। उसमें रंगमंचीय निर्देश दिये जाते हैं। इस दृष्टि से भी 'उर्वशी' नाटक ठहरती है। उसमें अर्थ प्राकृतियाँ और कार्यावस्थाओं का ध्यान रखा गया है। सूत्रधार वस्तु, बीज, मुख या पात्र की सूचना देता है। वह भारती वृत्ति का सहारा लेकर बसंतादि ऋतु का वर्णन करता है। लेखक ने अंको के मध्य में पात्रों के आवागमन क्रिया कलाप या मनःस्थिति सम्बन्धी टिप्पणियाँ दी है। पुरुरवा की प्रारब्ध को 'नेपथ्य' में बोलना यह सिद्ध करता है कि दिनकर जी इसे नाटक का स्वरूप प्रदान करना चाहते थे।

इतना सब होते हुए भी 'उर्वशी' को बेझिझक नाटक नहीं कहा जा सकता। उसमें सबसें बड़ी बाधा है उसकी अभिनेयता। लम्बे–लम्बे नीरस सम्वाद और उनका काव्य जैसा स्वरूप देखकर आलोचकों काव्य' का भ्रम हो जाता है वास्तव में उर्वशी मिश्रकाव्य विधा है और इस दृष्टि से उसे गीतिनाट्य कहना ही उचित है। गीतिनाट्य के काव्यत्व और नाट्यत्व दोनों का समावेश है। गीतिनाट्य के अन्तद्वन्द्व, वैयक्तिकता और भावुकता का उसमें पूर्ण निर्वाह हुआ है। उसमें गीतिनृत्य दोनों प्रकार के अभिनय का अवसर है। इस दृष्टि से उर्वशी सफल गीतिनाट्य का स्वरूप प्राप्त कर लेती है।

अब प्रश्न यह रह जाता है कि 'उर्वशी' किस प्रकार का गीतिनाट्य है । इस दृष्टि से उसे निर्विवाद के रूप से पाठ्य गीतिनाट्य कहा जा सकता है। क्योंकि इसका सफल अभिनय मंच पर सम्भव नहीं। वास्तव में 'उर्वशी' में काव्य और नाट्य रूप एकाकार नहीं हो सके। वे एक दूसरे से कतराते प्रतीत होते है। फील पाँवी कथोपकथन भी गीतिनाट्य को असफलता की ओर ले जाते है।

प्रेरणा–'उर्वशी' गीतिनाट्य की प्रेरणा लेखक को कहाँ से मिली, इसके सम्बन्ध में स्वयं दिनकर जी ने कुछ भी नहीं कहा। वह केवल इतना लिखते हैं कि– "उस प्रेरणा पर तो मैने कुछ भी नहीं कहा, जिसने आठ वर्ष तक ग्रसित

रहकर यह काव्य मुझसे लिखवा लिया। अकथनीय विषय शायद अपने से अलग करके मैं उसे नहीं देख सकता, शायद वह अलिखित रह गई, शायद वह इस पुस्तक में व्याप्त है''[390]

इस कथन से यह ध्वनि निकलती है कि 'उर्वशी' कवि के मन में उठने वाली काम जनित भावनाओं का परिणाम है। नर–नारी के सनातन सम्बन्ध को शब्द बद्ध करने का प्रयत्न किया गया है। नर नारी का सम्बन्ध मात्र जैविक या शारीरिक नहीं है। नारी का संधान पुरुष दैहिक चेतना से परे प्रेम की दुर्गम समाधि में पहुँच कर पाता है और पुरुष का सम्बन्ध शरीर के धरातल पर नहीं रहता, उससे मिलने की व्याकुलता में नारी–अंग संज्ञा के पार पहुँचना चाहती है। अतः उर्वशी में कथानक शरीरिक सम्बन्धों से लेकर मन के गुह्य गहन लोकों तक फैला हुआ है।''

उर्वशी का कथानक ऋग्वेद से लेकर 'उर्वशी' तक विविध रूपों में काव्य और साहित्य का विषय बनता रहा है। ऋग्वेद 'शतपथ ब्राह्मण' 'श्री मद्‌भगवत', 'मत्स्य पुराण', 'स्कन्द पुराण' आदि प्रमुख ग्रन्थों में उर्वशी की गाथा बिखरी पड़ी है। इन सभी से कवि को प्रेरणा मिली होगी, लेकिन प्रधान प्रेरणा कालिदास के 'विक्रमोर्वशीयम्' नाटक से मिली है। 'विक्रमोर्वशीयम्' और दिनकर की उर्वशी की कथावस्तु में पर्याप्त साम्य है। दोनों में पाँच अंक है, रम्भा, मेनका, चित्रलेखा, ओशीनरी, मदनिका, सहजन्या, आयु और च्यवन पात्र दोनों में ही है। दैत्य बन्धन से उर्वशी का छुटकारा और तज्जन्य प्रेम को दोनों में स्थान दिया गया है। दोनो में ओशीनरी चन्द्राराधना द्वारा पति प्रेम जीतने की चेष्टा करती है। हाँ कुछ मौलिक परिवर्तन दिनकर ने किये हैं। कालिदास की सत्यवती दिनकर की सुकन्या है। दिनकर ने रम्भा का उर्वशी के पुरुषा विषियक आकर्षण से पूर्णतः अनभिज्ञ प्रदर्शित किया है, जब कि 'विक्रमोर्वशीयम्' व उर्वशी की विभिन्न सखी है। अतः यह निश्चय है कि दिनकर पर भी 'विक्रमोर्वशीयम्' का प्रभाव पड़ा है।

लेकिन इसके अतिरिक्त और भी बहुत से ग्रन्थ और विचारक हैं जो 'उर्वशी' के प्रेरणा स्रोत बने। इनमें महर्षि अरविन्द और गुरुदेव रवीनद्रनाथ के नाम उल्लेखनीय हैं। स्वयं दिनकर के शब्दों में– 'उर्वशी काव्य में एक स्थान पर रवीन्द्र नाथ की 'पतिता' कविता की छाप पड़ी है, किन्तु जहाँ तक रवीन्द्र क उर्वशी का प्रश्न है वह रवीन्द्र की उर्वशी पर स्चिनवर्न का आँका जाता है।''[391]

अरविन्द का खण्ड काव्य 'उर्वशी' का प्रभाव भी दिनकर जी पर पड़ा है। 'अतीन्द्रियता की ज्योति' दोनों में है। अरविन्द ने 'उर्वशी' को रहस्यवादी भावनाओं में लपेट दिया है। वह शायद मनुष्य के आध्यात्मिक आदर्श का प्रतिरूप है, जिसके संधान में मनुष्य संसार के वैभवों का त्याग कर देता है। मैने पुरुरवा को जो सन्यास दिलाया है उसके भीतर भी कोई ऐसा संकेत है।''[392]

डा. विमल कुमार जैन ने उर्वशी के प्रतिपाद्य को बौद्ध साधकों में सहज प्रवृत्ति शाक्त मत की प्रवृत्त भावना, 'वैष्णवों की सहज भावना' से सम्बन्धित किया है।''[393]उससे प्रतीत होता है कि उर्वशी की रचना में इनसे भी प्रेरणा ली गई है।

पाश्चात्य दर्शन से भी दिनकर की उर्वशी प्रभावित है। काम–आध्यात्म की प्रेरणा दिनकर जी को पाश्चात्य विचारक वर्टेण्ड रसल और डी. एच. लारेन्स से मिली है। रसेल की 'मेरिज़ एण्ड मारत्स' तथा डी. एच. लोरन्स का उपन्यास 'वीमेन इन लव' इस विचारधारा के प्रधान आधार स्तम्भ हैं। राजपाल ने इन दोनों का तुलनात्मक अध्ययन–करके यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि उक्त दोनों ग्रन्थों की विचारधारा और भावभूमि ज्यों की त्यो उर्वशी में अवतरित हुई है।''[394]

दिनकर ने उर्वशी की रचना में 'शिवपुराण', कामसूत्र और 'नागर सर्वस्व' आदि कृतियों से प्रेरणा ली है। तिलक के 'श्रीमदगीतारहस्य' या 'कर्म योग शास्त्र' से भी प्रेरणा मिली है।

यह तो रही 'उर्वशी' के भाव पक्ष की बात उर्वशी को गीतिनाट्य का स्वरूप

प्रदान करने की प्रेरणा कहाँ से मिली, इस प्रश्न पर भी विचार कर लिया जाय। गीतिनाट्य की परम्परा आधुनिक काल में निरन्तर प्रगति कर रही थी। 'अंधायुग' जैसे गीतिनाट्यों की रचना हो चुकी थी। स्वयं दिनकर ने 'मगध महिमा' आदि लिख कर इस विधा को अपनाया था। इसी कथानक को लेकर 1958 में आचार्य जानकी बल्लभ शास्त्री 'उर्वशी' नामक गीतिनाट्य की रचना कर चुके थे। उदय शंकर भट्ट ने 'विक्रमोर्वशीय' नामक काव्य लिखा था। दिनकर जी से यह सब छिपा नहीं था। मानव के मानसिक द्वन्द्व का जितना सुन्दर वर्णन गीतिनाट्य के माध्यम से किया जा सकता है उतना सामान्य काव्य के माध्यम से नहीं। इसलिए उन्होंने गीतिनाट्य के शिल्प को अपनाया होगा। शिल्प को प्रभावित करने में रेडियो ने भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। जैसा कि स्वयं दिनकर जी ने रणधीर राँग्रा को बताया है कि उर्वशी की रचना का श्री गणेश रेडियो रूपक के रूप में किया था।''[395] इस प्रकार स्पष्ट है कि दिनकर की उर्वशी दिनकर के गहन चिन्तन मनन और मध्ययन का परिणाम है।

कथानक—'उर्वशी' का समस्त कथानक पाँच अंको में विभक्त किया गया है अंकों का दृश्यों में विभाजन नहीं है। प्रथम दो अंक विक्रमोर्वशीयम्' के श्लोकों से प्रारम्भ होते हैं। पुरुरवा की राजधानी प्रतिष्ठानुसार के कानन में अप्सरायें स्वर्ग से उतरती हैं, ऐसा लगता है जैसे प्रकृति और परियों का सौन्दर्य एकाकार हो गया है। ज्योत्सना के ऊपर मानो ज्योत्सना छाई जाती हो। नटी को लगता है मानों—

''उड़ी आ रही छुटकुसुम—वल्लियाँ कल्प—कानन से

था देवों की वीणा की रागिनियाँ भटक रहीं है।''[396]

सहजन्या, रम्भा और मेनका का अवतरण होता है। उनकी बातचीत से पता लगता है कि उर्वशी को मिट्टी के मोहन पुरुरवा से प्रेम हो गया है। सहजन्या संकेत देती है कि एक बार एक दैत्य उर्वशी का अपहरण करके भाग खड़ा हुआ तब

पुरुरवा ने उसकी रक्षा की थी। तभी से 'देवों के शोणित में मधुमय आग लगाने वाली' उर्वशी को पुरुरवा से प्रेम हो गया है। यहाँ प्रेम पर चर्चा करते हुए रम्भा बताती है कि जहाँ स्वर्ग का प्रेम पर उन्मुक्त और वायवी है, वहाँ पृथ्वी का प्रेम मांसल और मर्यादा से बँधा हुआ है। पृथ्वी पर–

"नहीं पुरुष की अलम्, वहाँ फल भी जनता होता है

जो भी करती प्रेम उसे, माता बनना होता है।"[397]

इसी समय चित्रलेखा सूचना देती है कि वह उर्वशी को पुरुरवा से मिलने हेतु राजा के उपवन में छोड़ आई है। महाराजा को भी यह पता लगा है कि उर्वशी उनके उपवन में है। प्रभात होन पर अप्सरायें उड़ जाती है।

द्वितीय अंक में पुरुरवा की महारानी ओशोनरी के विरह जन्य दुःख और पति की उसके प्रति उदासीनता का वर्णन है वह आत्म हत्या करने की सोचती है, किन्तु यह जानकर कि राजा गन्ध मादन पर्वत से लौटकर नैमिषेय यज्ञ करेंगे, वह अपना इराद बदल देती है। रानी अप्सराओं को बुरा–भला कहती है क्योंकि –पुरुषों का दे मोद प्राण वे वधुओं के लेती हैं।

शायद यह मानव की मूल प्रवृत्ति है कि जो अलम्य और दूर होता है, मन उसी को अधिक चाहता है। काम भवना एक नारी से पूर्ण नहीं होती। कुंचकी समाचार देती है कि राजा अभी गंधमादक पर्वत पर ही रहेंगे।

तृतीय अंक उर्वशी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंक है। जिस प्रकार दिनकर के कुरुक्षेत्र की पूर्णता छठे सर्ग में होती है, उसी प्रकार उर्वशी का तृतीय अंक उसे पूर्णता पहुँचाता है। यह अंक उर्वशी का मेरुदण्ड है। वह उर्वशी का केन्द्र ही नहीं सार भाग है। इस अंक का सम्बन्ध गंध मादक पर्वत से है, जहाँ प्रणयोन्मत पुरुरवा उर्वशी अभिसार, द्वन्द्व और पीड़ा तथा प्रेम के गुह्यलोकों के' अनुसंधान में व्यस्त है।

प्रणय बेसुध प्रेमियों को दिन रात व्यतीत होते हुए प्रतीत ही नहीं होते।

पुरुरवा कहता है–

"जब से हम तुम मिले, न जाने कितने अभिसारों में

रजनी पर श्रृंगार सितासित नभ में घूम चुकी है।"[398]

पुरुरवा काम–भावना के सम्बन्ध में कहता है कि काम दीपक थोड़ी देर तिमिराच्छन्न रहने के बाद पुनः जल जाते हैं। काम–वासना थोड़ी देर शान्त रहकर पुनः जागृत हो जाती है। उर्वशी प्रश्न करती है कि नर की वह कौन सी मजबूरी है जो उसे जीवन का रस छककर नहीं पीने देती। पुरुरवा उत्तर देता है कि इसे मैं नही जानता। मैं तो उस वेदना को अनुभव करता हूँ जो ह्रदय से लेकर कंठ तक व्याकुल किये रहती हैं। पुरुरवा लगभग पाँच पृष्ठ में मन की आकुलता, ललक और कामेच्छा का चित्रण करता है। उसके विचार में रूप की आराधना का मार्ग आर्लिग है। उसके विचार से रूप सी नारी प्रकृति का सबसे मनोहर चित्र है। उसका स्पर्श पाने को पर बैचेन हो जाता है।

पुरुरवा जानना चाहता है कि 'रक्त की उत्तप्त लहरों की परे भी सत्य है, पर उसे समाधान नहीं मिलता। उसे तो केवल उर्वशी दिखाई देती है। वास्तव में पुरुरवा उर्वशी के प्रति आकर्षित होते हुए भी उसे स्वीकार नहीं कर पाता। वह उस बाधा को पार करने का मार्ग नहीं जानता ओर कामना से जूझना चाहता हैं। दूसरी ओर उर्वशी पुरुरवा के द्वन्द्व का मूल कारण जानती है अतः 'काम के महत्व और दर्शन पर अपने विचारों द्वारा पुरुरवा को अतीत की चिन्ता छोड़ प्रस्तुत छणों की सहज स्वीकृत के लिए प्रेरित करती है।"[399] वह गीता के कृष्ण की भाँति निष्काम काम का पाठ पढ़ाकर अभीष्ट की ओर प्रेरित करती है। उसके विचार द्विधा सदैव बनी रहती है–

"यह तो नर ही है, एक साथ तो शीतल और ज्वलित भी

वह एक साथ जल–अलन, भृत्ति महदंवर, क्षर अक्षर भी।"[400]

पुरुरवा के आलिंगन में बद्ध नर नारी में रक्त और वृद्धि देवत्व और मनुजत्व देह और आत्मा के समबन्ध में विवाद छिड़ जाता है। दोनों के मध्य का अन्तर देह धर्म से परे अन्तरात्मा तक पहुँच जाता है। यहाँ आकर कवि काम दर्शन का चित्रण करने लगता है। साथ ही रति क्रीड़ा के स्थूल चित्रण भी प्रस्तुत किये हैं। उसके विचार से नर नारी का मिलन मात्र शारीरिक मिलन नहीं है वह अतीन्द्रिय है–

''एक तान होकर खो जाते हैं समाधि निस्तल में

खुल जाता है कमल, धार मधु की बहने लगती है

दैहिक जग को छोड़, कही हम और पहुँच जाते हैं

मानो मायावरण एक क्षण मन से उतर गया हो।''[401]

कहीं कहीं लेखक नख–शिख वर्णन में भी नत चित्तदिखाई देता है–

''ये लोचन, जो किसी अन्य जग के नभ दर्पण हैं

ये कपोल, जिनकी द्युति में तैरती किरण ऊषा की

ये किसलय से अधर, नाचता है जिन पर स्वयं मदन है

X X x

''और वक्ष के कुसुम–कुंज सुरभित विश्राम भवन में

जहाँ मृत्यु के पथिक ठहर कर श्रांति दूर करते है।''[402]

जहाँ कवि ने उर्वशी को नारी का प्रतीक और अतीन्द्रिय माना है, वहीं उसे 'काम लुलिता' नारी कहा है। ''मैं देश काल से परे चिरन्तन नारी हूँ कहने वाली उर्वशी के कुछ कथन देखिए–

''मैं मानवी नहीं देवी हूँ''

''मैं कला चेतना का मधुमय प्रच्छन्न स्रोत''

''देवालय में देवता नहीं केवल मैं हूँ''

''मैं भूत, भविष्यत वर्तमान की कृतिम बाधा से विभुक्त''

"मैं विश्व प्रिया"

"प्रिय मैं केवला अप्सरा।"

स्पष्ट है कवि ने उर्वशी के माध्यम से शाश्वत चिरंतन नारी के विविध रूप प्रस्तुत किये है। पूरा तृतीय अंक प्रेम भावना के नाना विधि—रूपों और जीवन औरी काम के विविधि दृश्यों से परिपूर्ण हैं।

चतुर्थ अंक महर्षि च्यवन के आश्रम से सम्बन्धित है, जहाँ सुकन्या उर्वशी के पुत्र आयु का पालन कर रही है। इसमें सुकन्या के च्यवन के प्रति अनुराग भरत मुनि क शाप, आदि का चित्रण किया गया है। यहाँ उर्वशी अन्तः संघर्ष की झाँकी बहुत सुन्दर है। मातृत्व और पतित्व में से वह किसे प्राथमिकता ये—

"और विवशता यह तो देखो, मैं अभागिनी नारी

दिखा नहीं सकती सुत मुख अपने ही स्वामी को

न तो पुत्र के लिए स्नेह स्वामी का तज सकती हूँ।"[403]

वास्तव में यह उसके भाग्य की विडम्बना ही है कि 'पुत्र और पति नहीं, पुत्र या केवल पति' ही प्राव्त हो सकता है।

पंचम अंक का प्रारम्भ पुरुरवा के स्वप्न विश्लेषण से होता है। पुरुरवा स्वप्न देखता है कि प्रतिष्ठा नपुर में प्रसन्नता छाई हुई है। नगर के लोग एक नया पौधा ले आये है और उसे बाह्य प्रांगण में रोपकर सींच रहे हैं। बाद में पुरुरवा स्वप्न में ही च्यवनाश्रम में पहुँचता है। जहाँ उसे एक अति सुन्दर बालक के दर्शन होते है। उर्वशी स्वप्न सुनकर बैचेन हो उठती है।

विश्वमना ज्योतिषी बताते है कि स्वप्न फल के अनुसार महाराज को आज ही प्रवज्जा लेनी होगी और आज ही उन्हें अपने पुत्र को राजगद्दी देनी होगी। राजा सहित सभी व्यक्ति विस्मय में पड़ते है, क्योंकि राजा के कोई पुत्र नहीं है। उसी समय प्रतिहारी सुकन्या के आगमन की सूचना देता राजा उनका स्वागत

करता है। सुकन्या पुरुरवा उर्वशी के पुत्र आयु को साथ लाई है। उनके आते ही उर्वशी अन्तर्धान हो जाती है। पुरुरवा उर्वशी के वियोग में व्याकुल हो जाता है। किन्तु सभासदों के समझाने पर वह शान्त हो जाता है। अन्ततः आयु को राज्य सोंपकर स्वयं प्रव्रज्या ले लेता है। ओशीनरी आयु को पुत्र के रूप में अपना लेती है। इन्हीं दोनों के मिलन के साथ कथानक समाप्त हो जाता है।

दार्शनिकता और उर्वशी– 'उर्वशी' का मूल स्वर 'कामाध्यात्म' का है। कवि ने स्वयं काम के महत्व पर प्रकाश डालते हुए ऐसे धर्म के सामन फलदायी कहा है। उनके अनुसार काम विकसित और उदात्त हो जाने पर धर्म के समान ही शीतलता प्रदान करता है जिनका काम कुंठित और उपेक्षित है वह आनन्द के अनेक सूक्ष्म रूपों से वंचित रह जाता है।"[404]

वास्तव में काम को लेकर आदिकाल से ही संघर्ष चलता रहा है। भक्ति काल में काम को आध्यात्मक का बाधक माना जाता था। तुलसी जैसे सन्तों ने नारी से दूर रहने का उपदेश दिया है। लेकिन सन्तों की वाणी, काम की अग्नि को समित न कर सकी। वह रीति काल में और भड़क उठी। दिनकर के शब्दों में–'इसे (काम) अपदस्य करने की जितनी भी चेष्टा की जाय, वह बार–बार सिंहासन पर आ बैठता है। शास्त्र और नैतिकता के प्रहरी उसे बाँधने की जो तैयारी करते है, उस पर सैक्स का देवता जोर से मुस्कराता है, मानो वह यह कह रहा हो कि इतने बंधन तो मैं तोड़ चुका, देखूँ इस प्रकार तुम कैसी कड़ियाँ तैयार करते हो। दिनकर जी का कामाध्यात्मक बहुत कुछ तन्त्रमार्गियों के योग से मिलता है। तन्त्र मार्ग के अनुसार साधक गृहस्त होकर भी सिद्ध हो सकता था। उसके अनुसार नर–नारी का मिलन सामान्य नर नारी से भिन्न तत्व है, जिसमें लैंगिक भेदों का आरोप नहीं किया जा सकता उर्वशी का पुरुरवा भी यही कहता है–

"वह निरभ्र आकाश, जहाँ की निर्विकल्प सुषमा में

न तो पुरुष, न तुम नारी केवल नारी हो

दोनों हैं प्रतिमान किसी एक ही मूल सत्ता के

देह बुद्धि से परे नहीं जो नर अथवा नारी हैं।''[405]

वामाचार में तो काम की महत्ता को स्वीकार करते हुए पंच मकार (मध, मांस, मीन, मुद्र, और मैथुन की पूजा का प्रचलन है। दिनकर जी के विचार से काम मनुष्य को ऊँचा भी उठा सकता है और नीचे भी गिरा सकता है–

''काम धर्म, काम ही पाप है, काम किसी मानव को

उच्च लोक से गिरा, हीन पशु जन्तु बना सकता है

और किसी मन में असीम सुषमा तृषा जगाकर

पहुँचा देता उसे किरण सेवित अति उच्च शिखरपर।''[406]

कवि ने काम का उदात्तीकरण किया है। उर्वशी और पुरुरवा का प्रेम शारीरिक धरातल से ऊपर उठकर अतीन्द्रि लोक की वस्तु बन गय है। वह रहस्य और आत्मा के अन्तरिक्ष में विवरण करता है। उर्वशी–पुरुरवा की समस्त घटना दार्शकिता के आवरण में आबद्ध है। उर्वशी देवलोक से उतरी नारी, जो पृथ्वी का सुख भोगना चाहती है पुरुखा की वेदना मान जाति की चिरंतन वेदना है। मानव मन द्वेध स्थिति का शिकार है। एक ओर जैव धरातल है और दूसरी ओर आत्मा का धरातल है। मानव निर्णय नहीं कर पाता कि वह किसका वरण करे। यही संघर्ष कारण बनता है। यह संघर्ष अनिवार्य है। दिनकर के विचार में नर–नारी का समागम बुरा नहीं। हमें उसे उदात्त दृष्टि कोण से देखना है कि– 'प्रत्येक पुरुष में शिव और प्रत्येक नारी में पार्वती दिखाई दें। जहाँ भी नर नारी का समागम होता है, वहाँ वास्तव में शिव–पार्वती का समागम है।''[407] यही बता दिनकर में उर्वशी में भी पुरुरवा के मुँह से कहलाई है–

''वहाँ जहाँ कैलाश प्रान्त में, शिव प्रत्येक पुरुष है

और शक्ति दायनी शिवा, प्रत्येक प्रणयनी नारी।''[408]

शाक्त धर्म में साधक का साधिका के साथ समागम आयुष्मिक समाम का प्रतीक है। योगी योग के द्वारा जिस मधुमती (आनन्द) की भूमिका में पहुँचता है, प्रणयी आलिंगन पारा में आबद्ध होकर उसी सुख का अनुभव करते हैं–

''निशा योग जागृति का क्षण है, और उदग्र प्रणय भी

भूमा के रस–पथिक समय का अतिक्रमण करते हैं

योगी बँधे अपारयोग में, प्रणयी आलिंगन में।''[409]

दिनकार के विचार से चुम्बन और चिन्तन एक ही सत्य के सागर में पहुँच कर रीत जाने वाले दो नदियाँ हैं। गृहस्थी, त्वचा और रुधिर की उठणता को भोगते हुए भी ईश्वर तक पहुँच सकता है–

''परिरम्भ पाश में बँधे हुए उस अंबर तक उठ जाओ रे

देवता प्रेम का सोता है, चुंबन से उसे जगाओ रे।''[410]

पाश्चात्य दार्शनिकों और कवियां ने भी कुछ ऐसे विचार प्रस्तुत किये है। रसेल और लारेन्स का सन्दर्भ पहले ही दिया जा चुका है।1. सेक्सपियर का हेमलेट अपनी माँ के अवैध प्रेम से चिढ़ता है। वास्तव में ब्रिटिश राज्य घराने के कई लोग अवैध प्रेम के कारण उपदंश रोग से पीड़ित थे। ऐलिजावेथ प्रथम ओर एडवर्ड षष्ट पैदायशी उपदंशज थे। एडवर्ड इसी से बचपन में मर गया और ऐलिजावेथ के भौहें नहीं थी इसी से मेरी निःसंतान रही। जेम्स प्रथम की रानी मेरी आर्क विशप को देखकर घबरा गई थी क्यों कि उसके सारे शरीर पर उपदंश के निशान थे। स्टुअर्ड वंश में जेम्स भी उपदंश का शिकार था।''[411] इस प्रकार पश्चिमी राष्ट्र पहले से ही मुक्त सम्भोग के पक्षपाती थे, जिसका उन्हें परिणाम भोगना पड़ा।

कवि ने जहाँ 'काम' पर दर्शन का आवरण डाला है, वहीं उसकी आलोचना हुइ है। गिरजा कुमार माथुर के अनुसार यह दर्शन स्वाभाविक न होरक चेष्टिक है।

ऐसा प्रतीत होता है जैसे दर्शन आरोपित किया गया है। किसी भी कलाकृति की सबसे बड़ी उपलब्धि यही होती है कि कितनी मात्रा में वह अनुभूति उत्पन्न कर सकती है। दार्शनिक समस्याओं के भेद–प्रभेद की मीमांसा शुद्ध कला की मर्यादा से बाहर की वस्तु है। यह पद्धति काव्य को एक अतिरिक्त गम्भीरता से भेले ही मण्डित करती हो किन्तु यह उसकी रसानुभूति में बाधा पहुँचाती है। काव्यात्मक और कलात्मक दोनों ही दृष्टियों से उर्वशी के वही अंश कम सफल हैं जहाँ इस प्रकार का दार्शनिक विवेचन किया गया है।"[412]

वास्तव में उर्वशी में काम दर्शन के मध्य समन्वय नहीं हो सका। प्रणय–सुख की चरम परिणति में दार्शनिकता की बात समझ में नहीं आती। प्रेमी ऐसे अवसरों पर दिल की घड़कनों से बात करते है, एक दूसरे में खो जाना चाहते है। ऐसे अवसर पर लम्बे–लम्बे दार्शनिक कथन अस्वाभाविक से लगते हैं।

संघर्ष–द्वन्द्व और संघर्ष की दृष्टि से उर्वशी अति सुन्दर है। आरम्भ से अन्त तक द्वन्द्वात्मक स्थिति बनी रहती है। मानव मन में सत्य और काम की भावना सदैव विद्यमान रहती है। कभी यह सत्य की ओर झुक जाता है, तो कभी काम की ओर 'आदमी हवा और पत्थर के दो छोरों के बीच झटके खाता है और झटका खाकर कभी इस ओर, और कभी उस ओर मुड़ जाता है।" पुरुरवा ऐसे ही अनिश्चित व्यक्तित्व का प्रतीक है। वह कभी काम की ओर झुक जाता है, कभी सन्यास की ओर। यही कारण है कि न वह औशीनरी के मोह में फँस पाता है और न उर्वशी के प्रेम–पाश में। वह आलिंगन में भी सत्य, प्रकृति और ईश्वर की बात करता है। उर्वशी का मन ही द्विधाग्रस्त है। मातृत्व और पत्नीत्व का द्वन्द्व उसे बेचैन कर देता है। पत्नी औ पुत्र में से वह किसे चुने उसकी समझ में नहीं आता। वह तन पति को मन पुत्र को समर्पित करती है–

"उस बंधन में तो अब केवल तन ही बंधा करेगा

प्राणों को तो यही तुम्हारे घर छोड़े जाती हूँ।

'सखी सत्य ही ये विकल्प दारुण, दुस्त, दुस्सत है' कहकर उर्वशी हृदय के संघर्ष को ही व्यक्त करती है।

यही बात ओशीनरी की है। वह अप्सरा और गृहणी नारी के मन को वाणी देती है। कवि की विचारधारा भी द्विधाग्रस्त है। तभी तो जहाँ कभी वह कहता है कि रूप की आराधना का मार्ग अलिंगन नही है। वहीं दूसरे क्षण कह उठता है। रूप की आराधना का मार्ग आलिंगन नहीं तो ओर क्या है। कहीं–कही द्विधाग्रस्त स्थिति का चित्रण एक ही पद में हो गया है।"[413]

काम और नैतिकता को मध्य का संघर्ष सुन्दर ढ़ंग से उभारा गया है यत्र–तत्र क्रियात्मक संघर्ष की झाँकी भी प्रस्तुत की है। जैसे पुरुरवा और राक्षस अथवा पुरुरवा का इन्द्र के विरुद्ध युद्ध का सन्नद्ध होते समय इस प्रकार का संघर्ष प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार हम देखते है कि 'उर्वशी' बाह्य ओर आंतरिक एवं मानसिक द्वन्द्व से परिपूर्ण है।

चरित्रांकन–'उर्वशी' में दो प्राकर के पात्र है–मानवी और देवी। पुरुरवा, सुकन्या, ओशीनरी, नट नटी आदि मानवी पात्र हैं। अप्सराएँ देवी पात्र हैं किन्तु दोनों की कार्य स्थली पृथ्वी ही है–भारत। यहाँ की मिट्टी से प्रेम करने वाले पात्र ही सबसे प्रमुख हैं। प्रधान पुरुरवा और उर्वशी है। ओशीनरी और सुकन्या प्रधान सहायक पात्र है। जब कि रम्भा, चित्रलेखा, च्यवन, सहजन्या, मेनका, मदनिका, निपुणिका और आयु गौण पात्र हैं। पुरुरवा, आयु और सूत्रधार को छोड़कर शेष समस्त पात्र स्त्री हैं। पुरुरवा 'उर्वशी' का नायक है। वह–

"कार्तिकेय समशूर, देवताओं के गुरु सम ज्ञानी

रवि सम तेज वंत, सुरपति के सदृश्य प्रतापी मानी

धनद सदृश्य संग्रही, व्योमवत मुक्त, जलद–निभत्यागी

कुसुम सदृश्य मधुमय मनोज्ञ कुसुमायुध से अनुरागी।"[414]

लेखक ने पुरुरवा को 'सनातन नर' का प्रतीक माना है। सृष्टि की रचना में जो महत्व मनु श्रद्धा का है कुछ वही महत्व पुरुरवा–उर्वशी का भी है। उसी प्रक्रिया का भावना पक्ष पुरुरवा– उर्वशी की कथा में प्रतिभासित है।

वह अनन्य प्रेमी है। इस क्षेत्र में वह तथाकथित प्रबुद्ध संस्कृत युवकों के प्रतीका पात्र हैं जो मानसिक रूप से अपनी पत्नी के शुष्क–नीरस साहचर्य से सन्तुष्ट नहीं होते। उसके अनार्मन में यह द्वन्द्व स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि प्रेयसी के संसर्ग और उससे किये निष्काम ऐन्द्रिय भोगों को हेय–त्याज्य क्यों समझा जाय जबकि उसे ऐन्द्रियोत्तर सुख की अनुभूति होती है।

प्रारम्भ में उसे नीतिवादी आदर्श राजा के रूप में चित्रित किया गया है। वह बहादुर और सौन्दर्य प्रिय है। उर्वशी का चरित्र अप्सराओं के अनुरूप है। लेकिन मातृत्व की भावना उसे सामान्य अप्सराओं से अलग कर देती है उवर्शी अनिय सुन्दरी है–

"दर्पण जिसमें प्रकृति रूप अपना देखा करती है
वह सौन्दर्य कला जिसका सपना देखा करती है
नहीं उर्वशी नारी नहीं छाया है निखिल भुवन की
रूप नहीं, निष्कलुष कल्पना है स्रष्टा के मन की।"[415]

उर्वशी में पुत्र और पति दोनों के प्रति समान प्रेम है। भरत के शाप से अन्त में उसे दोनों को ही छोड़ना पड़ता है। वह दार्शनिक है और एक दार्शनिक की भाँति ही पुरुष–प्रकृति, जीवन माया, ब्रह्म का आदि की व्याख्या करती है। वह स्वर्ग के स्थाप पर भू को महत्व देती है। वह ज्ञान, तर्क साधना और विवेक सम्पन्न नारी है। दिनकर के शब्दों में–'प्रिया के रूप में वह प्रचण्ड झंझा है। जो छूती है झकझोर देती है पर धरायी नहीं देती, पकड़ में नहीं आती।"[416]

चतुर्थ अंक में उसका मात्रत्व जाग्रत होता है। यहाँ वह व्यष्टि से समष्टि की ओर झुकती है। माता के रूप में वह स्रोतस्विनी है, रुक नहीं सकती पर गली हुई, झरती हुई इन दो रुपों के द्वन्द्व में वह व्यष्टि नारी की छाया छू लेती है।"[417] आगे चलकर पति अथवा पुत्र के वरण के समय उसके भाग्य की विडम्बना देखने को मिलती है।

ओशीनरी आदर्श, पतिपरयण भारतीय नारी के रूप में प्रस्तुत की गई है। पति ही उसका सर्वस्व है। पति का अपने प्रति अनाकर्षण देखकर वह जीवन का समाप्त करना चाहती है लेकिन यश में पति का साथ देने के लिए वह जीवित रहती है। धर्मान्धता उसमें है। वास्तव में वह विवशता का प्रतीक है। पुत्र का अभाव उसे निरन्तर खटकता है। विरहणी के रूप में जीवन बिताते हुए भी विरहजन्य भावनाओं का चित्रण लेखक न कम किया है। सुकन्या प्रभावशाली पात्र है। वह ओशीनरी के समान ही पतिव्रता है। वह योग–भोग की बात को महत्व नहीं देती–

"योग–भोग का भेद अप्सरा की अबन्ध क्रीड़ा है

ग्रहिणी के तो परम देव आराध्य एक होते है।"[418]

सुकन्या सहज ह्रदय, मातृ वत्सला तपोनिष्ट नारी है। उसकी दृष्टि में अप्सराएँ अतृप्ति का प्रतीक है। वह कर्तव्य निष्ठ सहानभूतिमयी, उपदेशिका भी हैं उनका चरित्र महिमा मंडित है।

आयु के चरित्र का कोइ विशेष विकास नहीं हुआ वह भविष्य की आशा के रूप में वर्णित है। अन्य पात्र भी सहायक पात्र के रूप में ही आये है और उनके चरित्र का विकास नहीं हो पाया। रम्भा स्वच्छन्द विहार की प्रतीक है। मदनिका और निपुणिका पुरुष मनोविज्ञान की ज्ञाता है। महर्षि च्यवन नारी के प्रसंशक है। सुलेखा सुह्रदय नारी है।

'उर्वशी' की सम्वाद योजना गीतिनाट्य की दृष्टि से अत्यन्त असफल है।

संवाद कौशल की आलोचकों ने तीर्व प्रहार किये है। यथा—दिनकर को कथोपकथन लिखने का राऊर नहीं है वे फील पाँवी' हैं। जिसके कारण 'उर्वशी' को अभिनेय बना दिया है।' डा. देवी शंकर अवस्थी व्यंग्यात्मक शब्दों में लिखते है कि —पढ़ते—पढ़ते ऐसा लगता है जैसे सामने माइक्रोफोन जरूर रखा है और आमने सामने दो चोटियों पर उर्वशी और पुरुरवा खड़े होकर अपने ध्वनि विस्तारक यन्त्रों पर धाराप्रवाह बोलते जा रहे है। आवश्यकता पड़ जाती तो कामाध्यात्म ही नहीं, देश भक्ति और राष्ट्रीय संकट पर भी इस गति से बोल जाते।''[419]

उर्वशी के विश्लेषण और विचार सम्बन्धी विचारधारा कवि शब्दों में अधिक सुन्दर ढ़ंग से वयक्त होती। उर्वशी की संवादात्मकता ने रसानुभूति में बाधा पहुँचाती है। वास्तव में उर्वशी की सबसे कमजोरी उसके सम्वाद ही है। उर्वशी के विचार संवाद बोझिल, लम्बे और दुरुह हो गये है। कहीं—कहीं तो पृष्ठों में एक ही पात्र का कथन चलता रहता है। यहाँ आकर उर्वशी विचार प्रधान काव्य जैसा प्रतीत होता है। तृतीय अंक इस दृष्टि से सबसे अधिक शिथिल है। अन्य अंक में संवाद इतने लम्बे नहीं कि अस्वाभाविकता से परे हों।

बिम्ब योजना— उर्वशी की बिम्ब योजना बहुत सुन्दर है। उसका प्रारम्भ ही बिम्बात्मक चित्रण से होता है। आकाश से उतरती हुई परियों का चित्रण कवि ने इतनी कुशलता से किया है कि एक चित्र हमार सम्मुख बन जाता है चाहे प्रकृति का चित्रण हो अथवा अप्सराओं की बात चीत, सर्वत्र बिम्ब योजना सफल हुई है। बिम्बात्मक अभिव्यक्ति को रूप देने के लिए श्री उपेन्द्र महारथी और श्री ज्योतीश भट्टाचार ने बारह चित्र प्रस्तुत किये है, जिनके माध्यम से काव्य बिम्ब योजना पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि उर्वशी में शब्द रूप रस ओर स्पर्श के छोटे बड़े अनेक बिम्ब है। इन बिम्बों की रेखाएँ कहीं सूक्ष्म—तरल, कहीं तीखी और दृढ़ कहीं विराट एवं सघन हैं।—इनके रंग चित्र विचित्र और भास्वर हैं। उसमें चित्र कला के

साथ मूर्ति कला के गुण विद्यमान है। ....विराट और कोमल, उदान्त और मधुर बिम्बों का ऐसा अपूर्व संकलन आधुनिक युग के बहुत कम काव्यों में मिलता है। सम्पूर्ण काव्य ही एक रंगीन चित्रशाला है जिसमें शब्द और अर्थ की व्यंजनाओं से अंकित नखचित्र रेखा–चित्र, तेल चित्र और विराष्ट भित्तचित्र, जगमग कर रहे हैं।''[420]

कामाध्यात्म की उपलब्धि का माध्यम बिम्ब योजना को ही बनाया है। कवि जब शरीरिक आसक्ति की बात करता है तब बिम्ब लौकिक और जब आध्यातम की बात करता है, तब बिम्ब लौकिक और जब आध्यात्म की बात करता है, तब बिम्ब योजना अपार्थिव हो जाती है। उर्वशी में कई स्थानों पर आवर्तक बिम्ब आये हैं।''[421] इसी प्रकार आध्यात्मिक बिम्ब, पार्थिव और प्राकृतिक बिम्ब कास्मिक बिम्ब भी देखने को मिलते है। इसी प्रकार चित्र लेखा द्वारा उर्वशी के रूप वर्णन–निपुणिका द्वारा रूप वर्णन, पुरुरवा उर्वशी मिलन, पुरुवरा के स्वप्न, समरोत्मुक पुरुरवा का वर्णन में भी सुन्दर बिम्बात्मक चित्रण है। चाक्षुस बिम्ब की योजना स्पृश्य और ध्रातव्य बिम्ब का सफल चित्रण दिनकर जी ने उर्वशी में किया है। एक प्राकृतिक दृश्य देखिए–

''कुछ वृक्षों के हरित मोलि पर, कुछ पत्तों से छनकर
छाँह देख नीचे मृगांक की, किरणें लेट गई हैं
ओढ़े धूप छाँह की जाली, अपनी ही निर्मित की
लगता है निष्कंप मौन, सरे तन–वृक्ष खड़े हैं।

X X X

काम कर दी दूरता कौमुदी ने भू और गगन की
उठी हुई सी मही व्योम कुछ झुका हुआ लगता है।''[422]

प्रतीक योजना–प्रतीक विधान की दृष्टि से भी उर्वशी सफल कृति है। उर्वशी और पुरुखा की कथा को प्रतीकात्मक दिया गया है। दिनकर जी स्वयं

लिखते हैं कि– सर विलियम विलसन अनुमान लगाया था कि पुरुरवा उर्वशी की कथा अन्योक्ति परक है। इस कथा का वास्तविक नायक सूर्य और नायिका ऊषा है। इन दोनों का मिलन कुछ ही काल के लिए होता है।...... किन्तु मेरी दृष्टि में पुरुरवा सनातन नर का प्रतीक है और उर्वशी सनातन नारी का।''[423]

इसी प्रकार आयु मानव का प्रतीक है। इन्हीं सनातन नर–नारी का गाथा उर्वशी में अंकित है। ओशीनरी चिर अभिशप्त परतन्त्र नारी का प्रतीक है। उसे नारी विवशता का प्रतीक भी माना जा सकता है। इसी प्रकार पुरुरवा को ज्ञान और उर्वशी को भाव और इच्छा का प्रतीक भी माना जा सकता है। जब ज्ञान और इच्छा का मेल होता है तो कम की उत्पत्ति होती है। उसके बाद भाव अथवा इच्छा स्वयं ही विलीन हो जाते हैं और ओशीनरी रूपी अर्कमण्डयता दूर हट जाती है। पुरुरवा को यदि सत्य का प्रतीक माने तो उर्वशी सुन्दर की प्रतीक है। जब सत्य एवं सुन्दरम के योग से शिवं का जन्म होता है, तो सुन्दरम् का भाव हृदय से अदृष्य हो जाता है और ओशीनरीं रूपी अभद्रता दूर हो जाती है।

डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है। कि उर्वशी नाद का प्रतिनिधित्व करती है पुरुरवा क्रिया का और ओशीनरी प्रतिक्रिया का।''[424] नाद का ही आगम शास्त्रीय नाम इच्छा है उर्वशी उसी का प्रतीक है। वह सृष्टि की काम धारा है, तभी तो उसके आगमन पर सृष्टि प्रफुल्लित है–

''जब से तुम आई पृथ्वी कुछ अधिक मुदित लगती है

दौड़ रही है, वह दीप्ति सी शीतल हरयाली में।''[425]

उर्वशी को कुछ आलोचकों ने अन्योक्ति माना है। उनके अनुसार भी उर्वशी नारी का प्रतीक है ओर पुरुरवा नर का उर्वशी चक्षु, रसना, ध्राणत्वक तथा श्रुति की कामनाओं का प्रतीक है। वह देहवती होते हुए भी अदेहवती है–

''मै अदेह कल्पना, मुझे तुम देह मान बैठे हो

मै अदृश्य तम दृश्य देखकर मुझको समझ रहे हो।"[426]

यह सनातन नारी प्रत्येकनर के हृदय में निवास करती है–

"कौन पुरुष जिसकी समाधि में, मेरी झलक नहीं है

कौन त्रिया, मैं नहीं राजती हूँ जिसके यौवन में।"[427]

लेकिन उर्वशी का न तो पूर्णतः अप्सराओं का प्रतीक माना जा सकता है और न सनातन नारी की ही। वह तो आधुनिक नारी और प्राचीन नारी का अद्‌भुत रूप है। उसके चरित्र में न तो देवीत्य के गुण है और न मानवी के। जहाँ वह पुत्र और पति को लेकर मानवी के समान शंकालु हो उठती है वही दूसरे क्षण वह कह उठती है–

"मैं मानवी नहीं देवी हूँ, देवों के आनन पर

सदा एक झिलमिल हरस्य आवरण पड़ा होता है।"[428]

वह इन्द्रियों के सुख भोग के लिए ही स्वयं का परित्याग कर देती है। वास्तव में उर्वशी मनोविज्ञान के शब्दों में कामेच्छा (लिविडो) का प्रतीक है। यही बात पुरुरवा के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। वह जहाँ इन्द्रिय भोग चाहता है, वहीं उनसे विरक्त होकर उच्चतर लक्ष्य की प्राप्ति करना चाहता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के शब्दों में–

"पुरुरवा सीमा बद्ध जीव है जो इस उद्याम मानव वेग (उर्वशी) का शिकार है। उनमें कहीं–कहीं एक स्थिरि शाश्वत असीम तत्व छिपा हुआ है, जो उसे व्याकुल तो बना देता है पर हार नहीं मानने देता।"[429] उसे पूर्ण नर का प्रतीक स्वीकार नहीं किया जा सकता। यह दैहिक सुख का परित्याग कर जब प्रवृज्या ग्रहण करता है, तब वह शाश्वत नर का प्रतीक न रहकर मात्र व्यक्ति का प्रतीक बनकर रह जाता है।

दिनकर जी ने पुरुरवा–उर्वशी को मनु इड़ा के आख्यान का प्रतीक स्वीकार किया है। लेकिन इस रुपकात्मक कथा का पूर्ण निर्वाह वे नहीं कर सके। जिस

प्रकार मनु–इड़ा का आख्यान सृष्टि विकास के कर्तव्य पक्ष का प्रतीक है, उसी प्रकार पुरुरवा और उर्वशी के आख्यान को सृष्टि विकास के भावना पक्ष तक ही सीमित रखा जा सकता है। क्योंकि कामायनी की कथा के सामान न तो खण्ड–प्रलय के पश्चात सृष्टि विकास की घटना से सम्बन्धित है और न पुरुरवा उर्वशी के ही समग्र व्यक्तित्व में ही प्रतीकात्मकता का निर्वाह हुआ है। इसी प्रकार पुरुरवा भी की परिणीता ओशीनरी किसका प्रतीक है, यह निर्णय नहीं हो पाता। अतः हम उर्वशी को पूर्ण रूपकात्मक काव्य स्वीकार नहीं कर सकते।

भाषा शैली–शैली शिल्प की दृष्टि से 'उर्वशी' अनुपम है। भाषा भावों को पूर्ण करने में पूर्ण सफल है। प्रथम अंक की भाषा में तद्‌भव शब्दों का प्रयोग हुआ है लेकिन अन्य अंकों में तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है। कहीं–कहीं तो संस्कृत निष्ठ शब्दों का खुलकर प्रयोग हुआ है यथा–

''मैं ही निविड़स्तनता, मुष्टि मध्यमा

मन्दिर लोचना काम लुलिता नारी

प्रस्तरावरण कर भंग

तोड़तम को उन्मत उभरती हूँ।''[430]

दिनकर जी ने भावों की पुष्टि के लिए तत्सम, तद्‌भव और देशज सभी प्रकार के शब्दों क प्रयोग किया है। कहीं–कहीं अंग्रेजी शब्दों के आधार पर नये शब्दों का प्रयोग हुआ है। जैसे अंग्रेजी 'मोजेक' के अर्थ में 'मणिकुट्टम' का प्रयोग। इस प्रवृत्ति के कारण 'उर्वशी' की भाषा को बनावटी और पुस्तकीय तक कह दिया गया है। कहीं–कहीं बेर, चुभकार, सुगबुगाना, आदि देशज शब्द ही हैं। यद्यपि उर्वशी को फारसी आरै उर्दू के प्रयोग से बचाने का प्रयत्न किया गया है, लेकिन फिर भी खूब, जाल, मगर, शबनम, बदा जैसे शब्द आ ही गये हैं। भाषा में मुहावरे और कहावतों का डटकर प्रयोग हुआ है। कुछ मुहावरों का प्रयोग सर्वथा नवीन

अर्थ में हुआ है। जैसे मिट्टी का माधो होना' मूर्ख के लिए प्रयोग होता है दिनकर ने उसे अन्य अर्थ मे लिया है–

"मिट्टी का मोहन कोई अन्तर में आन बसा है।"

काव्यत्व और नाटकीयता– काव्यत्व की दृष्टि से 'उर्वशी' अनूठा गृन्थ है। ब्राह्य रूप से देखने पर वह सफल नाट्य कृति परिलक्षित होती है किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर उर्वशी में काव्य की प्रधानता है। वास्तव में नाट्यत्व और काव्यत्व में ताल मेल नहीं हैं। वे एक दूसरे से कतराते से नजर आते हैं। नाट्यत्व की दृष्टि से 'उर्वशी' सफल रचना नहीं है। उसमें अभिनय की सम्भावना बहुत कम है। लेखक ने मंचीय रचना का कोई भी निर्देश नहीं दिया। लम्बे–लम्बे संलापो को मंच पर प्रदर्शित करना भी सहज नहीं। तृतीय अंक का प्रस्तुतीकरण तो किसी भी प्रकार सम्भव नहीं है।

काव्यत्व की दृष्टि से उर्वशी उतनी ही सफल है, जितनी कि नाट्यत्व की दृष्टि से असफल। भावाभिव्यंजना, लाक्षणिकता, और अर्थ गौरव की दृष्टि से निर्दोष रचना है। अतः उर्वशी पाठ्य गीतिनाट्य की श्रेणी में रखी जा सकती है।

सृष्टि की साँझ–(सिद्धनाथ कुमार)– 'सृष्टि की साँझ' में युद्ध जनित परिणामों तथा तज्जनित परिस्थितियों का वर्णन किया गया है। जेता ओर विजेता इस आशा को लेकर युद्ध करते हैं कि युद्ध के पश्चात शान्ति मिलेगी। लेकिन उनका यह गर्व झूठा सिद्ध होता है। युद्धोपरान्त केवल एक नारी तथा तीन पुरुष (अजय, महामात्य, सेनानायक) जीवित बचते हैं, लेकिन काम वासना के वशीभूत युवक आपस में ही लड़ मरते है। शेष बचता है लंगड़ा अजय और रेखा। क्या वास्तव में उन्हें शान्ति मिली? यह प्रश्न स्वयं प्रश्न बनकर रह जाता है।

गीतिनाट्य की कथा आगत भविष्य की है। वर्तमान शस्त्रों की होड़ में तृतीय विश्व युद्ध होगा, ऐसी कवि की धारणा है। उसी युद्ध में धरती श्मशान बन

जायेगी। मृत्यु का ताण्डव होगा। कथानक यहीं से प्रारम्भ होता है। सेनानायक विजयोन्माद में अट्टहासकर रहे है। अजय को यह अट्टहास शूल सा चुभता है। वह कहता है–

"तुम देख सकतेक नहीं पल भर
मुर्छिता हुई इस धरती को
इसका सुहाग जल गया
समर की लपटों में
तुम आँखे खोल जरा देखो
कालिख पुत गई दिशाओं में।"[431]

महामात्य विश्व के नव निर्माण का स्वप्न देखता है। अजय कहता है। कि हो सकता है तुम नये आविष्कार कर लो, लेकिन ताज महल, पिरामिड, हैगिंग गार्डन फिर नहीं बन सकते सब कुछ दूर कर सकते हो लेकिन काव्य चित्र, संगीत, कला कृतियाँ फिर नहीं बन सकती।

सभी का ध्यान रेखा की ओर जाता है जो अब सृष्टि की एक मात्र भाषा है। सभी रेखा को ढूढ़ने निकल पड़ते है। सर्वप्रथम उसे अजय खोज लेता है। रेखा युद्ध के विध्वंश से दुःखी है। नव निर्माण की आशा से अन्त में दोनों विवाह कर लेते हैं। सेनानायक अजय ओर रेखा के प्रेम को सहन नहीं कर पात। प्रतिहिंसा वश अजय पर गोली चला देता है लेकिन मनुज को यहीं शान्ति नहीं। नारी के लिए आगे युद्ध होता है। महामात्य और सेनानायक रेखा की प्राप्ति हेतु लड़ मरते हैं और दोनों का शरीरांत हो जाता है। अजय जीवित बच रहता है क्योंकि सेनानायक की गोली उसके पैर में लगी थी। अन्त में अजय–रेखा नई सृष्टि की आशाा में क्षितिज पर उग रहें चाँद को देखते रह जाते हैं।

सम्पूर्ण कथानक में युद्ध की विभीषिका का चित्रण है जिसे पढ़कर रोमांच

हो उठता है। मानव के मन के द्वन्द्व को सुन्दर ढ़ग से प्रस्तुत किया गया है। रेखा के मन की पीड़ा देखिए–

"उफ सर्वनाश हो गया

हो गए सभी भस्म

जल मरे धरा के सभी जीव

बस एक अभागिन शेष रही हूँ रोने को।"[432]

लेखक ने वैयक्तिक द्वन्द्व के माध्यम से सामाजिक भावनाओ को वाणी दी है। इसमें मनोविकार भी पात्र रूप में आये हैं। सम्वाद नाटकीय और अभिनेय है। युद्ध के दृश्य की बिम्बात्मक अभिव्यक्ति में लेखक पटु है। कहीं सुन्दर चित्र बिम्ब प्रस्तुत किय गये है।

लौह–देवता –(सिद्ध नाथ कुमार)– लौह देवता में वर्तमान भौतिक युग की समस्याओं को प्रस्तुत किया है। यह प्रतीकात्मक गीतिनाट्य है। आज का मानव निरन्तर नये यन्त्र का निर्माण कर रहा है। स्वचालित यन्त्रों ने मानव के कार्य को आधा कर दिया है। लोग कहते हैं कि इस यन्त्र युग ने मानव को अनेक विषमताओं के भ्रम में डाल दिया है। क्या मानव के दुखों का उत्तरदायित्व यन्त्रों पर है? इसी प्रश्न को लेकर 'लौह देवता' का सृजन हुआ है।

लौह देवता का कोई विशिष्ट कथानक नहीं है। दीर्घकाल को मानवीय भावनाओं का वर्णन किया गया है। आज से कई सौ वर्ष पूर्ण मानव दुःखी या खून पसीना एक करके वह खेती करता था। वह धरती माता को जल का अर्घ्य चढ़ाता था, बीजो के अक्षत देता था, होंसिया, कुदाल हल , और खुर्पी से उसकी सेवा करता था, लकिन फिर भी उसका पेट नहीं भरता था।

मानव के दुख दूर करने के लिए लौह देवता की कृपा से यन्त्रों का निर्माण होता है। कपड़े मिल, प्रेस, इस्पात, को कारखाने दवाइयाँ आदि मानव के सुख के

लिये तैयार हो जाती है। लेकिन मानव का दुःख दूर नहीं होता। इसका कारण वे पुजारी है, जिन्होंने स्वर्ण के बल पर इन यन्त्रों का निर्माण किया है। वे श्रमिकों को थोड़ा धन देते हैं, और शेष स्वयं हड़प जाते हैं। उसका तर्क है, कि –'श्रम का मूल्य तुम्हें देता हूँ, अधिक न दूँगा। वास्तव मे मानव के दुख का प्रधान कारण असमान आर्थिक व्यवस्था है। यदि उत्पादन के साधनो पर सभी समान अधिकार हो तो मानव क्लेशों से छुटकारा पा सकता है। लेकिन नाटककार स्वयं अपना कोई हल पेश नहीं करता। 'लोह देवता' के शब्दो में–

"अपनी मुक्ति स्वयं तुम सोचो

क्षुधा तृष्णा अगणित क्लेशों का

मूल कहाँ है

वह यन्त्रों में नहीं

तुम्हारे ही समाज में है।"[433]

सम्पूर्ण गीतिनाट्य प्रतीकात्मक है। 'लौह देवता' यन्त्रों का प्रतीक है। पुजारी पूँजीपतियों का प्रतिनिधित्व करता है। जो स्वर्ण खण्ड देकर उत्पाद पर अपना अधिपत्य स्थापित कर लेता है। मानव त्रस्त है और क्रान्ति पर उतारू है, उसी के माध्यम से उसका शोषण रुक सकता है।

'लौह देवता' में आन्तरिक और बाह्य दोनों प्रकार का द्वन्द परिलक्षित है। भावाभिव्यंजना और मनोविश्लेषण दोनों ही दृष्टियों से यह कृति सुन्दर है।

संघर्ष–(सिद्धनाथ कुमार)– वास्तविक संघर्ष और हृदयानुभूति की दृष्टि से 'संघर्ष' प्रस्तुत संग्रह का सर्वश्रेष्ठ गीतिनाट्य ठहरता है। एक कलाकार की हार्दिक वेदना को सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। एक और उसकी कला है, साधना है, तपस्या है, तो दूसरी ओर संसार है, घर है, परिवार है। वह किसे अपनाये। वह साधक है–अमरता का आकांक्षी। वह संसार की नश्वर वस्तुओं के

पीछे नहीं दौड़ता। लेकिन उसकी कलाकृतियाँ भी तो नश्वर है। तूफान आयेगा, बवण्डर उठेगें, भूकम्प होगे, परामणु बम बरसेगें और उसकी मूर्तिया ध्वस्त हो जायेगी फिर क्या करे। कलाकार के मन के इसी संघर्ष को प्रस्तुत गीतिनाट्य में प्रस्तुत किया गया है। मोहन का मन दुविधाग्रस्त है। वह कला की अमरता को प्यार करता है दूसरी और उसका मन संसार को सुखी बनाने उपदेश देता है। वह अपने पुत्र तथा पत्नी बेला की ओर ध्यान नहीं दे पा रहा है। वह सोचता है कि वह संसार तो क्षण भंगुर हैं नष्ट हो जायेगा। मन कहता है कि कलाकृतियाँ भी तो अमर नहीं ये भी नष्ट हो जायेंगी। इसी द्विधामय स्थिति और घात प्रतिघात में गीतिनाट्य समाप्त हो जाता है।

प्रस्तुत गीतिनाट्य में न तो चरित्रों का विकास हुआ है और न कथा का विस्तार। क्षण–विशेष का मानसिक संघर्ष ही प्रस्तुत कवि में है। उसमें विस्तार की अपेक्षा गहराई है जिनका चित्रण मंच पर कठिनता प्रस्तुत कर सकता है।

विकलांगो का देश– 'विकलांगो का देश' में एक ऐसे देश की कल्पना की गयी हैं। जिसमें सभी व्यक्ति अंगहीन है। यह ऐस समाज का प्रतीक है जहा मनुष्य की शक्तियाँ पूर्ण रूप से विकसित नहीं होती।

कथानक का प्रारम्भ उन्हीं विकलांगों के परिचय के साथ होता है। यहाँ के निवासी लंगड़े है, अन्धे है, बौने है, कुरूप है। यहाँ कोई भी पूर्ण नहीं। इनकी इच्छायें भी अपूर्ण हैं। वे सोचते है कि यदि वे शारीरिक दृष्टि से पूर्ण होते तो बहुत कुछ कर सकते थे। यह देश कहीं अन्यत्र नहीं इसी पृथ्वी पर है। इसी युग में इसी देश में एक युवक है जिसकी स्त्री ऊषा बीमार है। पुत्र मंगल है जिसके लिए वह कुछ नहीं कर सका। नौकरी नहीं मिली। 'एक इण्टरव्यू' में उसकी भेंट अन्य बेकारों से होती है। वे सभी दुःखी है–किसी की माँ बीमार हैं, किसी की पत्नी, किसी का पुत्र इनमें से किसी एक को ही नौकरी मिलती है और शेष उसी निराशा के गर्त

में पड़े रहते है। मिल मजदूरों की हालत भी खराब है वैज्ञानिक है लेकिन इच्छा के विरुद्ध कार्य कर रहे हैं। इन सबको क्या कहा जाये।? वे विकलांग ही तो है जिनकी इच्छाएँ अधूरी है।

इस गीतिनाट्य में भी कथानक का विकास नहीं। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे कई घटनाओं को जोड़ दिया गया है। कथानक कई स्थानों पर भटकता है, कभी सड़कों पर कभी पार्क में, कभी फैक्टरी में। चरित्रांकन का भी अभाव है। कुछ घटनाएँ हैं बस। पात्र उन्हीं के वशीभूत है। उनका कोई निजी अस्तित्व नहीं। हृदय की वैयक्तिकता और द्वन्द्वात्मकता अवश्य है।

बादलों का शाप– मानव दुःखी है। पर उसके दुख का कारण क्या है। क्या वह भाग्य का लेख है या प्रकृति का शाप है अथवा व्यक्ति विशेष को कर्मों का फल है यह कुछ प्रश्न हैं जो लेखक के मन में घुमड़े हैं। यही मानसिक चिन्तन 'बादलों का शाप' गीतिनाट्य का विषय है।

घुमड़ते हुए बादलों को देखकर एक युवती उल्लसित हो उठती है। पुरुष उसे वर्जित करता हुआ कहता है ये बादल बरसने वाले नहीं। केवल गरजने वाले हैं। उनका कथन सत्य निकलता है। बादल देखते–देखते निकल जाते है और दूसरी धरती पर बरस जाते है। स्त्री और पुरुष की पीड़ा और अधिक बढ़ जाती है।

अनावृष्टि से पृथ्वी सूख गई है। माँ पुत्र को पानी नहीं पिला पाती, जिसके कारण वह अकाल काल कवलित हो जाता है। वह प्रतिशोध की ज्वाला में जल उठती है। पुरुष उसे समझाता है कि ऐसी वह अकेली नहीं सैकड़ों है। उनका मत है कि यह सब बादलों का शाप का फल है। वे बादलों से प्रार्थना करते है, लेकिन कोई फल नहीं निकाला। स्त्री कहती है कि बादल स्वयं बन्दी हैं, एक व्यक्ति उन्हें आगे नहीं बढ़ने नहीं देता। वही शाप का सृष्टा है। कुछ कहते है कि प्रकृति ही

रुष्ट हो गयी है। कुछ के अनुसार–

"यह भूल मनुज की ही

दु:खो का कारण है

हम भूखे प्यासे हैं

केवल मानव के कर्मों से।" 434

उनका विचार है कि जब तक हमारी वैषम्यता, कलुषता और वैमनस्यता नहीं मिटती तब तक हमारा क्लेश दूर नहीं हो सकता। वे सब इन्हें दूर करने और श्रम करने का संकलप लेते हैं। यही संकल्प उद्देश्य है, नाटकार की इस रचना का। इसमें भी चरित्रांकन का आभाव है।

वास्तव में सिद्धनाथ कुमार के गीतिनाट्यों में वैयक्तिता के स्थान पर सामाजिकता अधिक है। इसमें युग और समाज की विविध समस्याओं का विवेचन किया गया है। रामचन्द्र महेन्द्र के शब्दों में उन्हें 'देखकर यह नि:संकोच कहा जा सकता है कि सामाजिकता इतने प्रखर रूप में पहली बार इन्हीं काव्य नाटकों में उभरकर आई है।"[435]

सिद्धनाथ कुमार के इन गीतिनाट्यों को दो भागों में बाँटा जा सकता है– एक कथानक प्रधान और दो–विचार प्रधान। 'सृष्टि की साँझ' और 'संघर्ष' प्रथम प्रकार के और 'लौह देवता' 'विकलांगो का देश' तथा 'बादलों का शाप' द्वितीय प्रकार के गीतिनाट्य हैं। 'सृष्टि की साँझ' और कवि में वर्णनात्मकता अधिक है। अन्य में युग जनित परिस्थितियों का चित्रण है। शायद लेखक का विचार है कि सामाजिक समस्याओं को गद्य के स्थान पर पद्य में अधिक सुन्दरता के साथ दर्शाया जा सकता है।

सिद्धनाथ कुमार के लगभग सभी गीतिनाट्य रेडियो से प्रसारित हुए हैं, क्योंकि उनकी रचना रेडियो के लिए ही की गयी है। अतः इन पर रेडियो की

टेकनीक का प्रभाव पड़ा है। फलस्वरूप जहाँ ध्वनि निर्देश आदि का उल्लेख हे वहाँ मंचीय व्यवस्था का कोई संकेत नहीं। परिणाम स्वरूप इन नाटकों में नाटकीयता उस सीमा तक प्रखर नहीं हो सकी जिस सीमा तक होनी चाहिए नाटककार न तो कोई सबल चित्र ही प्रस्तुत कर सका है और नाटकीय स्थिति का परिपालन ही कर पाया है।

चरित्रांकन की दृष्टि से भी रचनाओं को सुन्दर नहीं माना जा सकता। किसी भी रचना में पात्रों के चरित्र का विकास नहीं हो सका। कुछ पात्रों के चरित्र का विकास द्वन्द्वात्मक स्थिति द्वारा हुआ है, लेकिन वह अत्यन्त क्षीण है। चरित्रांकन की दृष्टि से 'कवि' और 'सृष्टि की साँझ' को सफल माना जा सकता है।

सिद्धनाथ कुमार के गीतिनाट्यों में संवाद भी बहुत सुन्दर नहीं कहे जा सकते। कहीं–कहीं लम्बे सम्वाद भी लिखे गये हैं। लेकिन ऐसा सर्वत्र नहीं हुआ। कहीं–कहीं क्षिप्र, संक्षिप्त और तीखे सम्वादों की गीतिनाट्यों में सहज ही नाटकीयता ला दी है।''[436] कुछ सम्वाद ध्वनित न होकर मात्र कथित हो गये है। फिर भी अनेक गीतिनाट्यकारों की तुलना में इनके सम्वाद सुन्दर और सुरुचि पूर्ण है।

काव्यत्व और अन्तर्द्वन्द्व की दृष्टि से ये गीतिनाट्य अवश्य सुन्दर बन पड़े हैं। संघर्ष तो उनका प्रधान आलम्बन है। इसी द्वन्द्वात्मक स्थिति से होकर कथानक आगे बढ़ा है। कुल मिलाकर सिद्धनाथ कुमार जी के गीतिनाट्य सुन्दर रचनाएँ हैं।

अग्नि देवता– 'अग्नि देवता' रेडियो के लिए लिखा गया है। अतः उसके रंग संकेत रेडियो गीतिनाट्यों जैसे ही हैं। इसमें प्रलय से लेकर आज तक के सम्पूर्ण ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक विरासत को एक साथ प्रस्तुत किया गया है। किन भीषण परिस्थितियों युद्ध विभीषिकाओं में होता हुआ मानव आज की स्थिति में आया है, यही इसका मूल विषय है। इतिहास की घटनाएँ एक–एक कर हमारे

सामने आती है।

कथानक का प्रारम्भ महाप्रलय से होता है। प्रलय से समस्त सभ्यता नष्ट हो जाती है। सब कुछ चला जाता है। प्रसाद को कामायनी की भाँति सृष्टि का पुनःनिर्माण होता है। एक पुरुष और एक नारी जो महा प्रलय से बच गये थे, सृष्टि के नियामक बनते हैं आवश्यकता हेतु दोनों अग्नि देवता का आह्वान करते हैं, जिसकी सहायता से सभ्यता का निर्माण होता है।

समय बदलता रहता है। ऋषि मुनियों के आश्रम फैल जाते है और फिर होता है देवासुर संग्राम। इसमें अग्नि देव की कृपा से देव विजयी होते हैं। एक युग बीता दूसरा आया भगवान राम का युग। आंतक को मिटाने के लिए राम को फिर युद्ध करना पड़ता है किन्तु इसके परिणाम स्वरूप सीता को अग्नि परीक्षा देनी पड़ती है।

युग फिर बदलता है– द्वापर युग। यमुना के किनारे गोपियों के सहगान गूँजने लगते है। फिर एक युद्ध होता है। इस प्रकार–

"युद्ध और संघर्ष

विकासोन्मुख मानव को महा प्रगति के अग्निचरण ये

काल पृष्ट पर

चलते रहते ध्वंश सार्थ से।"[437]

महाभारत के बाद इतिहास क्रम आगे बढ़ता है। 'बुंद्ध शरणं गच्छामि' के शान्ति–स्वर गूँजने लगते है। उसके बाद गुप्तकाल का स्वर्णयुग आता है।

ऐतिहासिक घटनाओं के साथ–साथ लेखक ने हमारी सांस्कृतिक विरासत का भी चित्रण किया है। तक्षशिला और नालन्दा की संस्कृति और कालिदास, भवभूति, अश्वघोष का उल्लेख करता हुआ लेखक विद्यापति के गीत गा उठता है। इसी के साथ सूर के गीत गूँजते हैं। किन्तु यह संस्कृति भी नष्ट हो जाती है। यवन

और गौरांग प्रभुओं का शासन होता है जिनके साथ–साथ आता है विज्ञान का युग–

"धातु युग और अन्य युग के चीर कर तम तोम

वाष्प केशी यन्त्र युग है आज का नव व्योम

अग्नियाँ पंचानना हो हैं हमारे साथ।"[438]

गीतिनाट्य का अन्तिम चरण गाँधी जी की प्रशास्ति के साथ समाप्त होता है। वह अग्नि देवता से प्रार्थना है कि–

"उद्योगों की लौह भुजाओं को तुम नव–नव शक्तिदान दो

अग्नि नृत्य को किरण गान दो

शान्ति पुत्र तुम अग्नि देवता

प्रगति पुत्र तुम अग्नि देवता।"[439]

'अग्नि देवता' युद्ध और विकास की कहानी है। पात्र एक के बाद एक आते जाते है। उद्घोषक स्वर और राक्षसों का गर्जन एक साथ सुनाई देता है। जहाँ एक ओर 'बुद्धं शरणं गच्छामि' की मधुर ध्वनि गूँजती हैं वही दूसरी ओर जय देव का स्वर–'मधुकर निकर करम्बित कोकिल कूजत कुंज कटोरे' भी सुनाई देता है। गोपियों के रास रंग और प्रलय के चित्रण एक साथ प्रस्तुत हुए है। भाषा, दृश्य और कथा वस्तु के अनुसार बदलती रही है। प्रलय के समय उसमे ओज गुण और करुणा वृत्ति देखने को मिलती है। यथा–

"सब खण्ड–खण्ड

गृह भवन कलश मन्दिर तोरण

वे कमल नाल, महरावें, इन्द्र धनुष

त्रस्त स्तुप रंग मंच।"[440]

अथवा

"अग्नि शैल हुंकारे अपने ताम्र मुकुट से

पृथ्वी डसने दौड़ी, अग्नि तप्त वे ताल

हो क्षिप्र पंखिनी

नाग पाश सी लावा बाहें।"[441]

दूसरी और मधुर गीत का सृजन देखए–

"यमुना तट वेणुं बजी, लीलामय वृन्दावन

यौवन के अंग छाँह

नटवनर की रंग बाँह

नयनो में इन्द्र फूल गन्ध भरे गोपीजन।"[442]

चूँकि गीतिनाट्य घटना प्रधान है, अतः इसमें चरित्र–चित्रण का लेखक को कोइ अवसर नहीं मिला। इतिहास के विभिन्न पात्रों के माध्यम से तथा वाचकों के सहारे एक के बाद एक घटना घटित हुई है। सिद्धनाथ कुमार का विचार है कि यद्यपि रूपक का विषय उदात्त है किन्तु लेखक ने दृश्यों के निर्वाचन के अन्वित पर ध्यान नहीं दिया। परिणाम यह हुआ है कि प्रस्तुतीकरण में प्रभावोत्पादकता नहीं आने पायी। दूसरे लेखक ने श्रव्य माध्यम की सीमाओं का भी ध्यान नहीं रखा। परिणाम स्वरूप कथानक में बोधगम्यता नहीं रही।"[443]

इसी प्रकार पुराण वाणी, इतिहास कथन, अचानक आने से सुनने वाले को यह ज्ञान नहीं हो पाता कि कौन–कौन बोल रहा है। जैसे रंग संकेत आदि सुन्दर और अभिनेय है।

संशय की एक रात– नरेश मेहता कृत 'संशय की एक रात' एक महत्वपूर्ण बहुचर्चित गीतिनाट्य है। इसे आधुनिक युग की गीता कहा गया है। जिस प्रकार अर्जुन के संशय ग्रस्त होन पर भगवान कृष्ण निष्काम कर्म का उपदेश देते हुए अर्जुन को युद्ध करेन की प्रेरणा देते है, उसी प्रकार दशरथ और जटायू की

प्रेतात्माएँ राम को कर्म का उपदेश देती हैं–

"पुत्र मेर!

संशय या शंका नहीं

कर्म ही उत्तर है

यश जिसकी छाया है

तुम कर्म को करो।"[444]

X X X

यहाँ जो है कवल नियम हैं

जिसका वृहत विराट चक्र है

कर्म ही गति है इस विराट चक्र की।"

और भी–

"उस महानियम के निकट

हम केवल कर्म के क्षण है"

तभी तो दशरथ की प्रेतात्मा राम को पुरुषार्थ के बल पर परिस्थितियों की धेनु को दुहने का उपदेश देती है–

"परिस्थितियाँ धेनु है

दुहो इनको। निठुर उगलियों से दुहो इनको।"[445]

गीता के समान ही यहाँ भी वे कहते हैं।–

"यहाँ सब कर्तव्य है

जयाजय

धर्मा धर्म कुछ भी नहीं।"[446]

महाकवि निराला ने सर्वप्रथम 'राम की शक्ति पूजा' राम के मन में उठने वाले द्वन्द्व और दुर्बलताओं का चित्रण किया है। उन्हें एक मानव के धरातल पर

प्रस्तुत किया गया है। नरेश मेहता उससे भी आगे बढ़ गये हैं। 'राम की शक्ति पूजा' में ओज पूर्ण और अनुभूति प्रवण है। लेकिन 'संशय की एक रात' में उनमें मानवीय त्रुटियाँ घर कर जाती है। उनके मन में शंकाओ और उच्छवासों की वह समन्वित धूँध है जिसमें सत्यासत्य के बीच सेतु बन्ध का निर्माण दुष्कर प्रतीत होता है।''[447]

'राम की शक्ति पूजा' के अतिरिक्त लेखक को 'हेमलेट' से भी प्रेरणा मिली है। कवि ने द्वितीय सर्ग में शैक्सपियर के 'हेमलेट' की शैली का अनुशरण किया है। बहुत कुछ हेमलेट की विचारधारा को अपनाया गया है।

'संशय की एक रात' का मूल विषय यंद्ध है। रामेश्वरम में जब कि युद्ध की पूरी तैयारी हो चुकी है, राम के मन में संशय का तूफान उठ खड़ा होता है। क्या युद्ध अनिवार्य है ? यही प्रश्न उनके मन को आकुल कर देता है। कवि ने युद्ध को जीवन की अनिवार्यता स्वीकार किया है। युद्ध हर पीढ़ी का दायित्व है जिसे निभाना पड़ता है। वह अन्याय और न्याय का निर्णय है। जिससे इतिहास बदलता है। युद्ध मात्र मन्त्रणा नहीं अपितु जीवन का दर्शन है स्वत्व और अधिकार प्राप्ति का वह अन्तिम मार्ग है। वही युग का अन्तिम सत्य और दर्शन हुआ करता है–

''युद्ध!
मन्त्रणा नहीं
एक दर्शन है राम
अन्तिम मार्ग है।''[448]

युद्ध इतिहास का निर्माण करता है, हमारे शुभाशुभ कर्मो का निबटारा करता है। जब स्वत्व और परिस्थितयों पर हमारा अधिकार नहीं रहता, तब युद्ध अनिवार्य हो जाता है। क्या युद्ध नियति है हमारे शुभाशुभ कर्म को?' यही प्रश्न है जिसका उत्तर लेखक ने चाहा है, पर उसे उत्तर नहीं मिला।

द्वापर की शंका त्रेता के राम में घर कर लेती हैं। सेतु बन्ध का निर्माण होता है। राम की सेनाएँ युद्ध को सन्नद्ध हैं। किन्तु स्वयं राम संशय के वात्याचक्र में तापित हो उठते हैं। प्रश्नों के मध्य वे घिर जाते है। क्या युद्ध समस्याओं का अन्तिम हल है क्या बिना युद्ध के सत्य नहीं मिल सकता ? न्याय नहीं मिल सकता? क्या बन्धुत्व मानवीय एकता और धर्म स्थापना युद्ध के बिना सम्भव नहीं है।? और फिर यह क्या अनिवार्य है कि युद्ध के बाद स्थाई शान्ति मिल सकेगी–

"युद्ध के उपरान्त

होगी शान्ति

इसका तो नहीं विस्वास

यह युद्ध सम्भव है अनागत युद्ध का करण बने

फिर संघर्ष फिर संहार

इस चक्र का कोई नहीं है अन्त।"[449]

इसलिये राम युद्ध से बचना चाहते हैं वे युद्ध से डरते नहीं किन्तु उससे प्रेम भी नहीं करते। इतिहास के शिकार हो जाने की अपेक्षा वे स्वयं अँधेरों में खो जाना चाहते हैं–

"इतिहास के हाथों

बाण बनने से अधिक अच्छा है

स्वयं हम

अंधेरो में यात्रा करते हुए

खो जाय।"[450]

राम व्यक्तिगत कारणों से रावण से युद्ध करना उचित नहीं मानते। वे सोचते हैं कि सभी अनर्थ मेरे व्यक्तिगति कारणों से हो रहे है। पिता की मृत्यु हुई, माताएँ विधवाँ, हुई जटायु की मृत्यु हुई, अंगद पितृहीन हुए, उर्मिला विरही बनी,

भरत को निर्वासी जीवन व्यतीत करना पड़ा और अब मेरे व्यक्तिगति कारण से युद्ध होगा जिसमें न जाने कितने निरीह प्राणी मौत के घाट उतार दिये जायेंगे। इन प्रश्नों के वात्याचक्र में घिरे राम कहते हैं–

"यदि मैं मात्र कर्म हूँ

तो यह कर्म का संशय है

यदि मैं मात्र क्षण हूँ

तो यह क्षण का संशय है।

यदि मैं मात्र घटना हूँ

तो यह घटना का संशय है

पर यह संशय है,

संशय है, संशय है।"[451]

राम के इस संशय का समाधान करती हैं दशरथ और जआयु की आत्माएँ। दशरथ का विचार है कि यह युद्ध व्यक्तिगत स्तर पर नहीं लड़ा जा रहा। यह तो असत्य से लड़ा जा रहा है, अन्याय से लड़ा जा रहा है जटायु कृष्ण की भांति उपदेश देते हें कि–

"यहां कुछ नहीं समाप्त हुआ

क्योंकि कभी भी

कुछ नहीं आरम्भ हुआ।"[452]

वे कहते है–

"तुम्हे लड़ना युद्ध

अपने से नहीं

अनास्था से नहीं

संशयी व्यक्ति से भी नहीं

केवल असत्य से।''[453]

यही बात तृतीय सर्ग में हनुमान जी ने कहीं है। वे कहते है कि जो बानर आज युद्ध के लिए सन्नद्ध है आपके व्यक्तिगत हित के लिए नहीं अपितु विराट कारणों से है। रावण ने इनकी व्यक्तिगत स्वतन्ता के एक प्रकार से अपहरण कर लिया है। हमारा यह सुन्दर प्रदेश किसी अन्य का उपनिवेश हो, यह हमें स्वीकार नहीं। आज मात्र सीता माता का ही अपहरण नहीं हुआ। वे तो प्रतीक है हम कोटि–कोटि जनता की स्वतन्त्रता की। रावण के अशोक वन की सीता हम साधारण जनों की अपहृत स्वतन्त्रता है–

''सीता माता

भले ही राम की पत्नी हों

किसी की बधू

किसी की दुहिता हों

पर

हम कोटि–कोटि जनों की तो कवल

प्रतीक हैं–

रावण अशोक वन की सीता

हम साधारण जन की अपहृत स्वतन्त्रता।''[454]

वास्तव में रावण ने दक्षिण प्रदेश के साभन्तों के प्रदेश का अपहरण कर पहले ही युद्ध की बीज बो दिये थे। विभीषण का भी यही मत है कि यद्यपि यही मत है कि यद्यपि इस युद्ध में उसके ही बन्धु–बाँधवों का संहार होगा, उसी का नगर ध्वस्त होगा, लेकिन अन्याय के उन्मूलन के लिए, जिसका प्रतीक रावण है युद्ध करना ही होगा।

निराश राम बहुमत की बात स्वीकार कर लेते है। चतुर्थ सर्ग में राम का

संदिग्ध मन युद्ध का संकल्प होता है। राम के इन शब्दों में मानवता के लिए आकांक्षित आलोक है–

"ओ मेरी अपारमिता

अपने पाथर को आकाश करो

वही सर्वोदय है

वही ऋतंभरा है

वैश्वानर है।"[455]

कथा संगठन– कथा–संगठन की दृष्टि से 'संशय की एक रात' सफल गीतिनाट्य है। यद्यपि घटना चक्र में तेजी नहीं है समस्त कथानक आत्ममंथन से ओत प्रोत है। अतः बह्य संघर्ष के स्थान पर आन्तरिक संघर्ष तीव्र है। आदि से अन्त तक राम का शंकालु हृदय युद्ध के प्रश्न से आल्होड़ित विलोड़ित होता रहता है। अन्तर्द्वन्द्व से पीड़ित राम सारी रात सो नहीं पाते। युद्ध किया जाय या न किया जाय, किया जाय या न किया जाय यही द्विधा राम के अन्तर्मन में बार–बार उठती है। बार–बार कहते हैं–

"दो सत्य

दो संकल्प

दो आस्थाएँ

व्यक्ति में ही अप्रमाणित व्यक्ति पैदा हो रहा है।"[456]

वास्तव में अन्तःसंघर्ष और मानसिक द्विधा इस नाटक का मूल आकर्षण है। सारा कथानक वहीं से प्रारम्भ होता है और वहीं समाप्त हो जाता है।

चरित्र–चित्रण– चरित्र चित्रण की दृष्टि से यहाँ राम का चरित्र परम्पराओं से बँधा होते हुए भी परम्परा से मुक्त है। बाल्मीक से लेकर निराला तक के राम–रावण वध में आश्वस्त है, युद्ध के लिए कटिबद्ध है। निराला के राम प्रथम

बार शक्ति के तेज से भयभीत हो उठते है। विजय में शंका कर उठते है। नरेश मेहता के राम कायर पुरुष नहीं हैं, न युद्ध से कुंठित है, वे तो उससे मात्र चाहते हैं। वे शंक्ति तो इससे है कि युद्ध के बाद भी क्या शान्ति सम्भव हो सकेगी। इसी मिथ्यात्व और मरीचिका से वे त्रस्त है। 'संशय की एक रात' के राम प्रज्ञा और तर्क के धनी हैं। बहुमत का सम्मान करना वे जानते हैं। सीता का प्रेम उन्हें पागल सा बना देता है। बालू तट पर वे नित्य सीता मुख बनाते हें वे सतय की अन्वेणी हैं और उसी की खोज में चिन्तित हैं।

लक्ष्मण का चरित्र परम्परागत है। वे साहसी, ओजस्वी और वाक्‌पटु है। राम को युद्ध से अन्यमनस्क देखकर वे कह उठते है–

"आप रुके रामश्वेर

जायगा लक्ष्मण ले अभीयान

यदि नितांत एकांकी भी जाना पड़े

जाऊँगा

सीता को लाऊँगा

अपने पुरुषार्थ से।"[457]

यहा लक्ष्मण की निष्ठ जन–निष्ठा है। जो रावण को पराजित करने का विश्वास रखती है। हनुमान का चरित्र अवश्य नवीनता लिए हुए है। वे यहाँ सेवक के साथ प्रजा का प्रतिनिधित्व भी करते है। नवीनता विभीषण के चरित्र में भी देखने को मिलती है। युद्ध का निर्माण होते समय राम की तरह वे भी शंकित और भयभीत हो उठते है। वे जानते है कि लोग उन्हें देश द्रोही कहेंगे। उन्हीं के कारण लंका का विनाश होगा। वे इन द्वन्द्व में फँसकर भी युद्ध के पक्ष में है।

कथोपकथन– कथोपकथन की दृष्टि से भी 'संशय की एक रात' अति उत्तम है। उनमें गति और नाटकीयता दोनों है। कहीं–कहीं अतिशयता, भावुकता

अथवा हृदये के आंतरिक मंथन के फलस्वरूप सम्वाद लम्बे भी हो गये हैं लेकिन कहीं–कहीं क्षिप्रता, तीव्रता भी है।''[458]

नरेश मेहता हिन्दी की नई कविता के समर्थ एवं प्रतिष्ठित कवि है। अपनी अन्य काव्य रचनाओं में उन्हें पहले ही पर्याप्त ख्याति प्राप्त हो चुकी थी। 'संशय की एक रात' में उसी का प्रांजल रूप देखने को मिलता है आपने कहीं कहीं सुन्दर सूक्तियों का प्रयोग भी किया है। यथा–

1. युद्ध सम्भव है प्रथम हो

किन्तु अंतिम नहीं हैं।

2. युद्ध केवल फेन नहीं

निर्णय है

जिसमें इतिहास बना करता है।

3. यहाँ कुछ नहीं समाप्त हुआ

क्योंकि कभी भी

कुछ नहीं प्रारम्भ हुआ।

मुक्त छन्द में रचित यह गीतिनाट्य काव्यत्व की दृष्टि भी अनूठा है। कहीं–कहीं मानसिक उद्वेलन के बीच सुन्दर कल्पनाओं के दर्शन हो जाते है।

प्रतीक विधान– प्रतीक विधान की दृष्टि से भी यह गीतिनाट्य सुन्दर है। पात्र, घटनाएँ, सर्ग शीर्षक सभी प्रतीकात्मक है। प्रथम सर्ग है 'सांझ का विस्तार और बालू तट' यहाँ बालूतट जीवनकी शुष्कता, नीरवता ओर अर्थहीनता का प्रतीक हैं। राम युद्ध जनित परिणामों से संशय ग्रस्त हो जाते है, उनका जीवन रस सूख जाता है। 'मध्यरात्रि को मंत्रण और निर्णय' शीर्षक यह ध्वनित करता है कि राम के मन का संशय मात्र संशय नहीं अपितु गम्भीर जीवन प्रक्रिया है। मध्य रात्रि गम्भीरता का प्रतीक है। इसी प्रकार संदिग्ध मन का संकल्प इस बात का प्रतीक

है कि मन्त्रणा का निर्णय केवल सामूहिक समाधान है। 'सवेरा' शीर्षक राम के नये संकल्प का प्रतीक है। प्रातः ही मधुरिम बेला मानव के मन में नवीन चेतना का संचालन करती है और मानव के कर्म क्षेत्र की ओर इंगित करती है। उसी प्रकार राम 'सेवरा' में युद्ध को तत्पर हो जाते है।

इस गीतिनाट्य के पात्र भी प्रतीकात्मक है। राम आधुनिक प्रज्ञा के प्रतीक है। मेहता के ही अनुसार– राम आधुनिक प्रजा का प्रतिनिधित्व करते हैं युद्ध आज के प्रमुख समस्या है। सम्भवतः सभी युग की इसी विभीषिका को सामाजिक और वैयक्तिक धरातल पर सभी युगों को भोगा जा रहा है। राम को भी ऐसा ही एकत्व देकर प्रश्न उठाये गये है। जिस प्रकार कुछ सनातन प्रश्न होते है उसी प्रकार कुछ प्रज्ञा पुरुष भी सनातन प्रतीत होते हैं। राम ऐसी ही प्रज्ञा के प्रतीक हैं।''[459]

इसी प्रकार लक्षमण, हनूमान, विभीषण और सुग्रीव आदि वर्तमान समाज के प्रतीक है। उनका प्रतीकत्व जहाँ आधुनिक है, वहीं परम्परा से भी जुड़ा हुआ है। वे वीर और युद्ध प्रिय है। दशरथ और जटायु की छायाएँ कवि मन के विचारों का प्रतीक है। सीता स्वतन्त्रता का प्रतीक है। राम की सभा वर्तमान संसद और सूर्य को सत्य का प्रतीक कहा जा सकता है। वास्तव में में प्रतीकात्मक परिवेश में प्रस्तुत गीतिनाट्य सुन्दर बन पड़ा है। प्रकृति राम के अन्तर्मन का प्रतिनिधित्व करती है।

'संशय क़ी एक रात' में तीन प्रश्न उठाये गये है– 1. युद्ध वैयक्तिक है या समाजिक, 2 जीवन में व्यक्ति के निर्णय सत्य हैं या समूह के और 3. युद्ध अनिवार्य है या नहीं? कवि ने वैयक्तिक भावनाओं को समाज को सोंप दिया फिर भी संशय बना रहा है। युद्ध का निर्णय हो जाने के बाद भी इन प्रश्नों उत्तर नहीं मिलता कि युद्ध अनिवार्य है या नहीं।

'संशय की एक रात' की दूसरी विशेषता लेखक की प्रजातान्त्रिक पहुच (एप्रोच) है। पार्षदों की सभा वर्तमान संसद का प्रतिनिधित्व करती है। युद्ध का

निर्णय बहुमत के आधार पर होता है।

अभिनय की दृष्टि से प्रस्तुत कृति सराहनीय नहीं कही जा सकती। क्योंकि प्रेतात्माओं के वार्तालाप को प्रस्तुत करने मे निदेशकों को कठिनाई हो सकती है और आत्मओ का वार्तालाप आज के युग में उचित नहीं लगता।''[460] फिर भी 'संदिग्ध मन का संकल्प और सबेरा' में राम के मन को संकलित करने का श्रेय कवि ने लिया है वह अभूतपूर्व है। मानवोचित भावों को व्यक्त करने के लिए प्रकृति का सहारा लिया गया है। उसके माध्यम से राम के अन्तर्मन का सुन्दर वर्णन हुआ है। यथा–

''कहीं चारों ओर

हल्का शोर

हा हा कार

शंख, सीपी उगलते

ये क्रुद्ध फन, वृहदाकार

बेलनों में रोंदते अन्तर स्वयं का

आ रहे किस गर्व से।''[461]

यहाँ राम के हृदय की भावनाओं का बिम्ब सा बन गया है। अन्त में आवरण पर छपे प्रकाशक के इस निर्णय से पूर्ण सहमति व्यक्ति की जा सकती है कि –नरेश मेहता ने इस कृति में गरिमापूर्ण भाव सम्पदाओं, प्रतीक योजनाओं, बिम्ब रूपों तथा शिल्प संयम का परिचय दिया है।

यमुना और गंगा की लहरें–(रमेश कुन्तल मेघ)–रमेश कुन्तल मेघ का एक मात्र गीतिनाट्य 'यमुनाऔर गंगा की लहरे' साम्प्रदायिक समस्या को लेकर लिखा गया है। इसमें शैक्सपियरीय शैली के चरित्रों के द्वन्द्वों को प्रकट करने की कोशिश की गयी है।''[462]

इसमें दो दृश्य हैं प्रथम दृश्य में जगन्नाथ और मुल्लाओं का संघर्ष चित्रित है, तो दूसरे में जगन्नाथ और पण्डितों का। पण्डित राज जगन्नाथ के माध्यम से हिन्दु–मुस्लिम एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। पण्डितराज जगन्नाथ ने मुगल कन्या लवंगी से व्याह रचाया था, जिसके कारण हिन्दू और मुसलमान दोनों ही उनसे जलते थे। पण्डित राज ने किस प्रकार उनके कुचक्रो को दूरकर अपनी पवित्रता का परिचय दिया यही इस गीतिनाट्य का मेरुदण्ड है।

कथानक का प्रारम्भ पण्डितराज जगन्नाथ और उनकी मुगल पत्नी के वार्तालाप से होता है। दोनों आपने पारिवारिक जीवन में प्रसन्न हैं। एक गोपीजन बल्लभ कृष्ण का भक्त है, तो दूसरी शेख के मजार से दुआएँ माँगती है। धर्म उनके मार्ग में बाधा नहीं। जगन्नाथ उलेमा से कहते हैं।

''लवंगी का धर्म मुझे बाधा नहीं देता है

मेरा गोपाल भी उसे बहुत प्यारा है

एक ही यमुना में अंजलि हम भरते हैं।''[463]

उलेमाओं का दोनो का प्यार नहीं भाया। एक दिन जब लवंगी शेख की मजार पर दुआएँ माँगने जाती है, तो वे उसकी हत्या कर देते है। वेचारे जगन्नाथ प्रिया के वियोग में अर्द्ध क्षिप्त से हो जाते हैं। वे जगन्नाथ जिन्होंने पण्डिराज की उपाधि पाई थी जिन्होनें 'आफस विलास', 'भामिनी विलास', जगदामरणं' की रचना की थी, उन्माद वश प्रलाप सा कर उठते हैं और अन्त में दिल्ली छोड़कर काशी चले आते हैं।

द्वितीय दृष्य का सम्बन्ध काशी से ही है। दिल्ली में जहाँ उलेमा उनसे जलते थे, वहाँ काशी में अव्यय दीक्षित और भट्टोजि पण्डितराज की बिद्वता से ईर्ष्या करते हैं। वे उन्हें नास्तिक दूषित घोर रसिक आदि कहते हैं और काशी की जनता को उसके विरुद्ध भड़काते है। अप्यय दीक्षित और भट्टाजि उनके क्षण को

नष्ट करना चाहते है। जिस प्रकार दिल्ली में मुल्ला मिलकर उनके साथ विश्वास घात करते हैं, उसी प्रकार काशी के पण्डित मित्रता के नाम पर महाकाल का प्रसाद देते है, जिसमें मधु से लिपटे कनक बीज हे ताकि पण्डितराज पागल हो जाय।

पहले काशी के पण्डित पण्डितराज से उनकी पवित्रता का सबूत माँगते है। पण्डित राज कहते हैं कि हीक है यदि मैं पवित्र हूँ तो गंगा स्वयं मेरा स्पर्श करेंगी और यदि नहीं तो भगवती गंगा मेरा उद्धार नहीं करेंगी। परीक्षा प्रारम्भ होती है। गंगा की स्तुति करते हुए पडितराज सीढ़ियों से उतरने लगते है गंगा उनका स्पर्श करने को आगे बढ़ने लगती है। चौवनवीं सीढ़ी पर गंगा उनको ग्रहण कर लेती है भीड़ कहती है–

"लौटो अब, लौटो अब

डूबे सब जाते हैं।

यही का अन्त है।

गीतिनाट्य में भावों और अन्तः संघर्ष का चित्रण बहुत सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है। जगन्नाथ कहते है–

"तपता हूँ घोर विरह ज्वाला में

सुनते हो! सुनते हो! राधा वल्लभ जो

राधा अधरों का मधुपान कर्ता ओ!

प्रेम में जाप पांत कहीं मानी

क्या जाती है। लवंगी कुरंगी वह

कहाँ गई?।"[464]

चरित्र–चित्रण की दृष्टि से गीतिनाट्य में कुल छः पात्र है। इसके अतिरिक्त कुछ भीड़ के व्यक्ति काजी मुल्ले हैं। पात्र वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे

टाइप बन गये हैं। जगन्नाथ उस वर्ग के प्रतीक हैं जो हिन्दू मुस्लिम एकता के पक्षपाती और मानव मात्र को अपना बन्धु मानते हैं। वे मित्र क नाते ही मुल्ला और पण्डितों के धोखे में आ जाते हैं। वे कहते हैं–

"प्रतीक मित्रता का, मानवता का, धर्म का

गरल भी हो यदि, तो सहर्ष ग्रहण करूँगा

सहोदर से।"[465]

काजी मुल्ला उस वर्ग के प्रतिनिधि हैं जो धर्म के नाम पर साम्प्रदायिकता फलाते हैं। मानव की हत्याकरने से भी नहीं चुकते। ऐसे लोगों को गंगा भी क्षमा नहीं करती। अभिनेयत्व की दृष्टि से 'यमुना ओर गंगा की लहरे' अच्छा कहा जा सकता संवाद क्षिप्र, लघु और भावानुकूल है–

मीरा सांभा– कवि राज संग हम आये हैं

मालिक लंवग

दरोगा– स्वागत हमारा ?नहीं

इतना तुम करो अभी वक्त

बहतु थोड़ा है

पण्डित राज (विह्वल)– लवंगी प्रिय हाय नीली तुम यमुना में नहाई हो

पूजा में मुग्ध क्यों? नेत्रों को बन्द क्यों किये हो?

मीरा सांभा–वक्त बहुत थोड़ा है

अन्तिम यह बेला है।"[466]

काव्यत्व की दृष्टि से भी गंगा यमुना की लहरें सफल है लवंग लता से प्यार प्रकट करते हुए पण्डित राज कहते है–

"चाहता नही गजों की पक्तियाँ कभी

वैभव विलास नहीं, नहीं अश्व पंक्तियाँ

केवल तुम्हें मैं

करने को आलिंगन व्याकुल था

तुमने जो

मादक बनाये ये दिगन्त

तैर तैर जाते थे छवियों के स्वर्ण शिखर।''[467]

हिन्दु मुस्लिम एकत्व को प्रदर्शित करने के लिए रमेश कुन्तल मेंघ कहते हैं–

''सभी में आत्म है लाल रुधिर सभी

का प्यारा है सभी तो रहते है

रहते हैं, कपोत मिथुन से अनुरागी।''

कुल मिलाकर 'यमुना और गंगा की लहरें' एक सफल गीतिनाट्य है जिसमें भाव कल्पना और नाटकीयता का सुन्दर समन्वय हुआ है।

सूरदास–(वीरेन्द्र नारायण)–सामाजिक पृष्ठिभूमि पर लिखा 'सूरदास' वीरेन्द्र नारायण का एक सुन्दर गीतिनाट्य है, जिसकी गाथा तीन अंको में फैली हुई है। शीतलता से अंधा हुआ एक नौजवान भिखारी और जहर से भरी एक जवान लड़की इनके प्रधान पात्र है। लड़की बाप रे बाप यों कहिये बिल्कुल जहरीली..... जिसे छूकर कोइ अपनी नींद खो दे। जो देख ले गश्त खा जाय। उसके लिए मर्द जीवन में ऐसे ही आते हैं जैसे रास्ते का राहगीर। आया, चला गया।

कथानक एक सुनसान वीराने के छोटे स्टेशन के प्लेटफार्म पर घटित होता है। इस स्टेशन पर स्टेशन मास्टर उनका खल्लासी वहां का दुकानदार जोधन तथा एक अंधा जवना भिखारी बड़े प्रेम से रह रहे हैं। सभी के मन में एक दूसरे के प्रति सद्भावना और सहानुभूति है। किन्तु एक दिन एक गरीब भिखारी लडकी

आकर यहां के वातारण में जहीर घोल देती है। उसकी सबसे पहली भेंट सूरदास से होती है। सूरदास और लड़की दोनों मुसाफिर खाने में सोये हुए है। अचानक सूरदास का पैर लड़की से छू जाता है। लड़की कहती है कि क्या" अंधे हो दिखाई नहीं देता कि कोई सोया हुआ है। सूरदास सहज उत्तर देता है कि माता राम तुम कौन हो? सूरदास को अंधा कहकर क्यों झिड़क रही हो? शायद इस स्टेशन पर नई आई हो, तभी तो नहीं मालूम कि सूरदास रोज नहीं सोता है। लड़की अपनी गल्ती पर सहम जाती है। सूरदास के पूछने पर वह बताती है कि मेरे साथी पिछले जक्शन पर छूट गए है। इसलिए हम स्टेशन पर उत्तर पड़ी हूँ। अब जब भी गाड़ी आयेगी वापिस चली जाऊँगी। सूरदास बताता है कि अब तो गाड़ी कल ही आयेगी। दोनों फिर सोने का उपक्रम करने लगते हैं। उसी समय स्टेशन मास्टर आकर लड़की को देखता है और सब कुछ समझ जाता है। वह सूरदास को बताता है कि वह आवारा लड़की है जो रेलों में कभी कभी चोरी कर लेती है। चोरी भी ऐसी जिसमें आदमी का सब कुछ चला जाता है–

"बकसा विस्तर रुपया पैसा
जाकर फिर भी आ जाता है
ऐसी भी चोरी होती है इनके हाथों से
जिसमें सब कुछ खो जाता है
रुपया पैसा सब कुछ रहने पर भी
जीवन भिख भगे सा हो जाता है।"[468]

स्टेशन मास्टर की नियत लकड़ी को देखते ही बुरी हो जाती है। पुरुष की कमजोरी प्रगट होती है। वह लड़की की बाँह पकड़ लेते है। लड़की अवसर की नाजुकता को समझती है। वीरान स्टेशन और अंधे के अलावा कोइ भी तो नहीं। स्टेशन मास्टर सब कुछ कर सकता है। अतः वह कहती है कि यदि गड़बड़ की

तो कल रपट लिखा दूंगी। स्टेशन मास्टर उसे छोड़ देता है और वह चली जाती है।

जोधन आ जाता है। वह सूरदास को रोज इसलिए बीड़ी पिलासा है ताकि वह उसकी बोनी कर दे। उसकी बोनी होने पर दुकान खूब चलती है। वह नई आई लड़की के बारे में पूछता है तो सूरदास पूर्व की घटना बता देता है। जाते जाते लड़की एक करामात कर जाती है। अंधे सूरदास की माचिस वह उठाकर ले जाती है। खल्लासी सूरदास से पूछता है कि जो नई चिड़िया आई है कैसी है सूददास बिना देखा का अनुभव बताता हुआ कहता है कि बरेली से तेज मिर्च लगती है। उसकी जवानी की धार ऐसी है, जैसी मैने कभी नहीं देखी।

जोधन कहता है कि वह लड़की तुम पर मरती है क्यों कि तुम भी जवान हो और–

काट जवानी की बस

सिर्फ जवानी ही हो सकती है

छो गया बंगाली बाबू वरना

हलकी फुलकी वह छोटी सी

नागिन सी बलखाती

तेरी ओर देख कर हारी गई है

सब कुछ अपना।''[469]

सूरदास विरक्तता बताता हुआ कहता है कि औरत से तो भगवान बचाये। जोधन हंसकर कहता है कि बेटा! इससे तो कोई नहीं बचा। इसी बीच लड़की फिर आ जाती है। खल्लासी उसे एक ओर ले जाकर बातें करने लगता है और सूरदास सब कुछ समझ कर गीत गाने लगता है छोड़ो आँचर मोरी मानों कन्हैया। लड़की कहती है शरम नहीं आती ऐसे गाने गाते हुए। तो सूरदास जबाबा देता है कि जब आंखों वाले ही शरम छोड़ गये तो सूरदास क्या करे। दोनों में तकरार होने लगती

है। इस लड़की सूर पर आरोप लगाती हुई चिल्लाने लगती है 'बचाओ बचाओ! सूरदास मेरी इज्जत लेना चाहता है। खल्लासी आकर लड़की की ओर सहानुभूति दिखता है और सूरदास से स्टेशन से निकल जाने को कहता है।

द्वितीय अंक में स्टेशन मास्टर खल्लासी जोधन और सूरदास सभी उस लड़की की ओर आकर्षित होते दिखाये गये हैं। सभी उसके साथ अपनी कामाग्नि ठण्डी करना चाहते हैं। लड़की सभी को बेवकूफ बनाती है। वह सूरदास से कहती है–

"तुम मर्दो का यही हाल है
पांच शिकारी कुत्ते से तुम
घेर घार कर बड़ें सब्र से
देखा करते, कब शिकार किसकी किस्मत से
किसको मिलता।"[470]

लड़की सभी की करतूतें बताती हुइ कहती है–

"वह मनहूस बंगाली बाबू
रोज मुफ्त में चाय मँगाकर
किसी बहने मुझको देता।
जिसे खलासी तुम कहते हो
घण्टे घण्टे बाढ़ी देता
तेरा जोधन भैया साबुन देता
गुड़ की भेली रोज खिलाता
फटा हुआ स्वर मिला मिला कर
तुम भी मुझको रानी कहते है।"[471]

धीरे धीरे लड़की सूरदास की तरफ आकर्षित होती है। वह सूरदास का

हाथ पकड़ कर उसको सहलाने लगती है और बाद में जाहिल कहकर छोड़ देती है। सूरदास की नस नस में बिजली कौंध जाती है। एक सूरदास और स्टेशन मास्टर में संघर्ष हो जाता है। और मिट्टी के टुकडों से नफरत ही करती हैं के कहने पर बंगाली बाबू सूरदास के तमाचा जड़ देता है। इस पर सूरदास भी बंगाली बाबू की गर्दन पकड़ लेता है। बीच बचाव के समय स्टेशन मास्टर सूरदास की लाठी से उसी का सिर तोड़ देता है।

सूरदास का ह्रदय टूट जाता है। वह पीपल के केड़ के नीचे रहने लगता है उधर जोधन खल्लासी और बंगाली बाबू में प्रतियोगता चलती है। लड़की कहती है–

"जितना गुड़ डालोगे
उतना मीठा होगा
साबुन की टिकिया लादोगे
हंसी दूगी मैं
कर्ज तुम्हारा उतर जायगा।"[472]

वास्तव में लड़की पुरुषो की मनोवृत्ति से पूर्ण परिचित है। वह कहती है–

"प्रेम प्रेम की माला जपने वालों की
क्या इच्छा होती है
घर दबोच कर दुश्मन जैसे
दोनों अपनी देह रगड़ते
कपड़े को गंदा करते है।"[473]

वह कहती है कि तुमसे तो कुत्ते अच्छे होते है, जो न किसी को धोखा देते है और न शरमाते हैं। वह जानती है कि पुरुषो का कार्य मात्र शरीर से खेलना है। वह संसार की घिनौनी तस्वीर बताती हुई कहती है–

"मेरा दर्द नहीं समझोगे

मर्दों का शरीर पा कर के

सब रहे खेलते इस शरीर से

जिनकी शक्ल घिनौनी लगती

जिन पर थूका करती थी मैं।"[474]

वह सूरदास को बताती है कि वह उससे प्रेम करने लगी है। सूरदास कहता है कि यदि ये बात है तो मेरे साथ चलो—

तुम्हारे कंधो पर रख हाथ, डगर सीधी कर लूँगा

तुम्हारे हाथों में दे हाथ जहर अमृत का दूंगा।

सूरदास का कथानक बड़ा ही मार्मिक और श्रंगार से ओत प्रोत है। आदमी औरत को पैसे के बल पर बाजारु बना देता है। उसके अन्दर जहर भर देता है। वीरेन्द्र जी ने लिखा है कि शीतल से अंधा हुआ एक नौजवान जो भीख मांगने को मजबूर है और जहर भरी लड़की अपने आप में एक सामाजिक दुर्घटना है।"[475]

वास्तव में औरत जब तक घर में है वह लज्जाशील और गृहलक्ष्मी है पर जब उसके कदम घर से बाहर निकल जाते है, तब वह बिच्छू जैसी तेज हो जाती है जिसके डंक में विष होता है। नारी एक ऐसा प्रस्तर है कि उसे जरा बिखरा दो तो कूड़ा करकट। पुरुष उसका उचित सम्मान कर चटपटे मसाले की तरह उसे चखते हैं, उसका मोल भाव करते है, सब्ज बाग दिखाते 'सरूदास' गीतिनाट्य में भावों के उतार चढ़ाव बड़े सुन्दर बन पड़े है। सूरदास मैं क्या जाँनू कहकर जो कुछ कहता है वह अनुभव शायद आंख वाले भी नहीं बता सकते प्रेम को लेकर अंधे मन में जो संघर्ष होता है जो अनुभूति होती है और जो बेकली होती है। उसका सुन्दर चित्रण हुआ है प्रेम की अनुभूति में सूररदास का मन बोले की झाड़ की तरह महक उठता है। सूरदास का औरता के बारे में अनुभव देखिए—

"औरत का शरीर ऊँचा नीचा होता है

पता नहीं था

ऊँचाई पर पहुँच

पहाड़ी पड़ चढ़ने से

हाँफ हाँफ जाता था यूँ ही

मेन लेन की पटरी जैसी

थर थर करती औरत की यह देह

कटीली झूल रही डोली सी

अलग अगल से तो पंखा झलती है

लेकिन छू जाने पर लहू लुहानकर देती।"[476]

अन्तर्दन्द्व की दृष्टि से सूरदास बहुत सुन्दर है। प्रेम और नारी को लेकर मानव के मन में उठने वाले संषर्ष को सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है। वाह्‌य संघर्ष और क्रिया कलापों का नाटक में अभाव है। लेखक के अनुसार तथाकथित नाटकीयता का इसमें अभाव है बाहरी दुर्घटनाओं से नाटक की धार मर जाती है, ऐसा मैंने महसूस किया इसीलिए बाह्‌य घटनाओं और मूवमेण्ट का अभाव है। सूर के मन में उठने वाले भाव आवारा नारी का दर्शन और पुरुष के प्रति उसके विचार नाटक का प्राण हैं। आधार नारी के जीवन में मानव–

"कोई आता कोई जाता

पैरों के निशान बनते

फिरमिट जाते

इनका भी तो अलग स्वाद है।"[478]

ऐसी औरत अपने दिल के घावों को छिपाकर मर्द से अठखेलियाँ करती है।

"जब तक माँस झुलस ना जाय

इसी तरह मर्दों को

बहका उकसा कर

इसी उन भावों को हरा भराकर

अपनी इस हालत का बदला लिया करुँगी।''[479]

उधर सूरदास के मन में उठने वाले अन्‍र्द्वन्द्व का एक चित्रण देखिए–

''भैया मैं कुछ उलझ गया हूँ

बिना आंख के मैंने इतने बरस बिताये

हाथों से पावों से कानों से अच्छा भला काम चलता था

लेकिन अब कुछ दिन से भइया

रह रहकर दिल में उठता है

मन से समझ बूझकर जो मैं तय करता हूँ

दिल चाहता है वही गलत है।[480]

चरित्रांकन की दृष्टि से सूरदास सुन्दर है। उसके पात्र वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करते है। नवयुवती दल दलित आवारा नारी का प्रतीक है, तो स्टेशन मास्टर बंगाली बाबू और जोधन उन व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हे जो पैसों और पद के लालच में नारी के साथ अपनी काम वासना की पूर्ति करना चाहते है। उनके लिए नारी खिलवाड़ है। सूरदास सच्चा प्रेमी और भावुक व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है। आवारा नारी को अपना कर वह अपने जीवन में नई प्रेरणा प्राप्त करता है। कथोपकथन की दृष्टि से सूरदास सुन्दर है। उसमे न तो लम्बे–लम्बे कथोपकथन है। और न लम्बी लम्बी स्पीचें। उसमें कोई भी संवाद आधे पृष्ठ का नहीं है।

छोटे छोटे सहज वाक्यों के द्वारा कथानक में सुरुचिता लाई गई है। सूरदास की भाषा बोल चाल की भाषा है। उसे पढ़ेन से ऐसा प्रतीत होता है। कि

काव्य पढ़ा जा रहा है। मुक्त छन्द का प्रयोग और भाषा की सहजता की दृष्टि से सूरदास गीतिनाट्य को श्रेष्ठ गीतिनाट्य कहा जा सकता है।

जहाँ तक काव्यत्व का प्रश्न है। लेखक ने कहीं भी लम्बी चोड़ी उडान नहीं भरी उसने तो नजनदी के उस तथ्य को प्रगट किया जिसे हम रोज देखने है। आकाश मार्ग के ख्याली पुलावों को पकाकर वास्तविकता की भाव भूमि पर गीनिाट्य की सर्जना की गई है। सूरदास एक अभिनेय नाटक है। स्टेशन को प्लेटफार्म के दृश्य बंध पर भी पूरी घटना घटित होती है। उसे सफलता पूर्वक मंच पर प्रदर्शित किया जा सकता है।

एक कंठ विषपायी (दुष्यन्त कुमार)—दुष्यत कुमार वर्तमान पीढ़ी के उन सशक्त लखेनीकारों में से हैं जिन्होंने साहित्य को नया मोड़ दिया है। 'एक कंठ विषपायी' उनका बहुचर्चित गीतिनाट्य है। आलोचकों ने इसे 'अंधायुग' के बाद हिन्दी की अनुपम रचना माना है। अनेक गोष्ठियों के माध्यम से सुधी समीक्षक समय समय अपने विचार प्रगट करते हैं। यह गीतिनाट्य सितम्बर 1963 में लोक भारती प्रकाशन द्वारा प्रकाशित किया गया है। इसके साथ ही कल्पना का अक्टूवर तथा नवम्बर 1963 के अंक में भी यह धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ। दोनों के उपसंहार में अन्तर है। जहाँ पुस्तक में उद्घोषणा के साथ

"सीमा पर रक्तपात नहीं हुआ

युद्धक्हो गया समाप्त

सुने सब प्रजा यह समाचार सुने।"[481]

गीतिनाट्य समाप्त हो जाता है जहां कल्पना में एक दूसरा स्थूल निश्चात्मक अंत भी दिया है। जिसमें भगवान शंकर स्वयं पधारते है और ब्रह्म कहते है "फिर संक्रमण काल का विष पी लिया उन्होंने जिनके कारण फिर नूतन मूल्य को स्थापना हुई है।

लेखक को 'एक कंठ विषपायी' लिखने की प्रेरणा अनन्त मराल शास्त्री से प्राप्त हुई। इसमें जीवन और नवीन और प्राचीन मान्यताओं का द्वन्द्व चित्रित है। कथावस्तु का आधार दक्ष यज्ञ का वह आख्यान है, जहाँ भगवान शिव का अपमान होता देख सती ने आत्मदाह किया था और शकर के गणों ने यज्ञ विध्वंस पर उनके अपमान का बदला लिया था। हर नई पीढ़ी पुरानी पीढ़ी की मान्यता और विचारों के प्रति विद्रोह करती है। पुराने मूल्यों को समाप्त होते देख पिछली पीढ़ी नवीन मूल्यों पर प्रहार करने लगती है। लेकिन धीरे धीरे वे नये विचारों को अपना लेते है। पुरानी मान्यताओं और विचार धाराओं की लाशे स्वयं या तो मर मिटते है। या नये विचार अपनाकर नई मान्यताओं का कालघूट विष पीकर विषपायी बन जाते है।

"हर परम्परा मरने पर थोड़े दिन तक

सारा वातावरण सून्य से भर जाता है।

लेकिन उसे वावजूद फिर

सून्य की उसी भूमि पर कोइ नया रूपधर

नन्हा अंकुर एक उभर आता है।"[482]

कथानक का प्रारम्भ वीरिणी और दक्ष के वार्तालाप से होता है। दक्ष ने अपने जामान शिव को छोड़कर यज्ञ में सभी देवताओं और लोकप्रतिनिधियों को आमत्रित किया है। वारिणी इसे लोक मार्यादा के विरुद्ध मानती है। इसी समय सामाचार मिलता है कि दक्ष सुता सती शिव के गणों के साथ यज्ञ मंडप में पहुँच गई और सभी अतिथियों को अपशब्द कह रही है। अनुहूत होने के कारण वे महल में भी नहीं आना चाहतीं। वीरिणी की आत्महत्या की धमकी से दक्ष पहले तो सती का सम्मान करना चाहते थे। लेकिन जब सर्वहत कहता है कि सती किसी व्यावस्था को नहीं मान रही है। तो दक्ष भी सती को यज्ञ में स्थान न देने का

निश्चय करते है। थोड़ी देर बाद ही सूचना मिलती है। कि सती ने अग्नि में आत्म दाह कर दिया है। और महादेव का नन्दी क्रोध में चला गया है।

द्वितीय दृश्य में युद्ध का भीषण चित्र अंकित किया गया है। शिव गण दक्ष नगरी का विध्वंस कर देते है। नगर का सारा परिवेश छिन्न भिन्न हो गया है। युद्ध की मनोवृति का शिकार सर्वहत कहता है–

"सारे नगर में ताजा
जमा हुआ रक्त है
और सड़ी हुयी लाशे है
क्षत विक्षत तन है
और उनपर भिन्नाते हुए
चीलों गिद्रो के झुंड
और मक्खियाँ है।"[483]

सर्वहत दक्ष की नगरी के रक्तपात का एकमात्र साक्ष्य है। शिव की प्रतिहिंसा का मूर्तिरूप स्वयं शिव प्रतिहिंसा की मूति वन गये है। वे सती के मृत शरीर को लादे देबों से प्रतिशोध लेने का निश्चय करते है।

तृतीय दृश्य में शिव के मानसिक द्वन्द्व का सुन्दर चित्रण किय गया है। सती के विरह में शिव सामान्य जन की तरह विलाप करते है। वरुण और कुवेर शिव से संधि करना चाहते है। लेकिन शिव को सिवाय युद्ध के और कुछ नहीं सूझत वे कहते है कि यदि संध्या तक सती में चेतना न आयी तो पूरा ब्रह्माण्ड भस्म कर दूगा।

इन्द्र वरुण कुवेर शिव के साथ युद्ध करने का निश्चय करते है। किन्तु बह्मा उनका साथ नहीं देते। इन्द्र प्रजा की रक्षा के लिए यह चाहते है लेकिन ब्रह्मा ऐसे आत्मघात मानते है। वे शिव की सेना को और निकट आने का आदेश देते है। इन्द्र

पुनः आत्म रक्षा के नाम पर युद्ध की आज्ञा चाहते है। बह्मा कहते है–

मैं आज्ञा दूँ

लेकिन मैं तो आत्मघात को

आत्म सुरक्षा नहीं समझता।''[484]

उनके विचार से युद्ध समस्या का समाधान नहीं है। भीड़ उत्तेजित नारों और दबाब के बावजूद वे युद्ध की आज्ञा नहीं देते। उनके अनुसार यदि दूसरा पक्ष अन्धा हो जाए तो तुम भी उसी तरह क्रोधान्ध हो जाओंगे क्या युद्ध स्वयं में कोई उपलब्धि है। इन्द्र का विचार है कि जहा न्याय की हत्या हो रही हो जहां आसुरी शक्तियाँ सर उठाए। वहां धैर्य का दुर्ग अन्ततः ढह जाता है। तब एक मात्र उपाय युद्ध ही रह जाता है। वह्मा इसे सामूहिक आत्मघात की संज्ञा देते है। इसी समय सर्वहत प्रवेश कर इन्द्र से युद्ध की अनिवार्यता पर व्यंण्य करता है। वह कहता है युद्ध चीने वाले वास्तव में अपने उत्तरदायित्व से बचना चाहते है। तुम न्याय के नाम पर जो युद्ध चाहते हो वह भी नये मूल्यों से कतराना है

"युद्ध एक व्यस्तता का नाटक है

तुमने भी न्याय के नाम पर

यह नाटक रचना चाहा था

नये सत्य की सृजन व्यथा से

कतराना वचना चाहा था।''[485]

'एक कंठ विषपायी' दो विरोधी विचार धाराओं और पात्रो का संघर्ष है। एक ओर दक्ष है जो जान बूझकर शिव को अपमानित करने की योजना बनाते है। तो दूसरी और उनकी पत्नी वीरिणी है जो समझौता करके मामले को टालना चाहती है। एक ओर विषपायी शिव है जो प्रतिशाधे की ज्वाला में जलकर युद्ध को उतारु है और तीसरी और इन्द्रादि देवता है। जो युद्ध का जवाव युद्ध से देकर सामूहिक

आत्महत्या की बात करते है। नाटक का द्वन्द्व एक साथ दो स्तरों पर चलता है। एक युद्ध की विभीषिका के स्तर पर और दूसरा परम्परा के बोझ के स्तर पर युद्ध करना चाहिए या नहीं प्रश्न का कारण है। पुरनी पीढ़ी और नवीन पीढ़ी का संघर्ष भी दृष्टव्य है वयक्तिगत मानसिक संघर्ष वीरिणी और सर्वहत के माध्यम से वयक्त हुआ है। वीरिणी का सघंर्ष भावी आशंका और वात्सल्या से पूरित है।

चित्रांकन की दृष्टि से 'एक कंठ विषपायी' के लगभग सभी पात्र 'टाइप' बन गये है। सर्वहत युद्ध पीड़ित जनता का और शासन त्रस्त जनता का प्रतीक है। शंकर पुरातन व्यवस्था के, इन्द्र युद्ध प्रिय शासकों के और वह्मा शान्ति प्रिय शासक के प्रतीक है। इसी प्रकार दक्ष प्रजापति उद्वत राजा वरुण कुवेर अपनी ही रक्षा से भीत देव विष्णु व्यवहारिक व्यक्ति के रूप में हमारे सम्मुख आये है।

सर्वहत 'एक कंठ विषपायी' का सबसे अधिक जीवंत पात्र है। वह सभी घटनाओं का साक्षी और जनता का प्रतीक है। प्रारम्भ में वह एक आज्ञाकारी सेवक के रूप में दिखाई देता है, लेकिन दक्ष–पक्ष के विध्वंस के बाद वह विक्षिप्त सा हो जाता है। व्यंग्य उसके जीवन का अंग बन जाता है। वह कटु सत्य बोलने वाला पात्र है। उसके प्रश्नो का उत्तर किसी के पास नहीं है।

बह्मा देवों के नायक, दूरदर्शी चतुर और समझदार है। क्षणिक घटनाएँ उन्हें उत्तेजित नहीं करतीं। गम्भीरता उनका भूषण है। इन्द्र के बार–बार उकसाने पर भी वे युद्ध की आज्ञा नहीं देते। वास्तव में उन व्यक्तियों से युद्ध को चाहे वह किसी हेतु लड़ा जाए बुरा समझते है।

इन्द्र आधुनिक युद्ध पिपाशु शासकों के प्रतीक है। वे मर्यादा और मान के नाम पर युद्ध लड़ना चाहते है। आत्म सुरक्षा संरक्षण और न्याय के नाम पर युद्ध करने वाले लोगों का तर्क है कि हानि लाभ के सन्दर्भों में मान और मर्यादा के प्रश्न नहीं परखे जाते। इन्द्र में अहं, उग्रता, क्रोध और अधीर स्वभाव के चित्रित किए गये

है।

शिव क्रोधी है, किन्तु उनका क्रोध परिस्थिति जन्य है। वे अपमान का बदला क्रूरता से लेते है। वे अनुदारवादी हैं। वे परम्पराओं से चिपके रहना चाहते है। लेकिन जब परिवर्तन होता है तो उनसे उत्पन्न विषम स्थितियों का जहर भी वे ही पी लेते है। वे सच्चे प्रेमी के रुप में दिखाये गये है।

वीरिणी में नारी सुलभ उदारता, ममता और दया है। समाजिक बन्धनों का पालन करता वह अपना कर्तव्य समझती है। यहाँ उसका मातृ रूप ही अधिक व्यक्त हुआ, पति रूप नहीं।

दक्ष हठी, क्रोधी क्रूर व क्रूर हृदय है अनाहूत आई पुत्री को सामान्य दर्शक की तरह यज्ञ देखने की बात कठोर हृदय पिताजी ही कर सकते है।

चरित्रांकन की दृष्टि से 'एक कण्ठ विषपायी' सफल रचना है। फिर भी एक कण्ठ विषपायी के चरित्रों में कुछ विसंगतियाँ देखने को मिलती है। जिनका निवारण नही हो पाता। विषपायी शिव तो परम्परा द्रोही रहे हैवे सदैव सामाजिक परम्परा से हटकर चले है। फिर भी परम्परा ग्रस्त कैसे हो गये। शिव और दक्ष के चरित्र में भी समानता है। दक्ष ने अपने अपमान का बदला लेने के लिए शिव से प्रतिशोध लिया और शिव ने भी अपना बदला लेने के लिए दक्ष से प्रतिशोध लिया।

वास्तव में शिव के तीन रूप हैं– उनका एक रुप परम्परा भंजक का है, दूसरा स्वरुप मानवीय संवेदनाओं से मुक्त देवता का है। और तीसरा रुप परम्परा ग्रस्त व्यक्ति का है। वास्तव में हर नयी पीढ़ी पिछली पीढ़ी के प्रति विद्रोह करती है। पुराने उससे चिपके रहते है। जब हम स्वयं पुराने हो जाते है, तो हमें नये विचारों और सिद्धान्त से जूझना पड़ता है। विद्रोह– आस्था–विद्रोह यही तो क्रम है। जो युगों से चला आ रहा है। शिव क्या समझते थे कि वे जिस समस्या को लेकर दक्ष से युद्ध कर रहे है। वही समस्या उनके सामने आ खड़ी होगी?

एक कण्ठ विषपायी में कवि का हृदय मानवीय मूल्यों के प्रति ही अधिक संवेदनशील रहा है। कहीं कहीं वैचारिक पृष्ठ भूमि पर आकर कवि सूक्तिकार बन गया है। यथा–

"दुर्दिन जब आते है

तो पहले

व्यक्ति का स्वतन्त्र बोध चिन्तन और प्रज्ञा हर लेते है।"[486]

यहाँ तुलसी की वही नीति वाणी दुहराई गयी हैं जाको प्रभु दारुण दुःख देही ताकी मति पहिलेहि हरि लेंही।"

"एक कण्ठ विषपायी' की भाषा सहज सरल और सामान्य है नन्द दुलारे बाजपेयी के विचारों में एक कण्ठ विषपायी की भाषा गद्य की सरिण में चली गयी है। परन्तु गद्य का रुखा प्रभाव व नकलीपन उसमें नही है।" वास्तव में प्रस्तुत गीतिनाट्य पढ़ने पर कहीं कहीं विल्कुल गद्य जैसी प्रतीत होता है। ऐसा लगता है जैसे गद्य के ही टुकड़े करकें पक्ष का आकार दिया गया है। उदाहरणार्थ वीरिणी का प्रारम्भ का कथन देखिए–

"स्वामी

हमको इच्छा के विरुद्ध भी

ऐसे बहुत से कार्य करने पड़ते है

जिनमें अलौकिक मर्यादा का पालन होता है।"[487]

इसी कथन का इस प्रकार भी कहा जा सकता है–

स्वामी हमको इच्छंा के विरुद्ध भी ऐसे बहुत से कार्य करने पड़ते है, जिनमें लौकिक मर्यादाओं का पालन होता है। स्पष्ट है कि 'एक कण्ठ विषपायी' की भाषा गद्य के अधिक निकट है।

प्रस्तुत नीतिनाट्य की अभिनेयता के विषय में भी अलग–अलग मत है।

एक वर्ग को इसमें सजग नाटक प्रतिभा के दर्शन नहीं होते। तनाव और नाटकीयता का आभास देने के लिए 'रेटरिक' का सहारा लिया है। इसके समस्त कार्य व्यापार और भाव व्यापार गति का विरोध नहीं कराते और उसमें सच्ची नाटकीयता स्थापित नही हो पाती।"[488] दूसरी ओर कुछ समीक्षक इसमें पूर्ण नाटकीयता के तत्व देखते है। वाजपेयी के अनुसार नाटकीय उपकरणों की दृष्टि से काफी स्पष्ट है। उसकी कथा नाटकोचित विकास क्रम से समन्वित है।"[489]

वास्तव में उक्त दोनों ही मत अतिवादी है। 'एक कण्ठ विषपायी' में नाटकीय स्थितियों का ध्यान तो रखा गया है। लेकिन नाटकीयता पर काव्य हावी है। कहीं कहीं अतिशय भावुकता ने नाटकीयता स्थिति को दवाने का प्रयत्न किया है। फिर भी उसका रंगमंच पर सफल अभिनय किया जा सकता है।

वातावरण सृष्टि में भी लेखक को विशेष सफलता मिली है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे युद्धोत्तर स्थिति का बिम्ब हमारे सामने आ खड़ा हुआ हो विष्णु दक्ष नगरी का वर्णन करते हुए कहते है–

"जन संकुल राज मार्ग नीरव

जन हीन नगर

चिड़ियों के चुने हुए पंखों से

सारे घर

सार क्रम छिन्न भिन्न

पूरा परिवेश भग्ना"

वास्तव में शब्द विम्ब प्रस्तुत करने में दुष्यन्त कुमार जी को विशेष सफलता मिली है। चित्रात्मकता बिम्ब और प्रतीक सभी दृष्टियों से यह गीतिनाट्य सुन्दर है।

सामान्यताः 'एक कण्ठ विषपायी' की तुलना अन्धायुग से ही की जाती है।

लेकिन दोनों के विषय में और शिल्प में अन्तर है। अन्धायुग की मूल समस्या दिशा हीन संस्कृति है जिसमें विकृति कुरुपता और कुंठा आद्योपांत भरे है। वहाँ अर्धसत्यों के विरुद्ध प्रतिकार की लड़ाई है। लेकिन एक कण्ठ विषपायी में नई ओर पुरानी पीढ़ी का संघर्ष है। अंधायुग में युद्धोपरानत की विकृति ही विकृत है। एक कण्ठ विषपायी में युद्ध के पूर्व और बाद दोनों का विवेचन है। युद्ध की वीभत्सता दिखाने के बाद इन्द्र पुनः युद्ध को तत्पर है। जिस प्रकार एक महायुद्ध के भीषण परिणामों को देखकर भी द्वितीय हुआ। यदि चाहते तो युद्ध टाला जा सकता था। लेकिन हिटलर को बह्मा नहीं मिले। कुल मिलाकर एक कण्ठ विषपायी एक सफल रचना है। जिसमें गीतिनाट्य के लगभग सभी त्त्वों का सम्मिलन है।

उत्तर प्रियदर्शी– (अज्ञेय)– एक बार भ्रमण करते हुए एक महाश्रमण गौतम बुद्ध एक बालक के पास रुके और भिक्षा माँगी। बालक ने मुदित मन एक मुठ्ठी धूल उठाकर उन्हें दे दी। यही बालक अगले जन्म अशोक हुआ और इसी दान के फल स्वरुप वह जम्बूदीप का राजा बना।

यह कथा प्रारम्भ में 'स्मरण करो' कहकर सम्पादकों के माध्यम से बताई जाती है। इसके पश्चात कलिंग विजयी अशोक के अहं का चित्रण है। वह कहता है–

"राज राज राजेश्वर
परमेश्वर प्रियदर्शी
आ समुद्र आ क्षितिज
जहाँ जो दीख रहा है
मेरा दीवानां प्रिय का शासित है।"[490]

वह मन्त्री से पूछता है कि बताओ मेरा शासित नरक कहाँ है? राजा की इच्छा से नरक बनता है। घोर उसका अधिपति बनाया जाता है। वह अपना दमन

चक्र प्रारम्भ करता है। एक भिक्षु भिक्षा माँगता हुआ नरक द्वार में प्रवेश कर जाता है उसे पकड़ कर खौलते कड़ाह में डाल देते है, लेकिन वह देखता है कि आग की लपटे ठण्डी हो रही है। भिक्षु पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। समाचार सुनकर स्वयं सम्राट वहाँ पहुचते है भिक्षु बताता है कि नरक तुम्हारे भीतर है। अहंकार ही वह नरक है। जब ह्रदय में पार पिता करुणा जागृत होती है। तो अहंकार समाप्त हो जाता है नरक गल जाता है–

"जहाँ तुम्हारे अहंकार का

यम की सत्ता

स्वयं तुम्हीं ने दी उनको

तुम हुए प्रतिश्रुत

एक समान अकरुणा के बन्धन में

नरक तुम्हारे भीतर है वह वहीं

जहा से निसृत पारमितता करुणा में

उसका और घुलता है स्वयं नरक ही गल जाता है।"[491]

भिक्षु के उपदेश से अशोक के ज्ञान चक्षु खुल जाते है। वह नरक तुड़वा देता है। वास्तव में नरक प्रतीक है उसके दर्प का विजय लाभ पर पहले अहंकार ध्वस्त होने पर नये मूल्य का बोध नई दृष्टि का उन्मेष यही मनोवैज्ञानिक क्रम है। उत्तर प्रियदर्शी अशोक की तरह आज का मानव भी भाँति और दुलार का आकांक्षी है। दूसरी ओर युग का यमराज उन्हें भयंकर यातना देना चाहता है। करुणा द्वारा नरक की मुक्ति हमारे अन्दर के अहं की समाप्ति है। नरक का आयोजन अपने तन प्रेत शत्रुओं की दण्ड देने के लिए ही है।

गहरे धरातल पर मानवीय मूल्यों की खोज इस गीतिनाट्य में की गई मोहान्ध हुआ मानव बिना पारपिता करुणा के नरक की यातना सहता रहेगा।

वास्तव में मानव का सदैव सद् और असद् से संघर्ष चलता रहता है। कभी वह एक ओर झुकता कभी दूसरी ओर। उत्तर प्रियदर्शी में भी इसी सद् असद् का संघर्ष है। मनुष्य ने असद् के मार्ग पर चलकर जिस नरक का निर्माण किया है, उससे प्रेम और करुणा द्वारा ही मुक्ति मिल सकती है।"[492] अशोक के मन का असद् अन्ततः पराजित होकर करुणा के समक्ष आत्म समर्पण कर देता है।

चरित्रांकन की दृष्टि से इस गीतनाट्य में दो ही प्रधान पात्र है। अशोक ओर घोर। अशोक में अहं और क्रूरता है जो कलान्तर में बदल जाती है। घोर हिंसा और क्रूरता की प्रतिमूर्ति है। भिक्षु गौतम बुद्ध का प्रतिरूप है। चरित्रों का विकास मनोवैज्ञानिक आधार पर हुआ है।

शिल्प की दृष्टि से उत्तर प्रियदर्शी अन्य गीतिनाट्यों से भिन्न है। इस पर जापानी 'नो' नाटकों का प्रभाव है आरै स्वर युद्ध नाट्यधर्मी है। कथा विकास में सम्पादकों का सहारा लिया है। इसके कारण नाटकीय प्रभाव में कमी हुयी है इसमें उनहत्तर बार सम्पादकों के ओर समवेत स्वर आये है जबकि प्रियदर्शी अशोक केवल ग्यारह बार बोला है। सारी कथा नरेशन के माध्यम से आगे बढ़ी है।

लेखक ने अभिनेय बनाने के लिए विस्तृत रंग संकेत दिये है। पात्रों की वेशभूषा और मंच सज्जा के सम्बन्ध में प्रारम्भ में ही प्रकाश डाला गया है। मंच व्यस्था का एक मानचित्र भी प्रारम्भ में ही लगाया गया है। उत्तर प्रियदर्शी व्यवस्था का एक पूर्ण अभिनेय नाटक है और इसका प्रदर्शन भी 6 मई 1967 को दिल्ली में तथा 26 दिसम्बर 1967 को उज्जैन में हुआ जिसकी दर्शकों ने पर्याप्त सराहना की।

नाटक को दृश्यों या अंकों में विभक्त नहीं किया गया। एक ही दृश्य बन्ध पर सम्पूर्ण नाटक का अभिनय होता है। काव्यत्व की दृष्टि से भी यह गीतिनाट्य सुन्दर तो है लेकिन उच्चकोटि की भावाभिव्यंजना के दर्शन सघन नहीं हो पाया।

अशोक के ह्दय की झाँकी यत्र तत्र सुन्दर है। उज्जैन से प्रदर्शन पर टिप्पणी करते हुए दिनमान ने लिखा है कि उत्तर प्रियदर्शी एक सशक्त काव्य है। कुछ अंशों में यह बात सही भी है।"[493] लेकिन काव्यत्व पर नाटकीयता हावी है इसमें कोई सन्देह नहीं।

काव्य बिम्ब उत्तर प्रियदर्शी में सुन्दर बन पड़ें है। अशोक का एक विम्बात्मक चित्रण देखिए—

"बृष कंधर, उल्लम्ब बाहु

उन्नत ललाट भ्रू कसने

नाखिक दर्प स्फीत

उर वज्र

नेत्र अंगाख

युगल मुकुर में करते प्रतिविम्वत

कलिंग लक्ष्मी का घर्षण।"[494]

अजेय का उत्तर प्रियदर्शी उन आलोचकों को एक जबाब है जो गीतिनाट्यों को अभिनेय नहीं मानते।

यक्ष की नगरी, प्रत्यक्ष की नगरी (भागवत प्रसाद)—'यक्ष की नगरी प्रत्यक्ष की नगरी गीतिनाट्य औद्योगिक पृष्ठभूमि पर आधारित है। श्री भागवत प्रसाद ने राउर केला के औद्योगिक जीवन के माध्यम से वर्तमान समाज का वास्तविक चित्र प्रस्तुत किया है। लेखक का दावा है। कि औद्योगिक परिवेश में लिखी भारतीय में यह पहली काव्य कृति है जो सच्चे माने में एक साहित्यिक उपलब्धि कही जा सकती है।"[495]

इस गीतिनाट्य की कथावस्तु चार वृत्तों में विभक्त है। प्रत्येक वृत्त में समाज के विभिन्न पार्श्वो का यर्थाथ चित्रण हुआ है चारों वृत्तों को एक विस्थापित

आदिवासी किसान चरुआ के अन्तर्मन और स्थूल जीवन के माध्यम से जोड़ा गया है आधुनिक युग बोध के मर्म को समझकर लेखक का मन कराह उठा है सामाजिक राजनैतिक धार्मिक, साम्प्रदायिक साहित्यिक समस्त परिवेशों को लेखक ने उलटा पलट है नारी की वासना मनुष्य की लिप्सा को प्रस्तुत किया है। गाँव और शहर की मर्यादाओं से अवगत कराया है। नये युग की प्रवृत्तियों का चित्र खीचा है।

राउर केला के गॉव में औद्योगिक बस्ती का निर्माण होता है। सरकार का आदेश हुआ कि गॉव के लोग अपना घरवार और खेत छोडकर चले जाये। सरकार उन्हें मुआवजा देगी।

"हुक्म सरकार का घर बार छोड़ दो

मिलेगा मुआवजा छान छप्पर तोड़ दो।"[496]

गॉव के लोग इसका प्रतिरोध करते है और पुलिस का दमन चक्र चलता है। गोली चलती है अनेक किसान मारे जाते है। बाद में गॉव वालों को कम्युनिष्ट करार देकर बन्दी बना लिया जाता है। सरकार अपने कुकृत्य पर पर्दा डालने के लिए कहती है–

"कम्यूनिष्ट और पुलिस की भिड़त लाचार

करनी पड़ी पुलिस को गोलियों की बौछार

कुम्बा गिरफ्तार कम्यूनिष्ट गद्दार।

नई औद्योगिक बस्ती का निर्माण होता है। टिर्की के खेतो पर लीला टाकीज बनता है कनझू के खेतों में राउर केला हाउस का निर्माण होता है। मुरम के खेतों पर जनरल हास्पिटल बनता है और इसके निर्माण के साथ ही शहर के वह चित्र प्रारम्भ हो जाते है। जिसे सभ्यता कहा जाता है। वर्ग विस्फोट तोड़फोड़ , शहर की भीड़भाड़ मे व्यक्ति का अस्तित्व खो जाता है–

"बूँद बूँद से भरा समुद्र बूद खो गई

व्यक्ति खो गया आत्म अभिव्यक्ति खो गई

युग की अजेय शक्ति आज है समूह में

आज विश्व कर रहा समूहवाद का निस्पात।"[497]

यूनियनें बनी, संघ बने। लोग शहर की ओर भागने लगे। गाँव के गाँव औद्योगिक बस्ती की ओर दौड़ पड़े। इसका वर्णन अच्छा हुआ है–

" गाँव चले

गाँव के किसान

घरवार हल बैल जर जमीन वेच खूँच चलो

पगड्डी भाती नहीं सड़क चले

फैंक फॉक धोती को

पतलून में कसे कड़क चले

वासी हुए चेतावर कजरी वारह मासे

गाते हुए सिने गीत बहक चलें

शहर चले शहर चले शहर चले।"[498]

प्राचीन परम्परायें बदल गई मानव दिशा नवीनता की लहर आयी। युग की मान्यताए बदल गई परिभाषाएँ बदल गई। मानव दिशाहीन होकर आवारा कुत्ते सा झूँठी पत्तले चाटने लगा।

यह द्वितीय दृश्य का वर्णन है इसी सभ्यता का आगे का चित्रण प्रथम वृत्त में है जिसमें पुलिस गोलीकाण्ड में मरे प्रतात्माओं और चरुआ का वार्तालाप है। इसमें वर्तमान सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक परिवेश का सुन्दर चित्रण है। हाशिम की प्रेतात्मा कहती है कि आज का धर्म अवसरवादी हो गया है। छः दिन पाप के वाद सनडे को क्रास बॉधकर भगवान से मनोतियाँ मनाता है। पाप

करके तीरथ नहाता था—

"तीरथ नहाएगा धोलेगा पाप को

खोदेगा जीवन के सारे संताप को

घोड़ा एक चर्रक खरीदेगा नमाज में

राम नाम जप लेगा खुजली और खाज में।"[499]

आज का राजनीतिज्ञ दलबन्दी गुटबन्दी भाषणबाजी लफ्फाजी में पटु हो गया है सत्य और अहिंसा के नाम पर वह भले बुरे सब काम करता है। आग्रह अहिंसा का हिंसा की धोकियाँ उसका धर्म बन गया है।

"दल बंदी गुट बंदी मोड़दार सम्भाषण

मुँह फेरी मनफेरी तुम्वा फेरी का जलन।"[500]

चरुआ कहता है कि आज के साहित्यिक भी नकल करने लगे है। अगर आज समाज की नकाब उलट दी जाय ता सब नकटै दिखेगे—

"कहो क्या कवियों के नकली स्वर भाते है

भाड़े पर रोते है भाड़े पर गाते है

कोइ नहीं आज जो नकलियत समेट ले

और इस जहाँ को असलियत भेट दे।"[501]

मानव साम्प्रदायिकता की आग में जल रहा है। मानव मानव से धृणा करता है।

तृतीय वृत में वर्तमान नारी की पिपाशा का चित्रण हंस और हरिणी के रूप में हुआ है। हरिणी भागती है चरुआ के अन्तर्मन का सहारा लेती है। किन्तु वहाँ उसे सन्तोष नहीं मिलता यह सोचती है—

"'एक को मन दूँ दूसरे को तन

नारी के जीवन की नियति यही

रोज उसे ओढ़ता नया रंगा।''[502]

इसी लिप्सा में हरिणी भागकर वहेलिये के पीछे हो लेती है और फिर वह हिरणा बन हंसिनी किसी की लिली हुई किसी की लैला यह नारी का ही वर्णन है–

''गोरा गोरा तन खुली बाहों में फैला

किसी ने आह कहा, कहा किसी ने वाह

किसी की प्यास मिटी किसी की भूख।''[503]

लेकिन हंसिनी ही प्यास नहीं मिटी वह सोचती है–

''मन की नियति को किस तरह लांघू मैं

किस तर अपनाऊँ तन का व्यापार।

अपनी लिप्सा और प्यास बुझाने वह गोरों के देश में आती है जहाँ नाइट क्लबों में नग्न नृत्य होता है। लेकिन उनकी प्यास वहाँ भी नहीं बुझती। अन्त वे वह हनी हग्न (अत्याधुनिक उभरते हुए वर्ग का अन्मुक्त और उच्छश्रंखल प्रदर्शन) का आनन्द लेने व्रह्माणी नदी के पास जाती है। किन्तु शांति वहा भी नहीं मिलती। क्योंकि शांति वासना में नही त्याग में हैं। अतः वह शांति की खोज में इधर उधर दौड़ती है वह कहती है–

''लिप्सा की बाहों का फैलाब अन्तहीन

कौन पा सकेगा पार।''[504]

चतुर्थ वृत्त में मानव की उच्च्य आकांक्षा का चित्रण है मानव विभिन्न धार्मिक मत मताम्वरों में फँसकर अपने को भूल बैठा है। देवता चरुआ की अन्तरचेतना को वापस भूमि भेज देता है ताकि वह धरती की जाकर सेवा कर सके, उसे संवार सजा सके। वह उसे पौरुष का सलीव देकर विदा कर देता है। यही इसका कथानक है। सम्पूर्ण गीतिनाट्य वाचिक क्रिया से पूर्ण है। वर्तमान को सन्दर्भित

करते हुए अवचेतन की जिन धुंधल तस्वीरों को लेखक ने उभाड़ा है वे हमारी इसी प्रत्यक्ष की नगरी की है। कहीं कहीं लेखक की अनुभूति इतनी प्रखर हो गई है कि वह अशिव को प्रस्तुत करने में भी नहीं हिचकिचाया अवचेतन पूर्ण नग्न होकर उतरा हैं। तृतीय वृत्त में तो पिपाशा का सुन्दर चित्रण है–

"गारे गोरे हंस और हंसिनियाँ

चा चा चा में जोड़े रहे झूम

सिर की सूघते और रहे चूम

खुला खुला खेल यह खुला खुला व्यापार

खुला प्रेम विनिमय तन का व्यापार।"[505]

X X X

आज के जमाने के प्यार का धरातल ठोस

ओठों का संघर्षण आलिंगन परिरम्भण।"[506]

गीतिनाटक का अधिचेतन की अवस्था में हुआ है जिसके कारण उसमें रहस्यवाद जैसी दुरुहता आ जाती है किन्तु उसे पीछे आशावादित ।और नव निर्माण की प्रेरणाा छिपी है।

इस गीतिनाट्य की मुख्य विशेषता मानव के वर्तमान परिवेग को प्रस्तुत करना रहा है जिसमें लेखक को पूर्ण सफलता मिली है। चरित्र चित्रण की दृष्टि से इसमें सफलता नहीं मिली। चरुआ की एक मात्र है जो चारों वृत्तों में है इसके अतिरिक्त प्रथम वृत्त में हासिम की प्रेत आत्मा द्वितीय वृत्त में डेविड की प्रेतात्मा तृतीय दश्य में हंसनी हिरणा और अन्तिम वृत्त में देवता है। क्रियात्मकता इन पात्रों में बिल्कुल नहीं है। प्राया दो पात्र ही आपस में वर्तमान समाज की स्थितियों की व्याख्या सी करते रहते है। सभी पात्र निष्क्रिय है। स्त्री की प्रतीक हंसिनी अवश्य सुख और शान्ति की खोज में इधर उधर भटकती है किन्तु उसे शान्ति नहीं

मिलती।

मानसिक द्वन्द्व आवश्यक आदि से अन्त तक देखने को मिलता है। घटनाओ का विवरण नेरेशन के माध्यम से किया गया है। यथा राउर केला ओर औद्योगिक बस्ती के पूर्व पुलिस के प्रत्याचारों का वर्णन।

संवादों की दृष्टि से यक्ष की नगरी प्रत्यक्ष की नगरी सुन्दर है। वृत्तगंधी कथनोपकथनों के माध्यम से कवि जो कुछ भी कहना चाहता था उसने कहा है भाषा में सफलता है किन्तु कहीं कहीं ऐसे शब्दों का प्रयाग हुआ है। जिनका सामान्य प्रयोग नहीं होता। यथा हनी हग्न घोड़ा एक चर्रक आदि वर्तमान परिवेश से सम्बन्धित अंग्रेजी शब्दों का भी बाहुलय है यथा फेयर शौप, चैंज और एक्सचेंज ऐनेस्थेशिया शावर आदि। कहीं कहीं कहावतों और मुहावरों का भी प्रयोग हुआ है। जैसे "काठ छिले चिकना बात छिले रुखड़ा टांय टांय फिस्स होना। कहीं कहीं फाड़ दिखे अंगिया विगाड़ दिए आवरु जैसे अश्लील शब्दों का प्रयोग हुआ है। कहीं कहीं 'साले सियार' आदि शब्दों का प्रयोग वातावरण सृजन में सहायक हुआ है। यत्र तत्र काव्यात्मक चित्र भी प्रस्तुत हुए है कहीं कहीं कवि भावुक होकर क्रान्ति की बात कर उठता है—

"नोच दे पंखा हम मराल का

और दे दबोच सिर मराल का

सुख भाग सम भग हम करें

X X X

दुख भाग सौप दे मराल को।"[507]

प्रकृति के दो एक चित्र सुन्दर वन पड़े है लेकिन उसके प्रतीक आधुनिक है—

"ओंधा आकाश का तिलिस्मी कटोरा

शीर्षस्थ चन्द्रमा पूनों के निशीष्य का

ढाक रहा गुम शुम जादुई डोरा

सम्मोहन छा रहा सारे निसर्ग पर

अखिल आत्म चराचर

थके थके रूके रूके

ठगे ठगे विक बिके।"[508]

एक और बिम्ब देखिए–

"रूहर कला

रूप कला

हर तरफ रूप ही ठलक रहा

मोरम की घूप में एक लोह फूल खिला

मरकती पहाडियाँ गर्बीली

पहन हरित साड़ियाँ घघरीली

झूम झूम

कोयल के सरस अधर चूम चूम बल जाती

सुवह शाम दुलराती

फिर क्वारी घाटी की गोद में

किलक रहे हेम कान्त शिशु को।"[509]

इस गीतिनाटय को मंच पर प्रस्तुत करना सहज संभव नही। बार बार बदलते दृश्य, यायाबरी, हंसिनी और हरिणा का चित्रण विभिन्न बैलों नृत्यों का आयोजन इतनी शीघ्रता से संभव नही है। हाँ रेडियो पर ध्वनियों के द्वारा इसका प्रस्तुतीकरण पूर्ण सम्भव है। वैसे रंग संकेत लेखक ने दिये हैं। ध्वनि संकेत भी दिये है। नाटकीयता भी है। इसे लेखक ने काव्य रूपक और ईहामृग कहा है। लेकिन

यह ईहामृग की कसौटियों पर खरा नहीं उतरता।

राजा परीक्षित–(गौरी शंकर मिश्रा द्विजेन्द्र)–'राजा परीक्षित' एकांकी गीतिनाट्य है। जिसकी कथा छः दृश्यों में फैली हुई है। इसमें लेखक ने मृत्यु की सत्य शिवं सुन्दरम के रूप में प्रस्तुत किया है। मृत्यु का मानवी करण तथा उसे सत्यं शिवं सुन्दरम् की कल्पना मिश्र जी की नवीन प्रतिभा का चमत्कार है।

राजा परीक्षित के कथा सूत्र श्रीमद्भागवत और देवी पुराण में बिखरे पड़े है।। इन्हीं दोनों से प्रेरणा लेकर मिश्र जी ने राजा परीक्षित का निर्माण किया है। श्री मद्भागवत में परीक्षित को महान मानव के रूप में चित्रित किया है। जो मृत्यु का वरण सहर्ष करता है। मृत्यु की आशंका से उसके मन में वैराग्य भावना उत्पन्न हो जातीं है। वह मृत्यु से डारता नहीं। दूसरी और देवी भागवत का परीक्षित मृत्यु से भयभीत हो जाता है और ऋषि शाप के निवारण के लिए विविध प्रयत्न करता है। इस प्रकार श्री भदभागवत का परीक्षित समादरणीय है वहाँ देवी भागवत का परीक्षित दुर्बल ह्रदय का व्यक्ति है मिश्र जी ने इन दोनों का समन्वय कर दिया है। प्रारम्भ में राजा परीक्षित मृत्यु से भयभीत हो उठता है। लेकन मृत्यु की शाश्वतता को समझाकर वह मायामोह छोड़ देता है। और मरण को वरण करने को तत्पर हो जाता है।

राजा परीक्षित की कथा मानव की मृत्यु द्वारा पराजित होने की कथा नही, वरन् मृत्यु को प्रकृति समझ स्वेच्छया उसके वरण की कथा है वह जीवन मरण दोनों को आत्मता पूर्वक ग्रहण करने की कथा है।''[510]

एक बार राजा परीक्षित की घूमते समय कलि से भेट हो जाती है, जो धेनु बेषधारी वशुधा और धर्म वेषधारी बैल को निर्दयता से पीट रहा था। राजा कलि का वध करने को तत्पर हो जाता है किन्तु कलि की प्रार्थना पर धूत मधपान स्त्री प्रसंग, हिंसा और स्वर्ण में निवास करने की अनुमती देकर उसे छोड़ देता है। कलि

राजा के स्वर्ण मुकुट में अपना निवास बना लेता है। एक दिन कलि अपना प्रभाव दिखाता है और राजा एक ऋषि के गले में मरा हुआ सर्प डाल देते हैं। जब यह बात ऋषि कुमार को विदित होती है तो वह परीक्षित को शाप देते है कि सातवे दिन तक्षक के दंशन से राजा की मृत्यु हो जायगी शाप सुनकर पारीक्षित भयभीत हो जाते है। द्वितीय दृश्य में राजा का मृत्यु से साक्षात्कार होता है। मृत्यु अपने सत्यं शिवं सुन्दरम् बताती है। मृत्यु कहती है कि मैं समदर्शी हूँ। मेरे समझ कोई छोट नहीं। उसके विचार से–

"माया मोह झूठ सभी मैं ही एक सत्य हूँ

नही सत्य ही

किन्तु सत्य सुन्दर के संगसग शिव की।"[511]

मृत्यु के अनुसार जब रोणी असहना वेदना से छटपटा उठता है, तब मैं ही उसे अपार पीड़ा से छुटकारा दिलाती हूँ राजा को मृत्यु भय से छुटकारा मिलता है। फिर भी मृत्यु से बचने के लिए अनेक प्रयत्न किये जाते शुकदेव की आज्ञा से राजा साधना प्रारम्भ कर देता है। पंचम दृश्य में तक्षक राजा का दंशन करने के लिए आता हुआ दिखाया गया है। इसकी भेट कश्यप मुनि से होती है। जो राजा को बचाने के लिए जा रहे है। कश्यप मुनि को अपार दान देकर तक्षक वापस कर देता है और स्वयं एक फल में कीट बनकर बैठ जाता है। राजा का सेवक फल लेकर पारीक्षित के पास जाता है। तक्षक फल से निकल कर राजा का दर्शन कर लेता है। और राजा निर्भय प्राण त्याग देते है।

मिश्र जी ने मृत्यु को जिस दार्शनिक पृष्ठभूमि पर चित्रित किया है वह निश्चय ही श्लाधनीय है। जीव की अभरता को व्यक्त करते हुए कहते है–

"भूलते है आप नाश होता है न जीप का

बीज से अंकुर और अंकुर से बीज ज्यों

होता है उत्पन्न नृप? वैसे एक देह से

दूसरी उत्पन्न होती दूसरी से तीसरी

इस भाँति होती सदा देह की उत्पत्ति है

और इसी भांति होता उसका विनास भी।''[512]

चरित्रांकन की दृष्टि से राजा परीक्षित में परीक्षित का चरित्र ही प्रधान है। प्रारम्भ में वे प्रजा हितैषी, दयालु, साहसी, और वीर शासक के रूप में दिखाई देते है। जिस ओज के साथ वे कलि का वध करने को तत्पर हैं, उसी धीरता के साथ क्षमादान भी दे देते हैं। किन्तु कलि प्रभाव से उनमें अहं आ जाता है और उसी अहं के वशीभूत वे ऋषि के गले में सर्प डाल देते हैं। यहाँ वे राजसी वृत्ति के नृप हैं। अन्त में सात्विकी गुण आ जाते है। अशरीरी पात्र मृत्यु भी राजा परीक्षित का महत्वपूर्ण पात्र है। अन्य पात्रों के चरित्र का विकास नहीं हुआ। राजा परीक्षित में आन्तरिक संघर्ष को मृत्यु और जीवन के माध्यम से व्यक्त किया गया हैं राजा परीक्षित में एक ओर जीवन के प्रति उत्कट अभिलाषा है, जिजीविषा के लिए प्रारब्ध को परास्त करने के लिए अदम्य वैकल्प है तो दूसरी ओर धर्म साधना, वैराग्य भावना की सम्प्राप्ति के लिए उतनी ही कृच्छ साधना है। राजा परीक्षित में विकृति के शाश्वत द्वन्द और प्रकृति के विजय पराजय निरपेक्ष सम प्रवाह को सुन्दर ढंग से अंकित कियाहै। परीक्षित के मन में उठने वाले अन्त संघर्ष से सम्पूर्ण गीतिनाट्य ओत प्रोत है। जीवन मरण के द्वन्द्व मृत्यु का शाश्वत रूप निःसन्देह अनूठा है।

राजा परीक्षित की एक मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि भी है। प्रकृति की ओर से आंखे मूंदकर जीवन की स्वीकृति विकृति है ऐसी स्वीकृति में अहं है। राजा परीक्षित इसी अहं से परिपूर्ण है। जिस जहं और रजोगुण में वह कलि को काराबद्ध करते है उसी में वे स्वयं डूबे है। मानव मन जब अहंकार में फँस जाता है, तब वह उचति अनुचिता का ध्यान भूल जाता है। पीक्षित इसी अहं का शिकार होते है।

प्रतीक विधान की दृष्टि से राजा परीक्षित अत्यन्त सफल कृति है। अधिकाश घटनाऐं प्रतीकात्मक है। राजा परीक्षित की कथा में प्रकृति के समस्त तत्वों को प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया गया है। पृथ्वी धेनु रूप में धर्म वृषभ रूप में, कलि नृप वेशधारी पुरुष के रूप में, मरण तक्षक के रूप में,प्रस्तुत किये गये है। भुजंग परीक्षित के अहं का प्रतीक है। साप की जीभ की तरह लपलपाने वाली तलवार से यदि ऐस दृप्त अहं वृद्धि ने मरे हुए साप को ऋषि के गले में डाल दिया तो जैसे अलने उसने आपको अपने ही द्वारा विद्ध होने को धिरवा लिया। राजापरीक्षित इस प्रकार परीक्षित के अहं रूप अहि और प्रकृति के मरण रूप तक्षक की सर्पिल क्रीड़ा कथा– वक्र जिसकी गति है लहरें जिसमें आकस्मिक है, आकर्षण जिसमें प्रति भीति भय विषय है।"[513]

बिम्ब विधान की दृष्टि से की यह रचना उत्तम है। इसमें नाद विम्ब और स्थूल बिमब और चक्षुरन बिम्बों का प्रयोग सुन्दर ठंग से हुआ है। एक उदाहरण देखए–

"डालने अभय छाया मुझपर व्यग्र सी

मन्द मुसकाती तुम बोलों कौन सुन्दरी

कौन हो अनिन्ध्य रूप वाली तुम।"[514]

यहा मृत्यु का चाक्षुस बिम्ब प्रस्तुत किया गया है। मृत्यु का एक दूसरा रूप देखिए–

"मृत्यु अरे मृत्यु रूप कैसा भयानक है

आंखे विकराल लाल नासिका सुरंगसी

बदन विशाल रक्ष केश जाल बिखरे।"[515]

काव्य तत्व और नाटय तत्व दोनों ही दृष्टियों से राजापरीक्षित सुन्तुलित है। उसमें कवि की भावुकता और नट की नाटकीयता का सुन्दर समन्वय हुआ है।

आरम्भ में ही कवि की भावुकता के दर्शन होते है। जबकि वह प्रकृति का भावात्मक चित्रण करता है। नाटक का कोई भी अंश ऐसा नहीं है जो अभिनेय हो सभी पात्रों को मानव रूप में चित्रत करने के कारण कभी भी असम्भवता नही आने पायी।

पतिम्बरा–(द्विजेन्द्र)–पतिम्बरा मिश्र जी का दूसरापूर्ण गीतिनाट्य है जिसकी कथा तीन अंक में विभक्त है।''[516] प्रथम अंक में दो, द्वितीय में तीन और तृतीय अंक में एक दृश्य है। इसकी प्रेरणा कवि को कालीदास के 'कुमार सम्भव' से प्राव्त हुई है। कथानक पूर्णताः उसी से सम्बन्धित है। लेकिन समस्त घटनाओं को प्रतीकात्मकता के आवरण में आवेष्टित कर दिया है।

प्रथम अंक में पार्वर्ती का शिव के प्रति प्रेम दर्शाया गया है। पार्वती शिवजी को प्राप्त करना कठिन कार्य मानती है, वहीं उनकी सखी जया का विश्वास है कि पार्वती का रूप सौन्दर्य शिवजी को सहज अपनी ओर आकर्षित कर लेना। लेकिन पावर्ती कहती है कि शिव भोगीश्वर नहीं योगीश्वर है। अतः उन्हें पाना दुश्कर है। रूप की शक्ति पर जया और पार्वती में विवाद छिड़ गया। पार्वती प्रेम और रूप की अन्नयता स्थापित करती है। द्वितीय दृश्य में तारकासुर से भयभीत देवगण बह्मा के पास जाते है। इन्द्र, वरुण, कुवेर, सूर्य, मरुद्गण, यम सभी अपना दुःख रोते है। इसमें शिव पार्वती का प्रतीकात्मक अर्थ स्पष्ट किया गया है। बह्मा कहते है कि यदि पार्वती को शिव स्वीकार कर लें तो उनसे उत्पन्न पुत्र राक्षस का वध कर सकता है। द्वितीय अंक में देवता शिवजी में काम वासना जागृत करने के लिए काम तथा बसन्त को उत्तेलित करते हैं काम समस्त भार अपने ऊपर लेता है। काम शिव को उत्तेजित करने के लिए अपना बाण छोड़ता है, जिससे क्रोधित हो शिव काम को जला देते है अन्त में शिव पार्वती के प्रेम की परीक्षा लेते है। वे बह्मचारी के रूप में पार्वती के पास जाते है। शिव पार्वती के प्रेम से प्रभावित हो उन्हें अपना लेते है।

पतिम्बरा का कथानक बहुत कुछ कुमार सम्भव से मिलता है। फिर भी प्रेम और सौन्दर्य का दर्शन द्विजेन्द्र जी को अपनी कल्पना है। शिव पार्वती का रूप परम्परागत ही है। उनके चरित्र में किसी नवीनता के दर्शन नहीं होते। अन्य देवताओं का चरित्र भी परम्परानुमोदित ही है। इन्द्र, वरुण, कुवेर, यमराज, सूर्य, मरुदगण को भयभीत देवताओं के रूप में चित्रित किया गया है। बह्मा एक परामर्शदाता के रूप में दिखाये गये है। वसनत और कामदेव का चरित्र भी पुरातन ही है। जया विजया और रति के चरित्र को लेखक ने अपनी कल्पना को आधार पर प्रदर्शित किया है।

पतिम्वरा की प्रधान विशेषता उसकी प्रतीकात्मकता है। लेखक का विचार है कि हमारी प्राचीन धर्म गाथाओं के पीछे कोई न कोई प्रतीकार्य जुडा हुआ है।''[517]

शिव पावर्ती को द्विजेन्द्र जी ने पौरुष और शक्ति का प्रतीक बताया वे ब्रह्मा कहते है–

''शम्भु है पौरुष अथक साकार

पार्वती है शक्ति की प्रति मूर्ति

शम्भु है शुचि ज्ञान के प्रति रूप

पार्वती साक्षत इच्छा रूप।

देव देव त्रिनेत्र सत्य स्वरूप

पार्वती सौन्दर्य देवी दिव्य

शम्भु है वैराण्य के अवतार

पार्वती है साधना साकार

मान लो तुम शम्भु के बह्ममाण्ड

पार्वती को कुण्डलिनि प्रतिभूर्ति

दो मिला उससे इसे कर यत्न

जन्म ले फिर सहज परमानन्द।"[518]

शिव पार्वती की कहानी उसी प्रकार कही गई है, जिस प्रकार कुमार सम्भव में किन्तु कवि ने यत्र तत्र स्वतन्त्र चिन्तन बुद्धि का सहारा लिया है। पतिम्वरा में बिम्व की सुन्दर सृष्टि हुई है। अनेक चाक्षुस बिम्ब पठनीय है–एक उदाहरण देखिए–

"हो यथा वीरान

टूटकर कितने पडे है स्कन्ध

उखड़ जड़ से हो गये भू सात्

मूर्छित सी डालिया उच्छिन्न

पत्र के मृदु अंक में मानो सम्भाले फूल।"[519]

पतिम्बरा में और अनेक स्थलों पर कई आकर्षक बिम्व प्रस्तुत किये गये है जैसे देवताओं और काम के भौतिक विम्ब।"[520] पतिम्वरा में योग और भोग के संघर्ष को प्रस्तुत किया गया है। "काम शम्भु का नहीं, युद्ध यह द्वन्द्व भोग का कह कर लेखक ने इसी तथ्य को प्रस्तुत किया गया है। इसी द्वन्द्व में अन्ततः काम की विजय होती लेकिन यह काम भावना जनहित से प्रेरित है। पार्वती रूप सौन्दर्य का तथ शिव योग के प्रतीक है। शिव अन्त में प्रेमदान माँगते है। अन्त में नारी समर्पण कर देती है।

पतिम्वरा के सम्वाद सहज आकर्षक और नाटकीय है। लम्बे दुरुह और असम्भवित संवादों का प्रयोग इसमें नही हुआ न आकाश भाषित या स्वगत सम्वादों का प्रयोग इसमें किया गया है। इसमें नाटकीयता और काव्यत्व दोनों का समन्वय हुआ है।

भाषा प्रायः परिभार्जित और संस्कृतनिष्ठ है।"[521] भाषा में कही भी शिथिलता नहीं आने पाई। यत्र तत्र रहस्यात्मक और सूत्रात्मक शब्दों का प्रयोग भी हुआ है।

द्विजेन्द्र जी के गीतिनाट्यों में गीतितत्व और नाट्यतत्व दोनों का समन्वय है। तभी तो आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने लिखा है कि आपका ग्रन्थ गीति और नाट्य दोनों है इसमें सन्देह नहीं आपने परीक्षित के अन्तर देश में बैठकर गीनिाट्य तत्व और सम्वादों की योजना से नाटय तत्व के कलेवर से हिन्दी गीतिनाट्य के क्षीण वाङ्मय की परिपुष्टि की है।

दोनों गीतिनाट्यों में अतुकान्त छन्दों को अपनाया गया है। वृतगांधी कथोपकथनों और सशक्त भाषा से ये गीतिनाट्य स्थायी प्रभाव डालने में पूर्ण सक्षम है और गीतिनाट्य अत्याधुनिक कडो के रूप में पतिम्वरा का नाम उल्लेखनीय है।

अपराजिता– (कुँवर चन्द्र प्रकाश सिंह) उपराजिता कुंवर चन्द्र प्रकाश सिंह का ध्वनि रुपक है। जिसमें भगवती जगदम्बा द्वारा शुंभ निशुंभ राक्षसों का वध वर्णित है। प्रारम्भ में शुभ निशुंभ के पराक्रम का चित्रण है जिससे त्रस्त होकर देवता लोग भगवती अपराजिता से प्रार्थना करते हैं। पार्वती प्रसन्न हो जगदम्बा का रूप धारण कर शुंभ निशुंभ के वध का निश्चय करती है। वे अद् रूप धाारण करती है। जिसकी ख्याति शुंभ निशुंभ तक पहुँचती है। वे सुग्रीव को दूत बनाकर भगवती के पास भेजते है और कहते है भगवती हम दोनों भाइयों में किसी एक का वरण करें। भगवती शर्त रखती है कि जो उन्हें युद्ध में पराजित करेगा वे उसी के साथ वरण करेंगी।

शुभ निशुंभ सर्वप्रथम सेनापति धूमलोचन को भेजते है जो जगदम्बा के द्वारा भस्म कर दिया जाता है। इसके बाद चंड मुंड को भेजा जाता है। जंगदम्बा का सात्विक क्रोध काली (चामुण्ड) का रूप धारण कर इन दोनों का वध करता है। इसके बाद रक्तबीज को भेजा जाता है। रक्तबीज की यह विशेषता थी कि जहाँ भी उसका रक्त गिरता था वहीं अन्य रक्तबीज पैदा हो जाते थे। शुभ निशुंभ का

सामना करने के लिए दुर्गा, बह्माणी, माहेश्वरी, वैष्णवी, कौमारी, ऐन्द्री, बाराही गरसिंही सभी एक हो जाती है।

रक्तबीज से लड़ाई होती है। चामुण्डा रक्त बीज का समस्त खून पी जाती है जिसके बाद उसका वध होता है अन्त में शुंभ निशुंभ से युद्ध होता है अन्त में जगदम्बा उनका भी संहार करती है। देवगण उनका गुणगान करते है।522

अपराजिता की कथा घटना प्रधान है उसमें कहीं भी आन्तरिक संघर्ष के दर्शन नहीं होते। सामान्य रूप से कथानक आगे बढ़ता रहता है। ब्राह्य संघर्ष बहुत तीव्र नहीं है। बीच बीच में वाचक का कथन कुछ खलता है। सही माने में इसे गीतिनाट्य नहीं कहा जा सकता। क्योकि भाव सवलता अन्तर्द्वन्द्व और संघर्ष इसमें है ही नहीं, जो कि गीतिनाट्य का प्राण होता है।

सम्वाद अवश्य ही तीखे, सुन्दर और सुरुचिपूर्ण है। जगदम्वा द्वारा योग क्षेम बहाम्यह्मा' कहकर सभी को अभय करती है। वास्तव में न तो इस में कल्पना की प्रधानता है और न कोइ नवीन उद्‌भावना है मात्र धार्मिक भावना से प्रेरित हो कर लिख गया है।

नीलकंठ निराला—(रामेश्वर सिंह कश्यप)— नीलकण्ठ निराला वस्तुतः कथा रूपक है जिसमें निराला के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का अंकन किया गया है। इसे डाक्यूमेण्टरी नाटक भी कह सकते है। इसमें मानसिक द्वन्द्व का अभाव है। विविध व्यक्तियों के माध्यम से महाकवि के जीवन की घटनाओं का चित्रण किया गया है।523

पूरा नाटक एक ही दृश्य वध पर समाप्त होता है। निराला के कमरे में। इस नाटक को विहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन पटना की नाट्य परिषद की ओर से दिनांक 8—11—59 को सफलता पूर्वक प्रदर्शित किया गया है। जिसमें स्वयं लेखक ने निराला की भूमिका निभाई इसमें निराला की दानशीलता अक्खड़पन, व्यंग्य

विनोद हार्दिक पीडा आदि को प्रस्तुत किया गया है।

समाधान–(रामेश्वर सिंह काश्यप)–समाधान श्रेष्ठतम गीतिनाट्यों में से है इसकी रचना प्रारम्भ में माँ मेरी शक्ति के नाम से हुई थी। बाद में यही समाधान के नाम से आकाशवाणी से प्रसारित हुआ इसका प्रधान विषय वर्तमान राट्रीय जीवन की समस्याओं को सुलझाने में संलग्न है वहीं दूसरी ओर कुछ ऐसी शक्तियाँ है जो देश में विप्लव कराके स्वयं को स्वार्थ सिद्धि करना चाहती है। समाज सुधारक और ईमानदार गगंन की हत्या कराके लेखक प्रश्न करता है कि बताइय इस समस्या का समाधान क्या है। लेखक का विचार है कि जब तक वर्तमान जीवन के मूल्यों में आमूल परिवर्तन नहीं होता। केवल सतही समाधान प्रस्तुत करना एकांकी और निरर्थक है। राष्ट्र की भावात्मक एकता की समस्या केवल अन्तर्जातीय विवाह को प्रोत्साहन देने से अन्य धर्मो अथवा प्रान्त के निवासियां के साथ एक ही टेबुल पर चाय पीने या खाना खाने से अथवा तमिल वासियां के हिन्दी और हिन्दी क्षेत्र के वासियों के तमिल पढ़ लेने से हल नहीं हो जायेगी।''[524]

समाधान पाँच अंकों का गीतिनाट्य है इसमें एक ऐसे युवक की कहानी है। जो असामाजिक तत्वों के विरुद्ध डटकर मोर्चा लेता है और राष्ट्रहित में अपने प्राणों की आहुति दे देता है। गगन एक पत्रकार है जिसका राज्य लक्ष्मी की पुत्री गोदावरी के साथ रागात्मक सम्बन्ध है। राज्य लक्ष्मी भारतीय नारी के उस वर्ग का प्रतीक है जो अन्ध विश्वास और धर्मान्धता के कारण अनजाने ही राष्ट्रीय एकता की भावना का विरोध करने वाली शक्तियों की सहायता करती है। स्वामी चरण धर्म के नाम पर जनता की साम्प्रदायिक भावना को भड़का कर अपनी कलुषित भावनाओं को पूरा करता है। प्रथम अंक में स्वामी चरण और राज्यलक्ष्मी का वार्तालाप है। वे दोनों गगन से नाराज है। पुराने जमींदार महीप भी उससे अप्रसन्न है। महीप राज्य लक्ष्मी को फुसला कर उसकी बेटी गोदावरी की शादी अपने

आवारा बच्चे विक्रम के साथ करना चाहते है। लेकिन इसी बीच विक्रम आकर अपनी मूर्खता का परिचय दे देता है और साथ ही महीप के छद्मवेश की पोल खोल देता है। उसके व्यंग्य बड़े तीखे और मार्मिक है। वह कहता है–

"पैसा के अलावा कोई और सम्बन्ध

नहीं होता पिता पुत्र में

कम से कम आज के जमाने में।"[525]

अथवा

"जवान कहाँ होता है कोइ भी आज इस देश में

अज्ञानी शिशु से अचानक हम

चिन्ताग्रस्त बूढ़े बन जाते है।"[526]

राज्य लक्ष्मी की पुत्री गोदावरी गगन की ओर आकर्षित है। राज्यलक्ष्मी उसे गगन से मिलने से मना करती है लेकिन गोदावरी इसे स्वीकार नहीं करती। द्वितीय अंक में गगन गोदावरी का प्रेम प्रसंग वार्णित है। विक्रम भी गोदावरी से प्रणय निवेदन करता है जिसे गोदावरी ठुकरा देती है। उद्योगपति ढुढ़िराज महीप और लीलाधर गगन को फुसलाकर अपने विरुद्ध न लिखने को राजी करना चाहते है जिसे गगन अस्वीकार कर देता हैं वह तीनो मिलकर साम्प्रादायिक करा देते है जिनमें गोदावरी, गगन का आश्रय दाता राम शरण आदि को अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ती है। गगन के विरुद्ध षडयन्त्र चलता रहता है विक्रम भी अनेक व्यक्तियों की हत्या कर देता है जिसमें उसके पिता महीप भी है।स्वामी चरण राज्य लक्ष्मी की सम्पति हड़प लेता है। ढूढ़िराज आदि मिलकर अन्त में मातृ मन्दिर में गगन की हत्याकर देते है। यही नहीं अन्त में वे स्वयं गगन का स्मारक बनवाकर अपने को देश प्रेमी प्रदिर्शित करने की बात करते है। गगन कहता है–

"हाय रे दुर्भाग्य

यह कैसा निठुर व्यंग्य है

मृत्यु के दलाल मेरी लाश को भी बेचेंगे

मेरा नाम चढेगा नीलाम पर बाजार में

अपने छुरे को ये धोकर गंगाजल में

अपने स्वार्थ हेतु मेरी मृत्यु

मेरे नाम को भुनायेंगे।"[527]

'समाधान' के पात्र दो प्रकार के हैं जिनमें संघर्ष होता है । यह संघर्ष बाह्म और आन्तरिक दोनो प्राकर का है। दो विरोधी विचारों टकराहट सद् और असद् का संघर्ष अंधकार और प्रकाश का द्वन्द्व सर्वत्र दृष्टि गोचर होता है। गगन की मृत्यु के समय उठने वाला मानसिक संघर्ष हमारे मस्तिष्क को आल्होड़ित विलोड़ित कर देता है। स्वामी चरण के हृदय में उठने वाला स्वार्थ का संघर्ष और गोदावरी के हृदय में उठने वाला प्रेम संघर्ष को लेखक ने सभी पहलुओं से चित्रित किया है। बाह्म यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाकर हमारे सामने एक प्रश्न चिह्न लगा दिया है कि क्या यही हमारा न्याय है? क्या सत्य की इसी प्रकार हत्या होती रहेगी? क्या अन्याय के समक्ष न्याय और सत्य इसी प्रकार मरते रहेंगे? वास्तव में 'समाधान' आदि से अन्त तक संधर्ष पूरित है।

समाधान के पात्र प्रतीकात्मक है। वे व्यक्ति और प्रतीक दोनो ही है। गगन, गोदावरी, रामशरण न्याय के दुर्बल पक्ष और उन व्यक्तियों का प्रतिनिधत्व करते है। जो राष्ट्र के विघटनकारी तत्वों का विरोध करती है। दूसरी ओर राज्य लक्ष्मी स्वामीचरण, तांत्रिक, महीप, ढुढिराज और लीलाधर राष्ट्रीय एकता को नष्ट करने वाली शक्तियों, अन्ध विश्वास धर्म की आड़ में शिकार खेलने वाली प्रवृत्ति जातिवाद एकाधिपत्य की भावना पर आधारित व्यवसाय और स्वार्थ के लिए

वौद्धिकता का दुरुपयोग करने की भावना के प्रतीक है।"[528]

खण्डित नगर की प्रजाएँ वर्तमान भारत की जनता का प्रतीक है लेकिन इसके पात्र केवल प्रतीक ही नहीं व्यक्ति भी है। उनमें मनवीय विकार उसी प्रकार उपस्थित है जिस प्रकार एक व्यक्ति में होते हैं। लेखक ने पात्रों की प्रतीकात्मकता को पात्र परिचय में विस्तार से प्रकाश डाला है समाधान के संवाद वृत्तगन्धी है। उनमें न ता अत्यधिक विस्तार है न अस्वाभाविकता। उनमें सर्वत्र नाटकीयता और प्रेषणीयता है। गीतिनाट्य युगाभिव्यक्ति सुन्दर हुई है। गगन आज की समस्या पर विचार प्रकट करते हुए कहता है–

"यह गुण्डागर्दी केवल विक्रम तक सीमित नहीं

यह सारे देश की समस्या है।

जीवन के सभी ऊँचे

मूल्यों के प्रति गहरी

व्याप्त जो अनास्थाा है

उसके लिए जिम्मेदार कौन है।?"[529]

भाषा और शैली की दृष्टि से भी 'समाधान' सुन्दर कृति है। इसमें मुक्त छन्द का प्रयोग किया गया है लेकिन कहीं कहीं तुकांत छन्दों का प्रयोग भी हुआ है भाषा विशुद्ध साहित्यिक है और विदेशी भाषा के शब्दों का प्रयोग नागण्य के बराबर है।

'समाधान' पूर्ण रंगमंचीय नाटक है लेखक ने विस्तृत रंग निर्देश दिये है मंचीय व्यवस्थ पात्रों की वेषभूषा स्वीाााप प्रकाश व्यवस्थ आदि के विस्तृत निर्देश हैं। पूरा नाटक एक ही दृश्य बंध पर खेला जा सकता है। पाँचों अंको की घटनाएं एक ही स्थान पर घटित होती है। अतः बार–बार दृश्य परिवर्तन नहीं करना पड़ेगा।

यह नाटक रेडियों पर भी प्रसारित हुआ है। अतः ध्वनि संकेता का भी आभाव नहीं है लेखक ने यत्र तत्र संगीत सम्बन्धी निर्देश भी दिये है संगीत नाटक अनुकूल वातावरण को प्रस्तुत करने में पूर्ण समक्ष है।

'समाधान' काव्य तत्व की दृष्टि से भी सफल है। कहीं कही लेखक ने सुन्दर कल्पना का परिचय दिया विशेष रूप से गोदावरी गगन के प्रकरण में सुन्दर काव्य प्रतिभा का परिचय मिलता है यथा–

"ऐसे क्रूर लोगों के बीच गोदावरी

अंधेरे के बीच जैसे संध्या की किरण हो

मरु में ज्यों निर्झरिणी

लपटों के बीच जैसे हंसता कमल हो।"[530]

इसी प्रकार के काव्यात्मक कथोपकथन कई स्थानों पर देखने का मिलते है।"[531] वास्तव में 'समाधान' उन गिने चुने गीतिनाटयों में से है जो रंग मंच और ध्वनि दोनों ही दृष्टियों से सुन्दर है। इस दृष्टि से इसकी गिनती 'सूखा सरोवर' 'अंधायुग', 'एक कंठ विषपायी', 'उत्तर प्रियदयर्शी' की परम्परा में की जाती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1– युग चेतना, नवम्बर, 1955

2– श्री पति शर्मा: हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव, पृ. 367

3– अन्धायुग धर्मवीर भारती,, किताब महल, इलाहाबाद, प्र. स. 1955, पृ. 10

4– धर्मयुग, 13 अगस्त 1967, पृ.19

5– अंधायुग, 92–93

6– वही, पृ. 32

7– वही, पृ. 66

8– वही, पृ.16

9– वही, पृ.81

10– अुधायुग, पृ. 16

11– वही, पृ.116.18

12– 'धुमकेतु घिरते जाते वन खण्डों से पृ. 112

13– वही, पृ. 114

14– वही, पृ.115

15– अंधायुग, पृ. 21

16– अंधायुग, पृ. 79

17– अंधायुग पृ.

18– वही, पृ.

19– वही, पृ. 114,60,22,80

20– वही, पृ. 4 निर्देश

21– देखिए– अन्धा युग, पृ. 16

22– वही, पृ. 81

23– वही, पृ.103

24– वही, पृ.108

25– बच्चन सिंह: हिन्दी नाटक, पृ.200

26– देखिये– अन्धा युग, पृ. 38

27– वही, पृ.125

28– गिरीश रस्तागीः हिन्दी नाटक सिद्धान्त और विवेचन, पृ. 196–67

29– अंधायुग, पृ. 63

30– वही, पृ.67

31– वही, पृ. 91–92

32– देखिए– अन्धायुग, पृ. 90

33– वही, पृ. 22

34– देखिए– अंधायुग, पृ. 99–100

35– वही, पृ.55

36– वही, पृ. 101

37– रामस्वरूप चतुर्वेदीः हिन्दी नव लेखक पृ. 91

38– आलोचना 20

39– आलोचना 33

40– अंधायुग, पृ. 11

41– रामस्वरूप चतुर्वेदीः हिन्दी नव लेखक, पृ. 93

42– अंधायुग पृ. 32

43– अंधायुग पृ. 81

44– देखिये– अंधायुग, पृ. 25, 31,41,58,66,73,75,77,79,88,120,123

45– वही निर्देश, पृ. 5

46– अंधायुग, पृ. 5

47– वही, निर्देश, पृ. 5

48– सुरेन्द्र नाथ दीक्षितः भरत और भारतीय नाट्यकला, राजकमल प्रकाशन, 1970

49– वही, पृ.520

50– नव भारत टाइम्स, दिल्ली, 8 सितम्बर 1972 पृ. 6

51– अंधायुग–निर्देश पृ.5

52– वही, पृ.22

53– वही, पृ. 22

54– अंधायुग, निद्रेश पृ.4

55– बच्चन सिंहः हिन्दी नाटक, पृ. 186

56– इन्दुमती,, प्रतीक, सितम्बर 1951

57– इन्दुमती,, प्रतीक, सितम्बर 1951 पृ. 143

58– पाषाणीः जानकी बल्लभ शास्त्री प्र.स. 1958 लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रस्तुत पृ.

6

59– पाषाणी, पृ. 30

60– वही पृ. 26

61– देखिये– पाषाणी, पृ. 26–27

62– वही पृ. 25

63 वही पृ.10

64– पाषाणी पृ. 10

65– वही पृ.36

66– पाषाणी पृ. 60

67– पाषाणी पृ. 11

68– वही पृ. 83–84

69– वही पृ.97

70– वही पृ. 97

71– पाषाणी पृ. 100

72– वही पृ.101

73– वही पृ.85

74– पाषाणी पृ. 99

75– वही पृ.99

76– पाषाणी पृ. 99

77— वही पृ.81

78— वही पृ.101

79— पाषाणी पृ. 79

80— वही पृ.9

81— पाषाणी पृ. 141

82— पाषाणी पृ. 142—43

83— पाषाणी पृ. 110

84— वही पृ.121

85— तमशाः जानकी बल्लभ शास्त्री, द्वितीय संस्करण 1969 राजकमल प्रकाशन, पृ. 8

86— वही पृ. 8

87— वही पृ.15

88— तमसा पृ. 18

89— वही पृ.20

90— तमसा पृ. 15

91— वही पृ.7

92— वही पृ.19

93— तमसा पृ. 31

94— तमसा पृ. 36

95— वही पृ.46

96— तमशा पृ. 33

97— वही पृ.32

98— वही पृ.36

99— वही पृ.39

100— तमसा पृ. 42

101—तमसा पृ. 73

102— वही पृ.75

103— तमसा पृ. 90

104— वही पृ.93

105— वही पृ.94

106— तमसा पृ. 97—98

107— वही पृ.97

108— तमसा पृ. 110

109— वही पृ.111

110— वही पृ.113

111— वही पृ.119

112— तमसा पृ. 124

113— वही पृ.125

114— वही पृ.112

115— वही पृ.112

116— तमसा पृ. 116—117

117— जानकी बल्लभ शास्त्री :तमसा— अप्रस्तुत पृ. 10

118— सिद्धनाथ कुमार हिन्दी एकांकी की शिल्प विधि का विकास पृ. 373

119— जानकी बल्लभ शस्त्री पाषाणी प्रस्तुत

120— जानकी बल्लभ शास्त्री:पाषाणी पृ. 7—8

121— वही पृ.83

122— सिद्ध कुमारः हिन्दी एकांकी क शिल्प विधि का विकास पृ. 734

123— जानकी बल्लभ शास्त्री पाषाणी पृ. 12

124— पुनरावृत्ति : हंस कुमार तिवारी, प्रकशशन ज्ञानपीठ लि. पटना प्र. स. 1951

125— देखियेः हिन्दी एकांकी की शिल्प विधि का विकास, सिद्धनाथ कुमार, पृ. 383

126— लेखक को लिखा पत्र दिनांक 12—7—1974

127— कवि पत्नी— नई धारा, अगस्त 53, पृ1

128— वही पृ.3

129— सूखा सरोवर कवर पर छपा विवरण भारतीय ज्ञान पीठ काशी प्र. स. 1960

130— वही पृ.3

131— सूखा सरोवर, उपक्रम पृ. 5

132— सूखा सरोवर, उपक्रम पृ. 5

133— सूखा सरोवर, उपक्रम पृ. 25

134— वही पृ.6

135— सूखा सरोवर, उपक्रम पृ. 24

136— सूखा सरोवर, उपक्रम पृ. 99

137— वही पृ. 26,41,42,45,80,89

138— देखिएः इतिहास के आँसू लेखक दिनकर प्रकाश के दो शब्द

139— कल्पना दिसम्बर 1961 पृ.9—10

140— कल्पना दिसम्बर 1961 पृ.6

141— वही पृ.6

142— वही पृ.8

143— अग्नि देवताः प्रतीक जुलाई 1952 पृ. 61

144— वही पृ.71

145— प्रतीक जुलाई 1952 पृ. 72

146— वही पृ.61

147— वही पृ.68

148— संशय की एक रातः नेरश मेहता हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकार, गिरी गाँव, बम्बई, प्र.स. 1962 पृ. 67

149— वही पृ.57

150— संशय की एक रात नेरेश मेहता हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, गिरि गाँव, बम्बई प्र. स. 1962 पृ.57

151— माध्यम अंक 5 वर्ष 1 सितम्बर 1964

152— संशय की एक रात पृ. 84

153– संशय की एक रात पृ. 80

154– वही पृ.13

155– वही पृ.62

156– संशय की एक रात पृ. 65

157– वही पृ.60

158– वही पृ.78

159– संशय की एक रात पृ. 112

160– वही पृ.31 और 38

161– संशय की एक रात पृ. 23

162– नील और राम संवाद संशय की एक रात पृ. 42 से 45

163– संशय की एक रात: शीर्ष बन्ध

164– माध्यम सितम्बर 1964 समीक्षा

165– संशय की एक रात पृ. 26

166– कल्पना यह अंक अगस्त 61

167– यमुना और गंगा की लहरें कल्पना अगस्त 61 पृ. 123

168– कल्पना अगस्त 1961 पृ. 53

169– वही पृ. 55

170– वही पृ.52

171– कल्पना अगस्त 1961 पृ.47

172– एक कंठ विषपायी दुष्यंत कुमार लोक भारती प्रकाशन प्रयाग प्र. स. सितम्बर 63 पृ. अन्तम

173– कल्पना नवम्बर 1961 पृ.77

174– एक कंठ विषपायी पृ. 119–20

175– वही पृ.45

176– एक कंठ विषपायी पृ. 104

177– वही पृ.122

178– एक कण्ठ विषपायी पृ. 34

179– धर्मयुग 20 अगस्त 1967

180– एक कण्ठ विषपायी पृ. 11

181– माध्यम नवम्बर 1964 पृ. 97

182– धर्म 20 अगस्त 1967 पृ. 17

183– रंगमंच ज्ञान कुमारी अजीत परिमल प्रकाशन इलाहाबाद, 1965

184– देखिए– उत्तरा प्रियदयर्शी अज्ञेय अक्षर प्रकाशन दिल्ली 1967, प्रेरणा पृ. 7–8

185– वही पृ. 8

186– जयदेव तनेजा समसामयिक हिन्दी नाटकों में चरित्र सृष्टि सामायिक प्रकाशन जटवारा दिल्ली पृ.6

187– उत्तर प्रियदर्शी पृ. 33

188– उत्तर प्रियदर्शी पृ. 61–62

189– आजकल, जनवरी 1973, पृ. 24

190– यक्ष की नगरी : प्रत्यक्ष की नगरी पृ.46

191– वही पृ. 52

192– वही पृ23

193– यक्ष की नगरीः प्रत्यक्ष की नगरी पृ. 24

194– वही पृ.24

195– वही पृ.34

196– वही पृ.24

197– यक्ष की नगरीः प्रत्यक्ष की नगरी पृ. 76

198– वही पृ.68

199– वही पृ. 35

200– यक्ष की नारी : प्रत्यक्ष की नगरी, पृ. 50

201– वही पृ. 61

202– यक्ष की नगरी : प्रत्यक्ष की नगरी, पृ. 11 परिवेश एवं पूर्वाभास

203– अपराजिता : कुंवर चन्द्र सिंह, नेशलन पब्लिशिंग हाउस दिल्ली 1967

204– नील कंठ निराला : रामेश्वर सिंह काश्यप, राष्ट्रीय प्रकाशन रुपौली, पूर्णिमा 1954,पृ. 3

205– समाधान : काश्यप हिन्दी साहित्य संसार, पटना 1971 पृ. 6–7

206– वही पृ. 22

207– वही पृ. 24

208– समाधान, पृ. 7–8

209– वही पृ. 26

210– समाधान, पृ. 32

211– वही पृ. 38,39,42,43,50,53,66,78,79, इत्यादि

212– तारा, 'मधुकण' में सग्रहीत, साहित्य केन्द्र वेली रोड, इलाहाबाद, प्र.स.पृ.17

213– तारा, मधुकण, पृ. 66

214– मधुकरण पृ. 69

215– बच्चन सिंह, आलोचना, 19,पृ. 93

216– तारा मधुकण पृ. 65–66

217– महाकाल–त्रिपथगा' में संग्रहीत, महाकाल की भूमिका, भारतीभण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद प्र. स. 2011 वि. पृ. 42

218– महाकाल, त्रिपथगा, पृ. 60

219– महाकाल, त्रिपथगा, पृ. 60

220– वही पृ. 60

221– वही पृ.54

222– महाकाल, त्रिपथगा, भगवती चरण वर्मा का कथन पृ. 45

223– वही, भगवती, चरण वर्मा, पृ. 65

224– वही भगवती चरणवर्मा, पृ. 74

225– त्रिपथगा, पृ. 65

226– वही पृ.114

227— वही पृ. 102

228— द्रोपदी : त्रिपथगा, पृ. 87

229— वही पृ.83

230— वही पृ. 112

231— वही पृ. 112

232— द्रोपदी : त्रिपथगा, पृ. 72

233— वही (वर्मा जी की उद्‌गार) पृ. 68

234— वही पृ. 71

235— विश्वामित्र और दो भाव नाट्य : उदय शंकर भट्ट, आत्माराम एण्डसंस, दिल्ली, प्र. स. 1960 पृ. 47

236— वही पृ.48

237— विश्वामित्र और दो भाव नाट्य पृ. 54

238— वही पृ.5

239— वही पृ.

240— वही पृ.66

241— विश्वामित्र और दो भाव नाट्य पृ. 76

242— वही पृ.—ख

243— विश्वमित्र और दो भाव नाट्य पृ. 8

244— वही पृ.74

245— वही पृ.—फ

246— वही पृ.64

247— गणेश दत्त गौड़ : आधुनिक हिन्दी नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा प्र. स. 1965, पृ. 310

248— विश्वामित्र और दो भावनाट्य पृ. 63

249— विश्वामित्र और दो भावनाट्य पृ. 49

250— वहीं उदय शंकर भट्ट, आत्माराम एण्ड सन्स, प्र. स. 1970, पृ. 2—3

251— वही, स्पष्टीकरण, पृ.—ख

252— विश्वामित्र और दो भाव नाट्य पृ.4

253— आलोचना : नाटक अंक पृ. 95

254— विश्वामित्र और दो भाव नाट्य पृ. 11

255— वही पृ. 10

256— विश्वामित्र और दो भाव नाट्य पृ. 9—10

257— वही पृ. 17

258— वही पृ.

259— विश्वामित्र और दो भाव नाट्य पृ. 22

260— उदय शंकर भट्ट : विश्वामित्र और दो भाव नाट्य : स्पष्टीकरण पृ.—ठ

261— विश्वामित्र और दो भाव नाट्य, पृ.25

262— वही पृ.13

263— विश्वामित्र और दो भावनाट्य पृ.22

264— वही पृ.24

265— विश्वामित्र और दो भाव नाट्य पृ. 25

266— वही पृ.27

267— वही पृ.17

268— विश्वामित्र और दो भाव नाट्य पृ. 17

269— राष्ट्र भारती, अक्टूबर 1962

270— विश्वामित्र और दो भावनाट्य, स्पष्टीकरण, पृ. क—ख

271— वही पृ.32

272— विश्वामित्र और दो भाव नाट्य पृ.90

273— वही पृ.94

274— विश्वामित्र और दो भाव नाट्य पृ. 97

275—विश्वामित्र और दो भाव नाट्य पृ. 97

276— विश्वामित्र और दो भाव नाट्य पृ 101

277–विश्वामित्र और दो भाव नाट्य पृ 102

278– विश्वामित्र और दो भाव नाट्य पृ120

279– विश्वामित्र और दो भाव नाट्य पृ122

280– विश्वामित्र और दो भाव नाट्य पृ128

281– सिद्धनाथ कुमार : हिन्दी एकांकी की शिल्प विधि का विकास, पृ. 365

282– गणेशदत्त गौड़ : आधुनिक हिन्दी नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन पृ. 335

283– विश्वामित्र और दो भाव नाट्य पृ स्पष्टीकरण– फ

284– विश्वामित्र और दो भाव नाट्य पृ स्पष्टीकरण फ 99

285– विश्वामित्र और दो भाव नाट्य पृ स्पष्टीकरण फ 90

286– विश्वामित्र और दो भाव नाट्य, पृ. 86–87

287– विश्वामित्र और दो भाव नाट्य, पृ. 111

288– विश्वामित्र और दो भाव नाट्य, अश्वत्थामा पृ. 111 प112

289– अशोक वन बिन्दिनी तथा अन्य गीतिनाट्य : अश्वत्थामा पृ. 125

290– युग चेतना, नवम्बर, 1955

291– श्रीपति शर्मा: हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव, पृ. 367

292– अंधायुग : धर्मवीर भारती, किताब महल, इलाहाबाद, प्र.स. 1955, पृ. 10

293– धर्मयुग, 13 अगस्त 1967, पृ. 19

294– अंधायुग पृ. 92–93

295– अंधायुग पृ. 32

296– अंधायुग पृ. 66

297– अंधायुग पृ. 16

298– अंधायुग पृ. 81

299– अंधायुग पृ. 16

300– अंधायुग पृ. 117–118

301– धूम केतु घिरते जाते वन खण्डों से पृ. 112

302– धूम केतु घिरते जाते वन खण्डों से पृ. 114

303– धूम केतु घिरते जाते वन खण्डों से पृ. 115

304– अंधायुग पृ. 21

305– अंधायुग पृ. 79

306– अंधायुग पृ.

307– अंधायुग पृ.

308– अंधायुग पृ. 114, 70, 22, 80

309– अंधायुग पृ. 4 निर्देश

310– देखिए– अंधायुग पृ. 17

311– देखिए– अंधायुग पृ.81

312– देखिए– अंधायुग पृ.103

313– देखिए– अंधायुग पृ.108

314– बच्चन सिंह : हिन्दी नाटक पृ. 200

315– देखिए– अंधायुग पृ. 38

316– देखिए– अंधायुग पृ.125

317– गिरीश रस्तोगीः हिन्दी नाटक सिद्धान्त और विवेचन पृ. 196–67

318– अंधायुग पृ. 63

319– अंधायुग पृ.67

320– देखिए– अंधायुग पृ.90

321– देखिए– अंधायुग पृ.22

322– देखिए– अंधायुग पृ.99–100

323– देखिए– अंधायुग पृ.55

324– देखिए– अंधायुग पृ.101

325– रामस्वरुप चतुर्वेदीः हिन्दी नव लेखक पृ.91

326– आलोचना 20

327– आलोचना 33

328– देखिए– अंधायुग पृ. 12 से 15 और 107 से 108

329— अंधायुग पृ.11

330— रामस्वरुप चतुर्वेदी हिन्दी नवलेखक पृ. 93

331— अंधायुग पृ. 34

332— अंधायुग पृ. 81

333— देखिए अधायुग पृ. 25, 31, 41, 58, 66, 73, 75, 77, 79, 88, 120, 123

334— अंधायुग पृ. 5

335— अंधायुग निर्देश पृ. 5

336—अंधायुग निर्देश पृ. 5

337— अंधायुग निर्देश पृ. 4

338— बच्चन सिंहः हिन्दी नाटक पृ.187

339 सृष्टि का आखिरी आदमीः नदी प्यासी थी मं संग्रहीत, किताब महल, इलाहाबाद प्र.सं. 1954पृ. 101

340— सृष्टि का आखरी आदमीः नदी प्यासी में संग्रहीत पृ.112

341— सृष्टि का आखरी आदमीः नदी प्यासी में संग्रहीत पृ.113

342— सृष्टि का आखरी आदमीः नदी प्यासी में संग्रहीत पृ.114

343— इन्दुमती, प्रतीक सितम्बर 1951

344— इन्दुमती, प्रतीक सितम्बर 1951,पृ. 143

345— कल्पना अप्रैल 1960 पृ. 20

346— कल्पनाा अप्रैल 1960 पृ. 28

347— पाषाणी पृ. 30

348— पाषाणी पृ. 26

349— देखिये— पाषाणी पृ. 26—27

350— देखिये— पाषाणी पृ.25

351— देखिये— पाषाणी पृ.10

352— तपसा पृ. 90

353— तपसा पृ. 93

354— तपसा पृ.94

355— तपसा पृ.97—98

356— तपसा पृ.97

357— अनुक्षण में संग्रहीत

358— नई धारा वर्ष 5 अंक 7 अक्टूबर 1954 में प्रकाशित पृ. 22

359— नई धारा वर्ष 5 अंक 11 फरवरी 55 में प्रकाशित

360— नई धारा वर्ष 5 अंक 11 फरवरी 55 में प्रकाशित पृ. 31

361— नई धारा पृ. 33

362 नई धारा फरवी 55 पृ. 35

363— कहानी कैसे बनी ऊपर की मजिल कर्तार सिंह दुग्गल, भारतीय ज्ञानपीठ काशी प्र. स. 1959

364— कहानी कैसे बनी ऊपर की मजिल कर्तार सिंह दुग्गल, भारतीय ज्ञानपीठ काशी प्र. स. 1959 पृ. 45

365— कहानी कैसे बनी ऊपर की मजिल कर्तार सिंह दुग्गल, भारतीय ज्ञानपीठ काशी प्र. स. 1959पृ. 50

366— ऊपर की मंजिल पृ. 53

367— ऊपर की मंजिल पृ.42

368— ऊपर की मंजिल पृ.35—36

369— अमानतः कानी कैसी बनी, दुग्गल पृ. 84

370— अमानत पृ. 95

371— अमानत पृ. 92

372— हिन्दी एकांकी शिल्प विधि का विकास पृ. 386

373— अमानत पृ.89

374— सूखा सरोवरः कवर पर छपा विवरण भारतीय ज्ञानपीठ काशी प्र.स. 1960

375— सूखा सरोवरः कवर पर छपा विवरण भारतीय ज्ञानपीठ काशी प्र.स. 1960 पृ. 3

376— सूखा सरोवर पृ. 86

377– सूखा सरोवर उपक्रम पृ.5

378– सूखा सरोवर पृ.25

379– सूखा सरोवर उपक्रम पृ.6

380– सूखा सरोवर पृ. 24

381– सूखा सरोवर पृ.99

382– सूखा सरोवर पृ. 26, 41, 42, 45, 80, 89

383– देखिए हिन्दी वार्षिकी 1961 में भारत भूषण अग्रवाल की उर्वशी विषयक समीक्षा पृ. 69

384– नेमीचन्द्र जैनः बदलते परिप्रेक्ष्य पृ.120

385– दिनकर सृष्टि और दृष्टि 214

386– आस्था के चरण डा.नगेन्द्र नेशनल पब्लिसिंग हाउस 1968 पृ. 609

387– विजेन्द्र नारायाा सिंह उर्वशी उपलब्धि और सीमा पृ.55

388– युग चरण दिनकर डा: सावित्री सिन्हा, नेशनल पब्लिशिंगहाउस दिल्ली 1963, 292

389– हिन्दी नााटक उदभव औरविकास पृ.426

390 उर्वशी भूमिका–ज

391– दिनकर सृष्टि और दृष्टि पृ. 29–30 स. गोपीकृष्ण कोल, वामनप्रकाशन, गाजियाबाद 1962

392– दिनकर सृष्टि और दृष्किट पृ. 29–30

393– देखिए महाकवि दिनकर उर्वशी तथाअन्य कृतिया डा. विमल कुमार जैन, भारती साहित्य मन्दिर दिल्ली 1965

394– देखिए युग चेतादिनकर और उनकी उर्वशी राजपाल शर्मा, हिन्दी साहित्य, संसार पटना पृ. 76 से 106

395– सृजन की मनोभूमि रणधीर राँग्रा वाणी प्रकाशन कमला नगर दिल्ली 1972 पृ. 111

396– उर्वशी पृ. 16

397– उर्वशी पृ. 43

398–उर्वशी पृ. 43

399– हिन्दी वार्षिकी 1961 पृ. 72

400– उर्वशी पृ. 57

401– उर्वशी पृ. 86

402– उर्वशी पृ. 91

403– उर्वशी पृ. 121

404– वही भूमिका– डा.

405– उर्वशी पृ. 63

406– उर्वशी पृ. 84

407– संस्कृत के चार अध्याय पृ. 227

408– संसकृत के चार अध्याय पृ. 64

409– संसकृत के चार अध्याय पृ. 60

410– संसकृत के चार अध्याय पृ. 92

411– उर्वशी उपलब्धि और सीमा, डा. विजेन्द्र नाराण पृ. 56

412– हिन्दी वार्षिकी 1961 पृ. 7

413– देखिए– उर्वशी पृ. 48

414– उर्वशी पृ. 36

415– उर्वशी पृ. 24

416– दिनकर सृष्टि और दृष्टि पृ222

417– दिनकर सृष्टि और दृष्टि पृ. 222

418– दिनकर सृष्टि और दृष्टि पृ.104

419– कल्पना जनवी 1964

420– आस्था के चरण पृ. 601–602

421– देखिए उर्वशी पृ. 48

422– देखिए उर्वशी पृ. 63–64

423– उर्वशी भूमिका–ख

424– दिनकर सृष्टि और दृष्टि पृ. 215

425– उर्वशी पृ. 75

426– उर्वशी पृ.93

427– उर्वशी पृ.93

428– उर्वशी पृ.21

429– दिनकर, सृष्टि और दृष्टि पृ. 215

430– उर्वशी पृ.94

431– सृष्टि साँझ और अन्य काव्य नाटक, सिद्धनाथ कुमार, पुस्तक मन्दिर बक्सर प्र.स. 1959 पृ. 3

432– सृष्टि की साँझ और अन्यकाव्य नाटक पृ.19

433– सृष्टि की साँझ और अन्यकाव्य नाटक पृ.73

434– सृष्टि की साँझ और अन्यकाव्य नाटक

435– सृष्टि की साँझ और अन्यकाव्य नाटक पृ. 20

436– देखिये– सृष्टि की साँझ और अन्यकाव्य नाटक पृ. 20

437– अग्नि देवताः प्रतीक जुलाई 1952 पृ. 61

438– अग्नि देवता प्रतीक जुलाई 1952 पृ. 71

439– प्रतीक जुलाई 1952 पृ. 72

440– प्रतीक जुलाई 1952 पृ. 60

441– प्रतीक जुलाई 1952 पृ. 61

442– प्रतीक जुलाई 1952 पृ. 68

443– एकांकी की शिल्प विधि का विकास पृ. 384

444– संशय की एक रातः नरेश मेहता हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर गिरि गाँव बम्बई पृ. सं. 1962 पृ. 67

445– संशय की एक रातः नरेश मेहता हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर गिरि गाँव बम्बई पृ. सं. 1962 पृ. 57

446– संशय की एक रातः नरेश मेहता हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर गिरि गाँव बम्बई पृ. सं. 1962 पृ. 57

447– माध्यम अंक 5 वर्ष 1 सितम्बर 1964

448– संशय् की एक रात पृ. 84

449– संशय की एक रात पृ. 80

450– संशय की एक रात पृ. 13

451– संशय की एक रात पृ. 62

452– संशय की एक रात पृ. 65

453– संशय की एक रात पृ. 70

454– संशय की एक रात पृ. 78

455– संशय की एक रात पृ. 112

456– संशय की एक रात पृ. 31 व38

457– संशय की एक रात पृ. 23

458– नील और राम सम्वाद संशय की एक रात पृ. 32 से 45

459– संशय की एक रात शीर्ष बन्ध

460– माध्यम सितम्बर 1964 समीक्षा

461– संशय की एक रात पृ. 26

462– कल्पना यह अंक अगस्त 61

463– यमुना और गंगा की लहरें कल्पना अगस्त 61 पृ. 123

464– कल्पना अगस्त 1961 पृ. 53

465– कल्पना अगस्त 1961 पृ. 55

466– कल्पना अगस्त 1961 पृ.52

467– कल्पना अगस्त 1961 पृ. 47

468– सूरदास कल्पना नवम्बर 1961, पृ36–38

469– सूरदास कल्पना नवम्बर 1961, पृ 41

470– कल्पना, दिसम्बर 1961

471– कल्पना दिसम्बर 1961

472– कल्पना जनवरी 1962 पृ. 346– कल्पना जनवरी 1962 पृ. 37–38

474– कल्पना जनवरी 1962 पृ. 40

475— कल्पना नवम्बर 1961 पृ. 2

476— कल्पना दिसम्बर 1961 पृ. 49

477— कल्पना जनवरी 1962 पृ. 34

478— कल्पना जनवरी 1962 पृ.34

479— कल्पना जनवरी 1962 पृ.35

480— कल्पना दिसम्बर 1961 पृ. 46

481— एक कंठ विषपायीः दुष्यंत कुमार लोक भारती प्रकाशन, प्रयाग प्र. स. सि त. 63 पृ. अन्तिम

482— एक कंठ विषपायी पृ. 119—120

483— एक कंठ विषपायी पृ. 45

484— एक कंठ विषपायी पृ.104

485— एक कंठ विषपायी पृ.122

486— एक कंठ विषपायी पृ. 34

487— एक कंठ विषपायी पृ. 11

488— माध्यम, नवम्बर 1964 पृ. 97

489— धर्म 20 अगस्त 1967, पृ. 17

490— उत्तर प्रियदर्शी पृ. 33

491— उत्तर प्रियदर्शी पृ. 61—62

492— आजकल, जनवरी 1973 पृ. 24

493— समीक्षा अप्रैल 1968

494— उत्तर प्रियदर्शी पृ. 27

495— यक्ष की नगर प्रत्यक्ष की नगरी, भागवत प्रसाद, संकल्प संस्थान, राउर केला प्र.स. 1968 भूमिका

496— यक्ष की नगरी प्रत्यक्ष की नगरी पृ. 39

497— यक्ष की नगरी प्रत्यक्ष की नगरी पृ.46

498— यक्ष की नगरी प्रत्यक्ष की नगरी पृ.52

499– यक्ष की नगरी प्रत्यक्ष की नगरी पृ. 23

500– यक्ष की नगरी प्रत्यक्ष की नगरी पृ.24

501– यक्ष की नगरी प्रत्यक्ष की नगरी पृ.24

502– यक्ष की नगरी प्रत्यक्ष की नगरी पृ.34

503– यक्ष की नगरी प्रत्यक्ष की नगरी पृ.24

504– यक्ष की नगरी प्रत्यक्ष की नगरी पृ.76

505– यक्ष की नगरी प्रत्यक्ष की नगरी पृ. 68

506– यक्ष की नगरी प्रत्यक्ष की नगरी पृ. 35

507– यक्ष की नगरी प्रत्यक्ष की नगरी पृ.50

508– यक्ष की नगरी प्रत्यक्ष की नगरी पृ. 61

509– यक्ष की नगरी प्रत्यक्ष की नगरी पृ. 11 परिवेश एवं पूर्वाभास

510– राजा परीक्षित गौरी शंकर मिश्र परिमल प्रकाशन चण्सं. 1970 राजा परिक्ष्झित एक पर्यवेक्षण पृ. 10

511– राजा परीक्षित गौरी शंकर मिश्र परिमल प्रकाशन चण्सं. 1970 राजा परिक्ष्झित एक पर्यवेक्षण पृ. 44

512– राजा परीक्षित पृ. 69

513– राजा परीक्षित एक पर्यवेक्षण पृ. 8

514– राजा परीक्षित एक पर्यवेक्षण पृ.73

515– राजा परीक्षित एक पर्यवेक्षण पृ.36

516– पतिम्बरा गौरी शंकर मिश्र द्विजेन्द्र परिमल प्रकाशन इलाहाबाद द्वि स. 1973

517– विस्तार के लिए पतिम्बरा का पुरोवाक पठनीय है।

518– पतिम्बरा द्विजेन्द्र पृ. 42–43

519– पतिम्बरा द्विजेन्द्र पृ. 36

520– पतिम्बरा द्विजेन्द्र पृ. 39, 40,41, 41

521– देखिए पतिम्बरा पृ. 18,21,22,77 आदि

522– अपराजिता कुवर चन्द्र प्रकाश सिंह नेशलन पब्लिशिंग हाउस दिल्ली 1967

523– नीलकण्ठ निरालाः रामेश्वरसिंह काश्यप राष्ट्रीय प्रकाशन रुपौली,पूर्णया 1954 पृ. 3

524– समाधान कश्यप हिन्दी साहित्य संसार प्र. सं. 1971 पृ. 6–7

525–समाधान कश्यप हिन्दी साहित्य संसार प्र. सं. 1971 पृ. 22

526–समाधान कश्यप हिन्दी साहित्य संसार प्र. सं. 1971 पृ. 24

527–समाधान कश्यप हिन्दी साहित्य संसार प्र. सं. 1971 पृ. 102

528–समाधान कश्यप हिन्दी साहित्य संसार प्र. सं. 1971 पृ. 6–8

529–समाधान कश्यप हिन्दी साहित्य संसार प्र. सं. 1971 पृ. 26

530–समाधान कश्यप हिन्दी साहित्य संसार प्र. सं. 1971 पृ. 32

531–समाधान कश्यप हिन्दी साहित्य संसार प्र. सं. 1971 पृ. 38, 39, 42, 43, 50, 53, 66, 78, 79 इत्यादि।

पंचम अध्यायः

पंचम अध्याय

उपसंहार एवं परिलब्धिः—शोध सम्बन्धी निष्कर्ष

गीतिनाट्यों का सम्यक अध्ययन और विवेचन के पश्चात मैं जिन निष्कर्षों पर पहुँचा हूँ वे इस प्रकार हैं—

(1)— सामान्यतः गीतिनाट्यों को एंकांकी का एक अंग मानकर उसका विवेचन और समीक्षा की जाती रही है। लेकिन गीतिनाट्य एक स्वतन्त्र काव्य विधा है। न तो वह एंकाकी का ही भेद है और न रुपक का। अतः गीतिनाट्य को स्वतन्त्र विधा के रुप में स्वीकार किया जाना चाहिए।

(2)— गीतिनाट्य विधा के लिए अब तक अनेक अभिधानों (काव्य नाटक, काव्य रुपक, काव्य एकांकी, पद्य नाटक, पद्य रुपक, संगीतिका, भाव नाट्य इत्यादि) का प्रयोग होता रहा है। लेकिन इस विधा के लिए गीतिनाट्य नाम ही अधिक समीचीन और उपयुक्त है।

(3)— गीतिनाट्य के प्रादुभाव में न केवल भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य में अपितु तत्कालीन परिस्थितियों और प्रचार प्रसार के साधनों ने भी योग दिया है। नवीनता का आग्रह विविध विचारधराओं के प्रति विद्रोह और अतिशय भावुकता ने उनके सृजन को प्रोत्साहन दिया है। अतः जो केवल पाश्चात्य साहित्य को इसकी प्रेरणा का स्रोत मानते हैं अथवा जो इनका मूल तत्व वेदों में ढूढ़ते हैं, वे दोनों ही विचारक भ्रम ग्रसित हैं। गीतिनाट्य के प्रादुर्भाव में अनेक कारणों ने मिलकर योग दिया है ऐसी मेरी मान्यता है।

(4)— गीतिनाट्य विश्वव्यापी प्रतिक्रिया का परिणाम था। इस तथ्य को प्रस्तुत करने के लिए विश्व साहित्य के गीतिनाट्यों का संक्षिप्त विवरण दिया गया है। इससे विश्व साहित्य के सन्दर्भ में हिन्दी गीतिनाट्यों को भावधारा समझने में सहायता मिली है। समस्त गीतिनाट्यों के अध्ययन और विवेचन में इस निष्कर्ष पर

पहुँचा हूँ कि समस्त नीतिनाट्यों की आत्मा एक ही है—मानवता और नैतिकता की पुनर्स्थापना और जीवन की कटुता तथा वीभत्सता के माध्यम से मानवीयता और नैतिकता की भावना जाग्रत करना।

(5)— सामान्यतः गीतिनाट्यों की समीक्षा करते समय आलोचकों ने उनके तत्वों पर ध्यान नहीं दिया। मेरी यह मान्यता है कि गीतिनाट्यों का मूल्यांकन उसकी तात्विक विशेषताओं को ध्यान में रखकर ही किया जाना चाहिए। अगर इनकी समीक्षा काव्य या केवल नाटक को दृष्टि में रखकर की गई तो वह एकांगी और अधूरी होगी। प्रस्तुत शोध—प्रबन्ध में इसी तथ्य को ध्यान में रखकर कृतियों का मूल्यांकन किया गया है।

(6)— गीतिनाट्यों का वर्गीकरण विविध ढंग से किया जाता रहा है। कुछ समीक्षकों ने पाठ्य और रंगमंचीय दो भेद किये है, तो कुछ ने पाठ्य नाटक, रेडियो नाटक, भाव नाट्य आदि। लेकिन गीतिनाट्यों के लिए इतना ही पर्याप्त नहीं है। अतः उनका विविध ढंग से वर्गीकरण किया गया है। सामान्यतः पाठ्य नाटक को विद्वानों ने स्वतन्त्र विधा मान लिया है, यह गलत है। पाठ्य होना तो गीतिनाट्यों की विशेषता है, भेद नहीं। कोई भी नाटक पाठ्य हो सकता है, चाहे वो रेडियो नाटक हो, ध्वनि नाट्य हो, काव्य रुपक हो या कुछ और हो। 'पाठ्य' को गीतिनाट्य का भेद नहीं मानना चाहिए।

(7)— अब तक प्रसाद के 'करुणालय' को हिन्दी का प्रथम गीतिनाट्य माना जाता रहा है। ब्रजभाषा नाटकों का अध्ययन करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूँ कि गोस्वामित्रय रचित 'गोविन्द हुलास नाटक' हिन्दी का प्रथम गीति नाट्य है। इसकी रचना सं. 1700 के आस—पास हुई थी। इस दृष्टि से यह हिन्दी का प्रथम गीतिनाट्य ही नहीं, नाट्य विधा की दृष्टि से प्रथम नाटक भी सिद्ध होता है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि हिन्दी के प्रथम नाटक की रचना गीतिनाट्य के

रुप में हुई थी। कलान्तर में गद्य की लोक प्रियता बढ़ जाने पर गद्य नाटकों का प्रचलन हो गया।

(8)— गीतिनाट्यों के विवेचन से ऐसी धारणा बनी कि उनमें काव्य तत्व, नाटक तत्व पर हावी रहा है। अतिशय भावुकता ने किन्हीं–किन्हीं गीतिनाट्यों को काव्यमय बना दिया है। यह बात गीतिनाट्यो के लिए हितकर नहीं। आवश्यकता इस बात की है कि उनमें सभी तत्वों (नाट्य तत्व, काव्य तत्व, संगीत तत्व) का समन्वय होना चाहिए। तभी वे लोकप्रियता प्राप्त कर सकते है।

(9)— गीतिनाट्यों पर शोध कार्य करते समय अनेक नये ऐसे गीतिनाट्यों का पता लगा जिनका अभी तक गीतिनाट्य समीक्षकों ने उल्लेख तक नहीं किया। 'लीला', 'लौंगी', 'देवदासी', 'नहुष–निपात', 'सूरदास', 'यमुना गंगा की लहरें', 'कवि पत्नी', 'नीलकंठ' निराला, 'पतिंवरा', अंगुलि माल', 'यक्ष की नगरी', 'प्रत्यक्ष की नगरी', 'आकाश–पाताल', 'विषपान', 'आराम हराम है', 'समाधान' 'अग्नि लीक' इत्यादि। हो सकता है और भी अभी बहुत से गीतिनाट्य अज्ञान के गर्त में पड़े हों। लेकिन फिर भी जो गीतिनाट्य उपलब्ध हुए हैं उनसे विदित होता है कि गीतिनाट्य की लम्बी परम्परा है। उसका एक छोर भक्ति काल को छू रहा है तो दूसरा साम्प्रतिक काल तक फैला हुआ है। बीच–बीच में इसकी धारा विलुप्त हो गई लेकिन समाप्त नहीं हुई। अतः निष्कर्ष के रुप में कहा जा सकता है कि गीतिनाट्य का इतिहास नाटक और एंकाकी साहित्य से भी प्राचीन है।

गीतिनाट्य के इतिहास दृष्टिपात करने और विविध गीतिनाट्यों की सम्यक समीक्षा और अध्ययन के पश्चात् कुछ ऐसी सामान्य प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं। जो प्रायः गीतिनाट्य का अपरिहार अंग रही है। जिन्होंने गीतिनाट्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। और जिन्होंने गीतिनाट्यों को पर्याप्त प्रभावित किया है।

गीतिनाट्य की प्रधान प्रकृति पौराणिक गाथाओं से कथा चयन की गयी है। लेखकों ने पौराणिक घटनाओं का सहारा लेकर वर्तमान समस्याओं पर प्रकाश डाला है। यह कवि की क्षमता पर निर्भर रहा है कि उसने किस सीमा तक वर्तमान जीवन, को प्रस्तुत किया है। 'अंधायुग', 'एक कंठ विषपायी', 'संशय की एक रात' ऐसी ही कृतियाँ हैं, जिनमें पुरातन पृष्ठभूमि पर आधुनिक युद्ध की समस्याओं और परिणामों पर विस्तार डाला गया है।

लेकिन यह प्रवृत्ति सर्वथा नहीं रही। कुछ लेखकों में काल्पनिक के माध्यम से भी युग जनित परिस्थितियों का चित्रण किया गया है। सिंह नाथ कुमार के 'सृष्टि की साँझ' में भविष्य का कथानक है। तृतीय विश्व युद्ध के पश्चात की समस्या और परिणामों को सुन्दर ढंग से उठाया गया है। पन्त जी के अधिकांश गीतिनाट्य पौराणिक गाथाओं से प्रेरणा न लेकर नव कल्पना प्रसूत है। रामेश्वर सिंह काश्यप के गीतितनाट्य 'समाधन' में वर्त जीवन के भ्रष्टाचार, कपटाचार और राजनैतिक शोषण का चित्रण किया गया है।

गीतिनाट्यों की दूसरी प्रधान प्रवृति युगानुरूप बदलती भाषा हो रही है। गीतिनाट्य की भाषा की रही है। गीतिनाट्यों में युग और काल के अनुसार भाषा के विभिन्न प्रयोग होते हैं। जिन दिनों ब्रज भाषा का प्राधान्य था और प्रमुख कवि ब्रज भाषा में कविता कर रहे थे। उसमें गीतिनाट्यों की भाषा ब्रज थी। 'गोविन्द हुलास' ब्रज भाषा का ही गीतिनाट्य है। जिसमें प्राचीन तुकान्त और अतुकान्त दोनों प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है।

आगे चलकर जब द्विवेदी युग में खीड़ी बोली की प्रधानता हुई तो मैथलीशरण गुप्त और सियाराम शरण गुप्त ने खड़ी बोली में गीतिनाट्यों की रचना की। यह युग तुकान्त छन्दों में कविता करने का था। प्रसाद के समय अभित्राक्षर छन्दों में बंगला में गीतिनाट्य लिखे जा रहे थे। जिनसे प्रभावित होकर

प्रसाद ने अभित्राक्षर छन्द में 'करुणालय' की रचना की जब प्रयोगवाद का जमाना आया और अतुकान्त तथा मुक्त छन्दों का प्रयोग प्रारम्भ हुआ तो धर्मवीर भारतीय जैसे गीतिनाट्यकारों ने अपने गीतिनाट्यों में इन छन्दों का प्रयोग किया।

गीतिनाट्यों की तीसरी प्रवृत्ति विषय वस्तु में अन्तः संघर्ष को चित्रित करना रही है। प्रायः समस्त गीतिनाट्यकारो ने अन्तश्चेतना के द्वन्द्व को प्रगट किया है। वास्तव में अन्तश्चेतना का चित्रण गीतिनाट्य की अनिवार्य विशेषता है। बिना इसके गीतिनाट्य का स्वरुप ही विश्रृंखल हो जाता है।

गीतिनाट्य की चौथी प्रवृत्ति आध्यात्मिक स्वर को ऊँचा उठा रहा है। प्रायः सभी रचनाओ में मानवीय मूल्यों के महत्व पर जोर दिया गया है। अधिकांश गीतिनाट्य युद्ध का परित्याग करो। सत्य, अहिंसा, त्याग तपस्या और मानवता ही उनका मूल उद्देश्य रहा है। पन्त जी के गीतिनाट्यो में मानवता का स्वर सर्वोपरि है। सर्वत्र तरुणा, वेदना और निराशा उमड़ी पड़ती है। ऐसा लगता जैसे गीतिनाट्यों को घने अन्धेरे ने ढँक दिया हो लेकिन उनके भीतर से उभरती मानवता की ज्योति मानव को आश्वस्थ बनाती सी दिखाइ देती है। लगता है मानव मूल्यों का सम्वल लेकर मानव वर्तमान भौतिकता, हिंसा और अभौतिकता के गहन भंवर से अपने को उवार लेगा।

गीतिनाट्यों की पाँचवी मुख्य प्रवृत्ति रंगमंच का ध्यान न रखना है। अधिकांश गीतिनाट्य केवल पाठ्य बनकर रह गये है। कुछ में तो नाटकीयता का अभाव है और कुछ में अतिशय काव्यात्मकता का दबाव है। कुछ लेखकों ने लम्बे लम्बे दार्शनिक कथोपकथनों का सृजन किया है जिससे वे विचार प्रधान काव्यात्मक नाटक बनकर रह गये है। गुप्त–बन्धु और दिनकर के गीतिनाट्य ऐसे ही है।

अत्याधुनिक गीतिनाट्यकारों की एक अन्य सामान्य प्रवृत्ति गीतिनाट्यों को रेडियों के लिए लिखना है। ऐसे गीतिनाट्यो में रंगमंच का ध्यान नहीं रखा जाता

अपितु श्रव्य और ध्वनि को प्रधनता दी जाती है।

गीतिनाट्य का प्रधान विषय काम और युद्ध ही रहे हैं। मत्स्यगंधा, राधा, विश्वामित्र, उर्वशी, स्नेह या स्वर्ग आदि यदि काम से सम्बन्धित है। तो अग्नि देवता, सृष्टि की साँझ, संशय की एक रात, एक कंठ विषपायी आदि का विषय युद्ध रहा है। शायद गीतिनाट्यकार युद्ध और उसके परिणामों से मानव को परिचति कराने में सचेष्ट दीखते हैं। युद्ध का परिणाम सर्वथा बुरा होता है, यही बताना उनका प्रान उद्देय है। काम के माध्यम से मानव की रागात्मक चित्त वृत्तियों को उभारा गया है। आधुनिक साहित्य फ्रायड के मनोविश्लेषण से आक्रान्त है। मन (चेतन और अवचेतन) कुण्ठाओं और वृत्तियों को चित्रित करने के लिए काम प्रधान कथाओं का सहारा लिया गया है।

गीतिनाट्यों के लेखक मूल रुप से कवि रहे है यह बात अधिकांश गीतिनाट्कारों पर लागू होती है। गीतिनाट्य लिखने की पहल भी कवियों ने ही है। मैथिलीशरण गुप्त, सियाराम गुप्त, प्रसाद, पन्त, दिनकर, भारती, नरेश मेहता, अज्ञेय आदि कवि रुप में ही प्रतिष्ठित है। नाट्यकार के रुप में नहीं लक्ष्मी नारायण लाल जैसे नाटककारों ने गीतिनाट्य कम लिखे है। शायद इसका कारण यह है कि बिना काव्यात्मक प्रतिभा के गीतिनाट्य नहीं लिखे जा सकते।

गीतिनाट्य अपने युग की राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित होते रहे है और उनमें युगाभिव्यक्ति पर्याप्त रुप से हुई है। प्रारम्भ में नाटकों का मूल उद्देश्य जनसाधारण का मनोरंजन करना था। ब्रज भाषा नाटकों की रचना इसी उद्देश्य को लेकर हुई थी। दूसरा उद्देश्य धर्म प्रचार करना था। 'गोविन्द हुलास नाटक' में यही बात देखने को मिलती है।

द्विवेदी युग भारतीय पुर्नजागरण का युग था भारतीय जनता स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए संघर्ष कर रही थी। दूसरी ओर समाज सुंधारक समाज का स्वरुप

बदलने में दत्त–चित्त थे। वे गिरते नैतिक स्तर से चिन्तित थे और पुनः नैतिक आदर्श स्थापित करना चाहते थे। साहित्य भी इन परिस्थितियों से प्रभावित हुआ। इस काल के साहित्यकारों में लोक मंगल की भावना प्रखर थी। यहाँ तक की उन्होंने सौन्दर्य के प्रति भी नीतिबन्दी दृष्टिकोण अपनाया था। द्विवेदी कालीन गीतिनाट्यों पर भी इसका प्रभाव पड़ा। मैथिलीशरण गुप्त के 'अनध– प्रसाद के 'करुणालय' और सियाराम शरण गुप्त के 'उन्मुक्त' में देशप्रेम, राष्ट्रीयता त्याग बलिदान और मानवता के स्वर मुखरित हुए है।

छायावाद के आते ही साहित्य की अनेक मान्यताऐं बदल गई दो महायुद्धों के बीच राजैतिक आन्दोलन की बागडोर गांधी जी के हाथ में थी। असहयोग आन्दोलन, सविनय अवज्ञा आन्दोलन और भारत छोड़ो आन्दोलनों से अँग्रेजी सामाज्य की जड़ें हिल गई थी। भारतीय जनता में नवीन आस्था और चेतना का उदय हुआ था। छायावाद में वैयक्तिकता का आग्रह बढ़ गया था। इस काल के कवियों का दृष्टिकोण सौन्दर्य प्रधान था। उनकी मान्यता थी कि मानव चित्त में उत्पन्न होने वाली भाव–लहरी केवल सामाजिक ही नहीं होती। उसकी मूल भित्ति वैयक्तिकता पर आधारित होती है। भावनाएं पहले वैयक्तिकता की सीमा में फलती–फूलती हैं और तदुपरान्त उनका प्रसार समाज के व्यापक क्षेत्र में होता है। अतः इस काल साहित्य अन्तर्मुखी हो गया। अन्तर्द्वन्द्व और मानसिक संघर्ष की अभिव्यक्ति इस युग की विशेषता थी।

गीतिनाट्यों पर इन दोनों की बातों का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। यदि यह कहा जाए वैयक्तिकता और मानसिक संघर्ष गीतिनाट्यों का प्रधान अंग बन गये तो अतिशयोक्ति न होगी। केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' और 'पन्त' जी के गीतिनाट्यों में यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है। वैसे यह बात सम्पूर्ण गीतिनाट्यो पर लागू होती है। आगे चलकर साहित्य पर मार्क्सवाद विचार धारा का प्रभाव पड़ा। समाज की

उलझी हुई समस्याओ, युद्ध के भीषण विनाश जीवन के प्रति अनास्था, निराशा, क्षोभ और संशय ने समाज में रस हीनता ला दी। परमाणु वस्त्रों की भयावह कल्पना ने जीवन की रही–सही आस्था भी समाप्त कर दी। ऐसी स्थिति में साहित्यकार कैसे मौन बैठ सकता था। मानवीय मूल्यों के विघटन और आर्थिक संकट से त्रस्त साहित्यकार समस्या के समाधान में व्यस्त हो गया। गीतिनाट्यों ने इस पहलू को सबसे अधिक उभरा। भारत के प्राचीन सांस्कृति मूल्यों और पौराणिक गाथाओं के माध्यम से मानव में नवीन चेतना लाने का प्रयत्न किया। गिरिजा कुमार माथुर ने सामाजिक जीवन की समस्याओं पर 'कल्पान्तर', 'दंगा', 'राम' आदि गीतिनाट्य लिखे। सिंहनाथ कुमार के गीतिनाट्यों में भी जीवन की विविध समस्याओं को विषय बनाया गया है।

फ्रायड के मनोविश्लेषण का प्रभाव भी आधुनिक जीवन पर बड़ा गहरा पड़ा। गीतिनाट्यकार भी इससे अछूते नहीं रहे। भगवतीचरण वर्मा का 'तारा' कुँवर नारायण का 'सूरदास' दिनकर की 'उर्वशी' काम और प्रेम की विचारधारा पर ही आधारित है।

महात्मा गाँधी ने वर्तमान राजनीत, समाज और साहित्य पर अपनी अभिन्न छाप छोड़ी। राष्ट्रीय चेतना के साथ गाँधी जी एकान्तर हो गये। अनेक गीतिनाट्य राष्ट्रीयता और गाँधी जी को भी लेकर लिखे गये। पन्त जी का 'शुभ्र पुरुष' प्रभाकर माचवे का 'मुक्ति देवता प्रणाम' ऐसे ही गीतिनाट्य हैं।

वर्तमान सामाजिक जीवन का प्रभाव भी गीतिनाट्यों पर पड़ा। मानव शांति और सुख की खोज में इधर उधर भटक रहा है। यह सोचकर कि भौतिक सम्पन्नता से सुख मिलेगा, वह भौतिक साधनों की खोज में दौड़ रहा है। 'यक्ष की नगरी', 'प्रत्यक्ष की नगरी' में वर्तमान औद्योगिक जीवन का सुन्दर चित्रण है। चकआ की आत्मा इधर उधर भटकती है, लेकिन उसे सुख नहीं मिलता। इस

प्रकार हम देखते है कि गीतिनाट्यों ने युग की समस्याओं और विचारधारा से प्रेरणा प्राप्त की और तदनुरूप उनका विश्लेषण किया है।

विभेदक विशेषताए—

जहाँ समस्त गीतिनाट्यों में कुछ ऐसी विशेषताएँ थी जो उन्हें एक सूत्र में पिरो देती है, वही काल विशेष के गीतिनाट्यों की कुछ ऐसी विशेषताएँ भी है, जो उन्हें एक दूसरे से भिन्न कर देती है। यह भेद भाषा का भी है और शिल्प का भी। प्रारम्भिक गीतिनाट्य (द्विवेदी युगीन और छायावाद युगीन) शैली शिल्प की दृष्टि से उतने सुन्दर नहीं है, जितने कि बाद के गीतिनाट्य।

द्विवेदी युग के गीतिनाट्यों का मूल स्वर नैतिकतावादी है। ये गीतिनाट्य रंगमंच को ध्यान में रखकर नहीं लिखे गये है। अतः पाठ्य बनकर रह गये हैं। नाटकीय सम्भावनाएँ इनमें क्षीण हैं। तीसरे इस काल के गीतिनाट्यों में मुक्त छन्द के स्थान पर अतुकान्त छन्दों का प्रयोग हुआ जिसके कारण उनमें वह स्वाभाविकता नहीं आने पाई जो गीतिनाट्यो के लिए अनिवार्य होती है।

छायावाद युगीन गीतिनाट्य भी नाटकीयता की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। वे द्विवेदी युग के गीतिनाट्यों के समान ही पाठ्य है। द्विवेदी युगीन गीतिनाट्यों में जहाँ नैतिक स्वर अधिक मुखरित हुए है। वहाँ इस काल के गीतिनाट्य किसी न किसी वाद या विचारधारा से प्रेरित है। पन्त जी पर अरविन्द दर्शन और गाँधीवाद का विशेष प्रभाव पड़ा है और छन्द की दृष्टि से इस युग के गीतिनाट्य द्विवेदी युगीन गीतिनाट्यों से भिन्न नहीं है। दोनों युगों के अतुकांत छन्दों का प्रयोग हुआ है। लेकिन द्विवेदी युग के गीतिनाट्य न रंगमंच की दृष्टि से उपयोगी थे और न रेडियो की दृष्टि से। जबकि छायावाद युगीन गीतिनाट्य रेडियो शिल्प में प्रभावित थे। पन्त जी के गीतिनाट्य रेडियो से प्रसारित भी हुए है।

द्विवेदी कालीन और छायावाद कालीन गीतिनाट्यों में जहाँ आदर्शवादी दृष्टि कोण अपनाया गया है, छायावादोत्तर गीतिनाट्यों में यथार्थवादी। छायावादोत्तर गीतिनाट्यों में फ्रायड के मनोविश्लेषण की स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है। दूसरे पूर्ववर्ती नाटकों में जहाँ चिन्तन की प्रधानता है, वहाँ छायावादोत्तर गीतिनाट्यों में भावना की। ऐसा लगता है जैसे चिन्तन भावना के समक्ष सहमकर एक ओर खड़ा हो गया हो। मानव मन की व्याख्या इस काल में सुन्दर ढंग से हुई है। इस काल के गीतिनाट्यो में काम वासना और प्रेम का विस्तार स्पष्ट देखा जा सकता है। नाट्यतत्व क्षीण है जिसके कारण इसके नाटको का रंगमंच पर सहज ढ़ग से प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ–साथ गीतिनाट्यों ने आधी मंजिल तय कर ली थी। अतः स्वातन्त्रोत्तर गीतिनाट्यों में शैली शिल्प और स्वरूप की दृष्टि से प्रौढ़ता आ गई। इस काल के गीतिनाट्यों की तुलना सर्वश्रेष्ठ गीतिनाट्यों में भी की जाती है। 'अंधायुग' 'एक कंठ विषपायी', सूखा सरोवर, 'उर्वशी', 'संशय की एक रात' इस युग की देन है। स्वातन्त्रयोत्तर गीतिनाट्यों को तीन चरणों में विभक्त किया गया है।

प्रथम चरण के गीतिनाट्य सभी कसौटियों पर खरे उतरते हैं। इनमें काव्य तत्व नाट्य तत्व और संगीत तत्व ने मिलकर अद्भुत आनन्द की त्रिवेणी बहाई है। प्रथम चरण के अधिकांश गीतिनाट्य रेडियों लिए लिखे गये है। धर्मवीर भारती, गिरिजा कुमार माथुर, जानकी बल्लभ शास्त्री, प्रभाकर माचवे आदि के गीतिनाट्य रेडियों से प्रसरित हुए है। इसलिए इस काल के सभी गीतिनाट्य कुछ अपवादों को छोड़कर रेडियो शिल्प से प्रभावित है। जहाँ छायावादोत्तर गीतिनाट्य, भाव गीतिनाट्य कहे जा सकते है। वहाँ इस काल के नाटक ध्वनि गीतिनाट्य। इस काल में कुछ ऐसे गीतनाट्यों की भी रचना हुई है जो रेडियो से भी प्रसारित हुए

और रंगमंच पर भी सुन्दर ढ़ंग से प्रदर्शित किये गये जैसे–अंधयुग। इस काल के गीनिाट्यों में जहाँ फ्रायड का प्रभाव बना रहा वहीं राष्ट्रीयता का स्वर भी मुखरित हुआ। कुछ नये प्रयोग भी इस काल में हुए। कर्तार सिंह दुग्गल ने एक पात्रीय गीतिनाट्यों का प्रयोग सुन्दर ढ़ंग से किया गया। इस प्रकार परम्परा और प्रयोग शैली और शिल्प, विषय वस्तु और स्वरूप सभी दृष्टियों से इस काल के गीतिनाट्य सुन्दर है। अतः इस काल (1947–1955) को हिन्दी गीतिनाट्यों का स्वर्गकाल कहा जा सकता है।

स्वातन्त्र्योत्तर गीतिनाट्यों के द्वितीय चरण (1955–1965) में पाठ्य और रंगमंचीय दोनों प्रकार के गीतिनाट्यों की रचना हुई गुणात्मक दृष्टि से काल गीतिनाट्य प्रथम चरण के समान ही है। इस काल के गीतिनाट्यों में वैयक्तिकता की प्रधानता थी। गीतिनाट्यों में व्यक्तिवाद की अवहेलना करके सामाजिक सिद्धान्तों की प्रतिष्ठा की। वास्तव में छायावाद युग अन्तर्मुखी था। उसमें मनुष्य की वैयक्तिकता को प्रधानता दी गई थी। उनका विचार था कि समाज की आधार शिला वैयक्तिकता पर आधारित होती है। व्यक्तिगत भावनाएँ ही कालान्तर में सामाजिकता का रुप धारण करती हैं लेकिन इसमें विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई और सामाजिकता को महत्व मिला। सिंहनाथ कुमार के गीतिनाट्य इसके उदाहरण है। इस काल के गीतिनाट्य भी रेडियो शिल्प से प्रभावित थे। दिनकर की 'उर्वशी' इसीयुग की रचना है।

हिन्दी गीतिनाट्य के अद्यतन काल (1965 से अब तक) में भी कुछ नवीन प्रयोग हुए। अज्ञेय जी ने ज़ापानी 'नो' नाटकों से ढंग पर 'उत्तर प्रियदर्शी' की रचना । भागवत प्रसाद ने प्रथम वार औद्यागिक जीवन को आधार बनाकर 'यक्ष की नगरीः प्रत्यक्ष की नगरी गीतिनाट्य लिखा। कुछ बाल गीतिनाट्य भी लिखे गये। इन्हें वेश्म गीतिनाट्य कहा जा सकता है। सामाजिक गीतिनाट्यों में रामेश्वर सिंह

काश्यप का 'समाधान' इस काल की श्रेष्ठ रचना है, जो रेडियो पर प्रसारित भी हुई है और मंच पर सफलता पूर्वक प्रदर्शित भी उसकी गणना श्रेष्ठतम गीतिनाट्यों में की जाती है। लेकिन फ्रायड के मनोविश्लेषण से प्रभावित गीतिनाट्यों की रचना होती रही। गौरी शंकर मिश्र द्विजेन्द्र ने सुन्दर अभिनेय गीतिनाट्यों की रचना की। इस प्रकार सम्प्रति अनेक गीतिनाट्य रचे जा रहे है। स्पष्ट है कि हिन्दी गीतितनाट्य विधा निरन्तर प्रगति कर रही है। और आशा है कि भविष्य में और भी सुन्दर गीतिनाट्यों की रचना होगी।

रसानुभूति और गीतिनाट्य

रसानुभूति की दृष्टि से गीतिनाट्यों पर एक विहंगम दृष्टि डालना आवश्यक है। काव्य का मुख्य ध्येय पाठक या श्रोता में रसानुभूति उत्पन्न करना है। अर्थात उसे वह आनन्द प्रदान करना है। जो सांसारिक पदार्थों से प्राप्त आनन्द से भिन्न होता है। इसे ब्रह्मानन्द सहोदर कहा गया है। अतः जहाँ काव्य के लिए रस निष्पत्ति आवश्यक है, वहीं नाटक के लिए भी रसानुभूति की आवश्यकता होती है। बिना रस के न कविता शोभा पाती है और न नाटक। पात्रों का अभिनय देखकर दर्शक के मन में जो स्थायी आनन्द उत्पन्न होता है वह निश्चय ही रस की सृष्टि करता है। रस एक व्यापक शब्द है। जिसमें काव्यगत सम्पूर्ण भाव सम्पदा का समावेश हो जाता है। काव्य चिन्तन से प्राप्त रागात्मक अनुभूति के सभी रुप और प्रकार सूक्ष्म और प्रबल, सरल और जटिल, क्षणिक और स्थायी सम्वेदन, स्पर्श चित्त विकार भाव बिम्ब, संस्कार और मनोदशा, इत्यादि सभी रस की परिधि में न आता हो। रसाभास, भाव, भावोदय, भावसन्धि, भाव शबलता, भाव शान्ति सभी इससे अन्तर्गत आते हैं। राग तत्व और कल्पना तत्व उनके प्रधान अंग है।

गीतिनाट्यों में रस का महत्वपूर्ण स्थान है। चूँकि गीतिनाट्यों का प्रधान तत्व भाव शबलता है अतः उनके पढ़ने या देखने से रासानुभूति होना अनिवार्य है।

इनमें जहाँ मानव मन में उठने वाले द्वन्द्व को वाणी दी जाती है, वहीं मन की भावनाओं को भी प्रस्तुत किया जाता है। इन्हें पढ़कर मन भाव–विभोर हो जाता है। वह रसानुभूति के सरोवर में आपाद डूब जाता है। पाठक की भावनाएँ लेखक की भावनओं के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेती है।

गीतिनाट्यों का प्रधान विषय प्रेम, काम, युद्ध और तज्जनित विनाश रहे हैं अतः गीतिनाट्यों में श्रृंगार, करुण, रौद्र, वीर, भयानक और वीभत्स रसों की प्रधानता रही है। वात्सल्य, हास्य, अद्‌भुत और शान्ति रसों का चित्रण बहुत कम हुआ है। गीतिनाट्यकारों का प्रधान उद्‌देश्य मानव की रगात्मक वृत्तियों को उभर कर भयानक विध्वंस से उसकी रक्षा करना रहा है। युद्ध की भयानकता को दिखाकर वे मानव को उनसे बचने की शिक्षा देते हैं। कारुणिक प्रसंगों के माध्यम से वे मानव के कोमल भावों को जाग्रत करते हैं।

गीतिनाट्यों में श्रृंगार रस को प्रधानता मिली है। संयोग और वियोग के अनेक प्रसंगों को चित्रित किया गया है। लेकिन केवल मांसल शरीरिक सुख का चित्रण नहीं हुआ। गीतनाट्यों में प्रेम का उदात्तीकरण कर दिया गया है। व्यक्ति का प्रेम सामाजिकता के धरातल पर प्रस्फुटित हुआ है। उदाहरणार्थ– 'राधा' में राधा का प्रेम विश्व प्रेम के रुप में प्रस्तुत हुआ है। लेकिन कहीं–कहीं व्यक्तिगत भावनाओं को भी उभारा गया है। यथा–

"दवे पाँव पीछे आकर, मैने उसे चूमा
मुझे ऐसा लगा, जैसे सिगार की सुगन्ध
सारी की सारी उसके होठों पर जमी हों।"

यौवन का आगमन युवती के लिए वसन्त का आगमन होता है। प्रकृति के कण–कण में उसे यौवन की गंध आने लगती है, लगता है प्रकृति ने उसी के लिए श्रृंगार किया है– एक सत्रह वर्ष की लड़की कहती है–

"सत्रह साल की आयु

सव सुगन्धियाँ एक युवती को ढूँढती फिरती हैं

सब जुगनूँ आ छिपते हैं, चोटियो में।"

कहीं–कहीं नारी के नेत्रों, उरोजों, कटाक्षो आदि का चित्रण भी किया गया है। नारी को अपनी शक्ति पर विश्वास है। विश्वामित्र की मेनका को अपने रूप और यौवन का घमण्ड है। उर्वशी की सखियों को विश्वास है कि उर्वशी के सौन्दर्य के समक्ष राज नतमस्तक हो जाएगा–

"कौतूहल से नत नयन उठा, चंचल चितवन

जब सखी चलाएगी, राजा आहत मन

चीत्कार कर उठेगा, मैने ली हार मान।"

संयोग के समान वियोग का चित्रण भी हुआ है लेकिन उसका प्रसार बहुत अधिक नहीं हुआ। वियोग वर्णन की दृष्टि से लक्ष्मीनारायण लाल का 'सूखा सरोवर' अच्छा गीतिनाट्य है। युद्ध वर्णन के प्रसंगों में वीर, भयानक और वीभत्स रसों का वर्णन हुआ है। य्रुद्ध से सम्बन्धित अनेक गीतिनाट्य लिखे गये है। 'स्नेह या स्वर्ग', 'अंधायुग', 'एक कंठ विषपायी', 'संशय की एक रात', 'सृष्टि का आखिरी आदमी, आदि इसी प्रकार के गीतिनाट्य है। इनमें मानव की कुंठा विकृति पाशविकता, निर्दयता आदि के माध्यम से लेखकों ने युद्ध से बचने का उपदेश दिया है। वीभत्स तथा भयानक चित्रण दृष्टव्य है–

"बरस पड़े विध्वंस पिण्ड सौ–सौ यानों से

प्रेतों का अदृहसास, शत शत प्रलयंकर

उल्काओं का पतन वज्रपातों का तर्जन।

तथा

"कोसों तक सुनसान, नहीं कोई जन मानस

बीच–बीच में गीध घिरे, मनुजांग गलितशव।

या

"कोटर से झाँक रहे थे दो

खूँखार गिद्ध

इस झाड़ी से उस झाड़ी में

घूम रहे

गीदड़ और भेड़िये।"

युद्ध की वीभत्सलता ओर विनाश के साथ हमारे मन में करुणा की भावना जागृत हो उठती है। मन विनाश और चीत्कारों से व्याकुल और शोक मग्न हो जाता है। जब हम पढ़ते हैं कि दुर्योधन–

"वह जो सम्राटों का अधिपति था

खाली हाथ, नंगे पाँव

रक्त सने

फटे हुए वस्त्रों में

टूटे रथ के समीप

खड़ा था निहत्था ही

अश्रु भरे नेत्रों से

उसने मुझे देखा और माथा झुका लिया।

तो हमारे मन में सहज ही करुणा का संचार हो जाता है। वास्तव में गीतिनाट्यों के प्रधान रस शृंगार, करुणा और भयानक रहे है। युद्ध प्रसंगों में ही कहीं–कहीं वीर रस के दर्शन हो जाते है। जब युद्ध के लिए तत्पर लक्ष्मण उत्साह के साथ राम से युद्ध को जाने के लिए कहते हैं, तो सहज ही हमारा मन वीरता से भर उठता है–

"आप रुके रामेश्वर

जायेगा लक्ष्मण ले अभी यान

यदि नितात एकाकी भी जाना पड़े जाऊगा

सीता को लाऊँगा अपने पुरुषार्थ से।"

'एक कंठ विषपायी' में रौद्र रस का चित्रण अच्छा हुआ है। प्रिया विहीन शंकर प्रलयंकर बन जाते है। यद्यपि यत्र–तत्र हास्य, सन्देह और अद्‌भुत रस के उदाहरण भी मिल जाते है। कवि पत्नी में हास्य 'संशय की एक रात' में सन्देह और 'उत्तर प्रियदर्शी' में उद्‌भुत रस की झलक स्पष्ट परिलक्षित होती है। भाव प्रधान गीतिनाट्‌यों में–रसानुभूति अधिक हुई है, जबकि चिन्तन प्रधान गीतनाट्‌यों में बुद्धि काव्य को मन से दूर ले गई है। यद्यपि चिन्तन को गीतिनाट्‌यों में अधिक स्थान नहीं मिला, फिर भी कही–कहीं मस्तिष्क हमारी भावना के ऊपर हावी हो गया है।

काव्य तत्व और नाटकीयता के योग ने रसानुभूति को गीतिनाट्‌यों में और अधिक तीव्र कर दिया है। केवल काव्य पढ़ने से कवि के बिम्ब स्पष्ट नहीं होते। लेकिन जब कविता को अपनी ऑखों के सामने रंगमंच पर साकार रूप में देखते है तो हमारी भावनाएँ और अधिक घनीभूत हो जाती है। मर्मस्पर्शी प्रसंग सहज ही मन को आवेगों से आप्लावित करते हैं। अतः गीतिनाट्‌यों के माध्यम से रस की अनुभूति अधिक मात्रा में होती है।

कतिपय सुझाव

हिन्दी गीतिनाट्‌य की जो परम्परा लोकनाट्‌य हिन्दीतर गीतनाट्‌यों से प्रेरण लेकर 'गोविन्द हुलास नाटक', 'करुणालय', 'मत्स्यगंधा', 'अंधायुग', 'उत्तर प्रियदर्शी' से होती हुई 'अग्निलीक' तक आई है, वह निरन्तर विकास के पथ पर अग्रसर है। अपनी विकस यात्रा के मध्य कही उसे झटके सहने पड़े है तो कही

ठिठकना पड़ा है। चल चित्र ने उसके मार्ग को अवरुह किया है तो रेडियो ने मार्ग के कंटकों को हटाकर एक सुस्पष्ट पथ बनाया है। समस्या–वादी नाटककारों ने उसे दुत्कारा है,तो भावुक मनीषियों ने उसे दुलारा भी है। प्रेम और विरोध के मध्य वहती गीतिनाट्य सारिणी निरनतर प्रगति की ओर बढ़ रही है। मानसिक राग–विरागों, द्वन्द्व और भावना से मंडित इस विधा ने मानव को नवीन चेतना और प्रेरणा दी है।

फिर भी अभी यह नहीं कहा जा सकता कि यह नवोन्मेषिनी विधा अपने उत्कर्ष के चरम बिन्दु पर पहुँच गई है। अभी उसके रुप और सौन्दर्य मे वृद्धि की आवश्यकता है। अभी तक समालोचकों ने पूर्ण मन से इसे स्वतन्त्र काव्य विधा स्वीकर नहीं किया। सामान्यतः गीतिनाट्य का उललेख या तो एकांकी के अन्तर्गत किया गया है अथवा ध्वनि नाटक के अन्तर्गत। कुछ समीक्षकों ने इसे रेडियो नाटक का ही अंग एक माना है। यह स्थिति भ्रम पूर्ण है गीतिनाट्य एक अंक का भी हो सकता है और रंगमंच के लिए भी। वह मात्र पाठ्य भी हो सकता है। अतः गीतिनाट्य को स्वतन्त्र काव्य विधा मानकर ही उसकी समीक्षा की जानी चाहिए।

गीतिनाट्य को अभी पर्याप्त प्रोत्साहन की आवश्यकता है। अभी तक विश्वविद्यालयों में इस विधा को विशेष स्थान नहीं मिला विश्वविद्यालयों में कम से कम एक गीतिनाट्य पाठ्यक्रम में होना चाहिए। कुछ विश्वविद्यालयों में दिनकर की 'उर्वशी' को एम. ए. (हिन्दी) के पाठ्यक्रम में रखा है, जो निश्चय ही उचित है। सम्पादकों को भी चाहिए कि वे एकांकी संकलनों में गीतिनाट्य को प्रतिनिधित्व दें। बहुत कम ऐसे संग्रह है जिनमें गीतिनाट्य संकलित कये गये है। 'जीवन और संघर्ष' (1959) में पन्त जी का गीतिनाट्य विद्युत वासना, अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'नये एकांकी (1961) में पन्त का ही 'शुभ्र पुरुष तथा हिन्दी एकांकी 'सौरभ' में सिंहनाथ कुमार का 'लौह देवता' गीतिनाट्य संकलित किया गया है। वास्तव में मात्र

गद्य—एकांकी साहित्य का प्रतिनिधित्व नहीं करते। एकांकी संकलन में गद्य एंकाकी के अतिरिक्त ध्वनि नाट्य, संगीत रुपक, गीतिनाट्य, नृत्यनाट्य आदि विविधि रूपों का संकलन किया जाना चाहिए। इससे छात्रों में इन विधाओं के अध्ययन के प्रति रुचि जाग्रत होगी।

गीतिनाट्य पत्र—पत्रिकाओं में अधिक कलेवर घेरता ह।। अतः सम्पादक उन्हें छापने से कतराते है। लेकिन स्थान भय से गीतिनाट्यों को स्थान न देना उसके साथ अहित करना ही माना जायेगा। अतः इस ओर अभिरुचि उत्पन्न करने हेतु पत्र पत्रिकाओं मे इनकों विशेष स्थान दिया जाना उचित है।

रंगमंच पर गीतिनाट्यों का प्रदर्शन बहुत कम होता है। यद्यपि अनेक गीतिनाट्यों का सफल प्रदर्शन हुआ है, फिर भी उन्हें उत्साहपूर्वक नहीं कहा जा सकता रंगमंच पर प्रस्तुत करने के लिए सफल एवं अनुभवी पात्रों की अवश्यकता है। नौ सिखिया कलाकार गीतिनाट्य के भावों को प्रदर्शित नहीं कर सकता है। इसके लिए आवश्यक है कि आमंत्रित दर्शक भावुक और सुरुचि सम्पन्न हो। भाव—प्रवण दर्शक न होन पर गीतिनाट्य असफल हो सकता है। इसके लिए मंच पर ध्वनि और प्रकाश की भी उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

गीतिनाट्यो को लोकप्रिय बनाने का प्रमुख कार्य रेडियो कर रहा है। चलचित्र के कारण जहाँ रंगमंच पर नाट्य विधा अपनी लोकप्रियता खो बैठी है, वहीं रेडियो ने उसे कर्ण प्रिय बनाकर उसकी प्राण प्रतिष्ठा की है। आज के अधिकांश गीतिनाट्य रेडियो के लिए ही लिखे जा रहे है। आज आवश्यकता इस बात की है कि जो गीतिनाट्य रेडियो पर प्रसारित होते है टेलीविजन पर भी प्रदर्शित किया जाए। यदि वे टेलीविजन पर लोकप्रिय होते है तो उन्हीं कलाकारों द्वारा रंगमंच पर भी प्रदर्शित लिये जा सकते है। यह प्रक्रिया गीतिनाट्यों को लोकप्रिय बनाने में बड़ी सफल सिद्ध होगी।

गीतिनाट्यो को लोकप्रिय बनाने के लिए लेखकों को भी प्रयत्न करने होगें। गीतिनाट्य की रचना करते समय उन्हें कुछ विशेष बातों का ध्यान रखना होगा। सर्वप्रथम तो गीतिनाट्य की भाषा सहज, सरल और जन–साधारण की भाषा के निकट होना चाहिए। ठूँस–ठूँस कर भरे क्लिष्ट और साहित्यिक शब्दों का प्रयोग गीततनट्य को विकृत बना देता है। भाषा काव्यमय होते हुए भी ऐसी हो कि सर्वसाधारण समझ सके। लोक गीतिनाट्यों (रस नौंटकी आदि) की लोकप्रियता का प्रधान कारण सामान्य और रसीली भाषा ही है।

परिशिष्ट

(अ) उपजीव्य ग्रन्थ

1. अंगुलिमाल, प्रभु शंकर, हिन्दी साहित्य संसार, लखनऊ प्र. स. 1967

2. अंधायुग, धर्मवीर भारती, किताब महल, इलाहाबाद तृ. स. 1968

3. अग्निलीक, भारत भूषण अग्रवाल, राज कमल प्रकाशन दिल्ली, प्र. स. 1976

4. अनध, मैथलीशरण गुप्त, साहित्य सदन चिरगाँव, झाँसी, प्र.स. 1925

5. अनुक्षण, प्रभाकर माचवे, भारतीय ज्ञानपीठ काशी प्र. स. 1959

6. अपराजिता, चन्द्र प्रकाश सिंह, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली प्र. स. 1967

7. अशोक वन बदिनी तथा अन्य गीतिनाट्य, उदय शंकर भट्ट, एस. चाँद एण्ड क. दिल्ली प्र. सं. 1959

8. आकाश पाताल, मधुकर गंगाधर, प्रतिभा प्रकाशन, झालारी, पूर्णिया प्र. सं. 1954

9. इतिहास के आँसू, दिनकर, उदयाचल, पटना द्वि. स. 1955

10. उत्तर प्रियदर्शी, अज्ञेय, राजकल प्रकाशन, दिल्ली प्र. स. 1972

11. उन्मुक्त, सियाराम शरण गुप्त, साहित्य सदन चिरगाँव, झाँसी प्र. सं. 1930

12. उर्वशी, दिनकर, उदयाचल, पटना प्र. सं. 1961

13. एक कंठ विषपायी, दुष्यंत कुमार, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद प्र. सं. 1963

14. एकला चलो रे, उदय शंकर भट्ट, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, प्र. स. 1961

15. करुणालय, जयशंकर प्रसाद, भारती भण्डर, लीडर प्रेस इलाहाबाद हि.स. 1958

16. कवि–सिद्धनाथ कुमार मंदिर बक्सर. स. 1951

17. कहानी कैसी बनी, कर्तार सिंह दुग्गल, भारतीय ज्ञानपीठ,, काशी, प्र. स. 1959

18. काल वहन, केदान नाथ मिश्र प्रभात, पुस्तक भण्डार, पटना, प्र. सं. 2002

19. कालिदास, उदय शंकर भट्ट, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्र. सं. 1950

20. गोविन्द हुलास नाटक, सनातन–रूप–जीव, गोस्वामित्रय हिन्दी विभाग, म. स. वि. वि. बड़ौदा प्र. सं. 1962

21. झाँकी, आनन्दी प्रसाद श्रीवास्तव, गाँधी हिन्दी पुस्तक भण्डार प्र. स. 1925

22. तमसा, जानकी बल्लभ शास्त्री, राजकमल प्रकाशन दिल्ली द्वि. स. 1969

23. धूप के धान (इंदुमती), गिरिजा कुमार माथुर, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी प्र. स. 1958

24. नदी प्यासी थी, धर्मवीर भारती, किताब महल, इलाहाबाद प्र. सं. 1954

25. नहुष निपात, उदय शंकर भट्ट, आत्मा राम एण्ड सन्स दिल्ली प्र. स. 1961

26. नीलकंठ निराला, रामेश्वर सिंह काश्यप, राष्ट्रीय प्रकाशन मन्दिर पटना प्र. स. 1962

27. नील कुसुम, दिनकर, उदयाचल, पटना द्वि सं. 1956

28. पतिम्बरा, गौरी शंकर मिश्र द्विजेन्द्र, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद द्विसं. 1973

29. परिमल, निराला, गंगा पुस्तक माला ,कार्यालय लखनऊअ.सं. 1960

30. प्रतिनिधि ब्राल एकांकीख योगेन्द्र कुमार लल्ला, आत्मा राम एण्ड संन्स दिल्ली प्र. स. 1962

31. पृथ्वी पुत्र, मैथलीशरण गुप्त साहित्य सदन, चिरगाँव झाँसी प्र.स. 2001

32. पाषाणी, जानकी बल्लभ शास्त्री, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद द्वि स. 1967

33. पुनरावृत्ति, हंस कुमार तिवारी,, ज्ञानपीठ लिमिटेड पटना प्र. स. 1951

34. मधुकण, भगवती चरणवर्मा, साहित्यकेन्द्र बेलीरोड, इलाहाबाद प्रच सं. 1932

35. मत्स्य गंधा, उदय शंकर भट्ट, पंजाब संस्कृत पुस्तक माला लाहौर प्र. स. 1994

36. यक्ष की नगरी प्रत्यक्ष की नगरी, भागवत प्रसाद, संकल्प संस्थान राउरकेला प्र. सं. 1968

37. रंगमंच, ज्ञान पीठ अजीत, परिमल प्रकाशन इलाहाबाद प्र. स. 1965

38. राधा, उदय शंकर भट्ट, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय दिल्ली प्र. सं. 1941

39. राजा परीक्षित, गौरी शंकर मिश्र द्विजेन्द्र, परिमल प्रकाशन इलाहाबाद च. स. 1970

40. रेणुका, मंगला प्रसाद विश्वकर्मा , साहित्य सदन चिरगाँव झाँसी प्र. स. 1930

41. लीला, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन चिरगाँव झाँसी प्र. सं. 2018

42. विश्वामित्र और दो भाव नाट्य, उदय शंकर भट्ट, आत्मा राम एण्ड सन्स, दिल्ली प्र. स. 1960

43. शिल्पी, सुमित्रा नन्दन पन्त, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1952

44. संवर्त, केदार नाथ मिश्र, प्रभात पुस्तक भण्डार पटना प्र. स. 2001

45. संशय की एक रात, नरेश मेहता, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर गिरगॉव बम्बई प्र. सं. 1962

46. समाधान, रामेश्वर सिंह काश्यप, हिन्दी साहित्य संसार, पटना प्र. सं. 1961

47. स्नेह या स्वर्ग, सेठ गोविन्दास, किताब महल इलाहाबाद प्र. सं. 1946

48. स्वर्ण विहान, हरि कृष्ण प्रेमी, सस्ता साहित्य संसार, अजमेर प्र. स. 1930

49. स्वर्णोदय, केदारनाथ मिश्र प्रभात, ज्ञान पीठ लिमिटेड, पटना प्र. सं. 1951

50. सृष्टि की सांझ और अन्य काव्य नाटक, सिंहनाथ कुमार, पुस्तक मंदिर वक्सर प्र. स. 1959

51. सूखा सरोवर, लक्ष्मी नारायण लाल, भारतीय ज्ञानपीठ काशी प्र. सं. 1960

52. सेतु बंधन, भारत भूषण अग्रवाल, सरोज प्रकाशन प्रयाग प्र. स. 1957

53. सोवर्ण, सुमित्रा नन्दन पन्त, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी द्वि. 1963

54. त्रिपथगा, भगवती चरण वर्मा, भारती भण्डार, लीडर प्रेस इलाहाबाद, प्र. सं. 2021 वि0।

(ब) उपस्कारक ग्रन्थ

1—अंग्रेजी नाट्य साहित्य, मधुसूदन चतुर्वेदी, चतुर्वेदी प्रकाशन समिति कमतरी, आगरा प्र0 सं0 1961।

2—अंग्रेजी साहित्य कोश, दामोदर अग्रवाल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली 6, प्र0 स0 1972।

3—अमरीकी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, मार्क्स कान्लिफ, अनु0 ओम प्रकाश दीपक, गर्ग ब्रदर्स, इलाहाबाद प्र0 सं0 1963।

4—असमीया साहित्य और साहित्यकार, चित्र महंत, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा, प्र0 सं0 1970 वि0।

5—आचार्य केशव, हीरालाल दीक्षित, लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ, प्र0 सं0 2021 वि0।

6—आधुनिक साहित्य, नन्द दुलारे बाजपेयी, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र0 सं0 2027 वि0।

7—आधुनिक हिन्दी काव्य की रूप विधाएँ, निर्मला जैन, नैशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र0 सं0 1962।

8—आधुनिक हिन्दी शिल्प, मोहन अवस्थी हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग, प्र0 सं0 1962।

9—आधुनिक हिन्दी नाट्य, नगेन्द्र, साहित्य रत्न भण्डार, आगरा, स0 सं0 1964।

10—आधुनिक हिन्दी साहित्य, लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्र0 सं0 1948।

11—आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, लक्ष्मी सागद वार्ष्णेय, महामना प्रकाशन मन्दिर इलाहाबाद स0 सं0 1966।

12—आस्था के चरण, नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र0 सं0 1968।

13—उर्दू साहित्य का इतिहास, बाबू राम सक्सेना, हिन्दुस्तानी एकेडेमी उत्तर प्रदेश इलाहाबाद प्र0 सं0 1950।

14—उर्वशी उपलब्धि और सीमा, बिजेन्द्र नारायण सिंह, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वि0 सं0 1967।

15—काव्य कला तथा अन्य निबन्ध, प्रसाद भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद तृ0 सं0 2005 वि0।

16—काव्य रूपों का मूल स्त्रोत और उनका विकास, शकुन्तला दुबे, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्र0 सं0 1964।

17—गुप्त जी का काव्य साधना, उमाकान्त, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, द्वि0 सं0 1961।

18—जीवन और संघर्ष, उदय शंकर भट्ट, राजपाल एण्ड सन्स तृ0 सं0 1959।

19—जीवन स्मृति, रवीन्द्र नाथ टैगोर, रवीन्द्र साहित्य मन्दिर कलाकार स्ट्रीट कलकत्ता, प्र0 सं0।

20—तेलुगु साहित्य का इतिहास, लक्ष्मी रंजनम्, हिन्दी प्रचारक सभा, हैदराबाद, प्र0 सं0 1967।

21—तेलुगु साहित्य का इतिहास, बाल शोरि रेड्डी, हिन्दी समिति, सूचना विभाग लखनऊ प्र0 सं0 1964।

22—नत्य हिन्दी नाटक, सावित्री स्वरूप, ग्रन्थम, रागबाग, कानपुर, प्र0 सं0 1967।

23—नाटक साहित्य का अध्ययन, ब्रेंडर मैथ्यूज, अनु0 इन्दुजा अवस्थी, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली प्र0 सं0 1964।

24—नाट्य समीक्षा, दशरथ ओझा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, द्वि0 सं0।

25—पन्त का काव्य, प्रेमलता वाफना, साहित्य सदन, देहरादून, प्र0 सं0 1969।

26—पन्त जी का नूतन काव्य और दर्शन, विश्वम्भर नाथ उपाध्याय, साहित्य भण्डार, आगरा, प्र0 सं0 1956।

27—प्राचीन भाषा नाटक संग्रह, जगदीश चन्द्र माथुर तथा दसरथ ओझा, कु0 मु0 हि0

विद्यापीठ तथा भाषा वि0 विभाग आगरा, प्र0 सं0 1970।

28—ब्रज भाषा साहित्य का इतिहास, सत्येन्द्र, भारती भण्डार, इलाहाबाद, प्र0 सं0 2024 वि0।

29—भारत और भारतीय नाट्य कला, सुरेन्द्र नाथ दीक्षित, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, प्र0 सं0 1970।

30—भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग एक, नागरी प्रचारिणी सभा काशी प्र0 सं0।

31—भारतेन्दु नाट्य साहित्य, डॉ0 वीरेन्द्र कुमार शुक्ल, रामनारायण लाल प्रकाशक, इलाहाबाद, प्र0 स0 1955।

32—मधु स्त्रोत, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्र0 सं0 2028 वि0।

33—मलयालम साहित्य का इतिहास, पी0 के0 परमेश्वर नागर, अनु0 सी0 आर0 नानप्पा साहित्य अकादमी नई दिल्ली, प्र0 सं0 1968।

34—महाकवि दिनकर, उर्वशी तथा अन्य कृतियाँ, विमल कुमार, भारतीय साहित्यं मन्दिर दिल्ली, प्र0 सं0 1962।

35—मैथली शरण गुप्त, व्यक्ति और काव्य, उमांकान्त पाठक, हिन्दी परिषद, सागर विश्वविद्यालय, सागर, प्र0 सं0 1960।

36—युग चारण दिनकर, सावित्री सिन्हा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र0 सं0 1962।

37—युगचेता दिनकर और उनकी उर्वशी, राजपाल शर्मा, हिन्दी साहित्य संसार पटना प्र0 सं0 1973।

38—रेडियों नाट्य शिल्प, सिद्धनाथ कुमार, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, प्र0 सं0 1955।

39—विश्व साहित्य की रूपरेखा, भगवत शरण उपाध्याय, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली प्र0 सं0 1957।

40—शिल्प और दर्शन, सुमित्रानन्दन पन्त, राम लाल वेनी माधव प्रकाशन, प्रयाग, प्र0 सं0 1971।

41—सन्देश रासक, हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर बम्बई, प्र0 सं0 1960।

42—संस्कृत के चार अध्याय, दिनकर, उदयाचल पटना, प्र0 सं0 1956।

43—सम सामायिक हिन्दी नाटकों में चरित्र सृष्टि, तनेजा, सामायिक प्रकाशन, जटवारा, दिल्ली, प्र0 सं0 1973।

44—साहित्य सहचर, हजारी प्रसाद द्विवेदी, नैवेध निकेतन, वाराणसी, प्र0 सं0 1965।

45—सियाराम शरण गुप्त, नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, द्वि0 सं0 1965।

46—सृजन की मनोभूमि, रणधीर रांग्रा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र0 सं0 1973।

47—हमारी नाट्य परम्परा, श्री कृष्णदास, साहित्यकार संसद प्रयाग, प्र0 सं0 1956।

48—हिन्दी एकांकी—उद्भव और विकास, रामचरण महेन्द्र, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, प्र0 सं0 1958।

49—हिन्दी एकांकी—शिल्प विधि का विकास, सिद्धनाथ कुमार, ग्रन्थम रामबाग, कानपुर, प्र0 सं0 1966।

50—हिन्दी और गुजराती नाट्य साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन, रणधीर उपाध्याय, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र0 सं0 1966।

51—हिन्दी के पौराणिक नाटक, देवर्षि सनाङय, चौखम्भा, विधा भवन, वारणासी।

52—हिन्दी के श्रेष्ठ काव्यों का मूल्यांकन, यश गुलाटी, सूर्य प्रकाशन नई दिल्ली, प्र0 सं0 1969।

53—हिन्दी गीति काव्य, सच्चिदानन्द तिवारी, किताब महल इलाहाबाद, प्र0 सं0 1955।

54—हिन्दी गीति नाट्य, कृष्ण सिंहल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन कलकत्ता प्र0 सं0 1964।

55—हिन्दी नव लेखन, राम स्वरूप चतुर्वेदी, भारतीय ज्ञान पीठ काशी, प्र0 सं0 1961।

56—हिन्दी नाटक, बच्चन सिंह, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वि0 सं0 1967।

57—हिन्दी नाट्य—उद्भव और विकास, दशरथ ओझा, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, प्र0 सं0 2011 वि0।

58—हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास, सोमनाथ गुप्त, हिन्दी भवन जालंधर, इलाहाबाद च0 सं0 1958।

59—हिन्दी नाटक साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन, वेदपाल खन्ना, भारत भारती प्रा0 लि0, दिल्ली, प्र0 सं0 1958।

60—हिन्दी नाटकों का विकासात्मक अध्ययन, शान्ति गोपाल पुरोहित, साहित्य सदन, देहरादूर, प्र0 सं0 1964।

61—हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव, श्रीपति शर्मा, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा, प्र0 सं0 1961।

62—हिन्दी नाटक—सिद्धान्त और विवेचन, गिरीश रस्तोगी, ग्रन्थम रामबाग कानपुर, प्र0 सं0 1967।

63—हिन्दी नाटकों की शिल्प विधि का विकास, शान्ति मलिक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र0 सं0 1971।

64—हिन्दी रासो काव्य की परम्परा, सुमन राजे, ग्रन्थम रामबाग कानपुर, प्र0 सं0 1973।

65—हिन्दी साहित्य का अद्यतन इतिहास, मोहन अवस्थी, सरस्वती प्रेस इलाहाबाद, प्र0 सं0 1970।

66—हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, सं सं0 1999 वि0।

67—हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास भाग एक, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्र0 सं0 2029 वि0।

68—हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष, शिवदान सिंह चौहान, रणजीत प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स, दिल्ली प्र0 सं0 1954।

69—हिन्दी साहित्य कोशा, ज्ञानमण्डल लि0 वाराणसी, प्र0 सं0 2015 वि0।

70—हिन्दी साहित्य में काव्य रूपों का प्रयोग, शंकर देव अवतरे, राज्य पाल एण्ड संस दिल्ली, प्र0 सं0 1962।

71—हिन्दी साहित्य प्रथम खण्ड, सं0 धीरेन्द्र वर्मा, भारती हिन्दी परिषद, प्रयाग प्र0 सं0 1962।

72—आस्पेक्ट्स ऑफ मार्डन ड्रामा, सी0 डब्ल्लू चैडलर दी मेकमिलन क0 लन्दन, 1920।

73—ब्रिटिश ड्रामा, निकोल जार्ज वी0 हेरेप एण्ड क0 लन्दन, थर्ड रिवाइज्ड एडी0 1962।

74—क्वासीकल बेक ग्राउण्ड ऑफ इंगलिश लिटरेचर थोम्सन जे0 के मेकमिलन एण्ड कम्पनी लन्दन, 1963।

75—बी एलीमेण्डस ऑफ ड्रामा, स्टाइन जे0 एल0 कैम्ब्रिज यूनीवर्सिटी प्रेस, 1963।

76—इंगलिश पोयटिक ड्रामा ऑफ ट्वण्टीयथ सैन्चुरी चतुर्वेदी, वी0 एन0 किताब घर, ग्वालियर, (म0 प्र0) 1963।

77—इंगलिश लिटरेचर ऑफ ट्वण्टीयथ सैन्चुरी, एन0 दस गुप्ता, किताबघर, ग्वालियर 1968।

78—लिटरेरी एसेज, मलिक, वी0 आर0 एस0 चाँद एण्ड कम्पनी, दिल्ली, सेकिण्ड एडी0

1960।

79—मार्डन इंगलिश ड्रामा, अब्दुल चौधरी, ए0 लतीफ चौधरी, दीवान बाजार रोड, ढ़ाका, 1936।

80—सिलैक्टिड एसेज, ईलियट, टी0 एस0 हरकोर्ट ब्रास एण्ड कम्पनी, न्यमार्क, 1936।

81—दी प्लेज ऑफ टी0 एस0 ईलियट, जोन्स, डी0 ई0 राटेलेज एण्ड के गनपाल, ब्राडवे हाउस लन्दन, 1961।

82—दी समिंग अप, माम, समरसेट विलियम हेरी मैन लि0 केपटाउन, आक्लैण्ड, संशोधित 1964।

83—वार्ल्ड ड्रामा, निकोल, ए0 जार्ज बी0 हेरेप एण्ड कम्पनी, लन्दन संशोधित, 1954।

(स) पत्र—पत्रिकाएँ

1—आज कल, जनवरी, 1963।

2—आलोचना, अंक 19, 20, और 33।

3—कल्पना, अप्रैल 1960, अगस्त 1961, नवम्बर 1961, दिसम्बर 1961, जनवरी 1960।

4—गवेषणा—सितम्बर 1964।

5—जीवन, अगस्त 1945।

6—धर्मयुग, 20 अगस्त 1967।

7—नई धारा, अगस्त 1950, अगस्त 1953, अगस्त 1954, अक्टूबर 1954, फरवरी 1961।

8—नयापथ, मई 1956।

9—नया समाज, जनवरी 1958।

10—पारिजात, मई 1948।

11—प्रभा, अप्रैल 1921, मई 1921, जून 1921।

12—प्रतीक, जून 1947, सितम्बर 1951, जुलाई 1952।

13—बिजली, दैनिक 1 अप्रैल 1945।

14—माध्यम, जून 1964, सितम्बर 1964, नवम्बर 1934, फरवरी 1965, जनवरी 1966।

15—युग चेतना, नवम्बर 1955, जनवरी 1956।

16—राष्ट्र भारती, मार्च 1956, अक्टूबर 1962।

17—वीणा—मार्च 1941।

18—सरस्वती, जनवरी 1919, मार्च 1919, दिसम्बर 1926, जनवरी 1928, मार्च 1928, अक्टूबर 1934, अक्टूबर 1946।

19—साहित्य सन्देश, जुलाई 1954।

20—सुधा, नवम्बर 1931।

21—हिन्दी वार्षिकी, 1961।

22—दो बालक, जनवरी 1946।